जायसी का सांस्कृतिक अध्ययन

जायसी का सांस्कृतिक अध्ययन

(प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध)

डॉ० वृजनारायण पाण्डेय

शोध साहित्य प्रकाशन

५७७ शाहगंज

इलाहाबाद
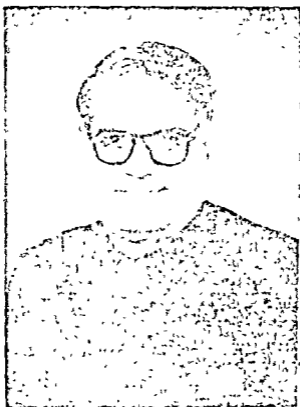
समर्पण

'लब्ध्वा यस्य कृपा कटाक्षमखिलं प्राप्तोऽस्मि दिव्यं सुखम् ।
पूज्यं जायसवाल वंश मुकुटम् हिन्द्याः प्रसिद्धं बुधम् ॥
श्री मातावदलं गुरुम् सुमनसां वृन्दैः मुदा सेवितम् ।
स्वश्रद्धा कुसुमाञ्जलि प्रकटयन् वाञ्छे सदा सन्निधिम् ॥

बृजनारायणः शिष्यो नतात्मा बुध सेवकः ।
हस्ताब्जे यस्य विदुषः ग्रन्थं स्वीयं समर्पये ॥

—बृजनारायण पाण्डेय।

"दो शब्द"

डा० वृज नारायण पाण्डेय द्वारा लिखित 'जायसी' का सांस्कृतिक अध्ययन नामक ग्रन्थ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते समय मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है डॉ० पाण्डेय ने जायसी के शब्द-कोश के आधार पर यह अध्ययन इलाहाबाद यूनिवर्सिटी को डी० फिल्० उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में प्रस्तुत किया है। कवि द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपने साथ अपने युग के सांस्कृतिक वातावरण को एक झाँकी प्रस्तुत करता है। इसीलिए किसी भी कवि द्वारा प्रयुक्त समस्त शब्द-कोश के आधार पर उस युग का एक सांस्कृतिक चित्र पाठकों के सम्मुख आ जाता है। फलतः किसी युग का साहित्य तत्कालीन युग के सांस्कृतिक इतिहास को जानने का महत्वपूर्ण स्रोत है।

खेद है कि भारतीय इतिहास के लेखकों ने भारतीय इतिहास के लेखन में साहित्य को स्रोत के रूप में बहुत कम प्रयोग किया है। हिन्दी का प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य अधिकांशतः मध्य देश में लिखा गया है। मध्यकाल में मुस्लिम इतिहास लेखकों ने इसी मध्यदेश को सूबा-हिन्दुस्तान के नाम से अभिहित किया है। मध्ययुग का यही मध्य देश सूबा हिन्दुस्तान है। आज का हिन्दी प्रदेश राजनैतिक दृष्टिकोण से ७ इकाइयों (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश बिहार राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली) में विभक्त है। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह आज भी एक इकाई है। इस प्रदेश में लिखा हुआ साहित्य इस प्रदेश की संस्कृति का महत्वपूर्ण स्रोत है क्योंकि साहित्य में जनता की चित्त वृत्तियों को चित्रित करने का प्रयास प्रत्येक साहित्यकार करता है।

अपने युग की सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत करने में महाकवि जायसी को सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। १६वीं शती में प्रचलित जन भाषा के रूप में, अवध देश में प्रचलित अवधी के माध्यम से जायसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पद्मावत' में अपने युग के सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक रीति-रिवाजों का जितना व्यापक तथा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है उतना कोई भी हिन्दी का अन्य कवि नहीं कर सका है।

कवि प्राचीन परम्पराओं तथा अपने युग की सांस्कृतिक स्थिति दोनों का चित्रण करता है। इतिहास के अध्येता का यह कर्तव्य होता है कि कवि द्वारा चित्रित

सांस्कृतिक सामग्री से परम्पराओ के अश को अलग करके तत्कालीन युग की संस्कृति का सजीव चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करे। तभी ऐसे अध्ययन किसी देश या समाज के सास्कृतिक अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण बन सकते हैं। इस प्रकार एक साहित्यिक कृति से तत्कालीन संस्कृति के स्वरूप को पाठको के सामने प्रस्तुत करने में नीर-क्षीर विवेक की दृष्टि से कार्य करना पडता है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नही है कि डा० पाण्डेय ने इसी दृष्टि से यह अध्ययन प्रस्तुत किया है।

भारतीय इतिहास के लेखन मे आधुनिक भारतीय भाषाओ (हिन्दी, बगला, मराठी, पजाबी, गुजराती आदि) मे जो साहित्य प्राचीन तथा मध्यकाल में लिखा गया है उसका उचित उपयोग अभी तक नहीं किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन इस अभाव की पूर्त्ति करने का एक प्रयास है। आशा है साहित्य तथा सस्कृति के पाठक एव लेखक इस अध्ययन से लाभान्वित होंगे। इस अध्ययन के प्रस्तुतकर्त्ता डा० पाण्डेय को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ। शोध साहित्य प्रकाशन के प्रकाशक श्री तुलसी राम त्रिपाठी भी शोध ग्रन्थो के प्रकाशनार्थ मेरी बधाई के पात्र हैं।

माता बदल जायसवाल
रीडर, हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी
इलाहाबाद

माघ पूर्णिमा २०२६ (१९७३)
२५ बी० सी० थाई० चिन्तामणि रोड,
इलाहाबाद

प्रस्तावना

सर्वरीं आदि एक करतारू,
जेइ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू (१।१।१) पद्मावत

भारतीय स्वातन्त्र्य के पूर्व देश की सांस्कृतिक परम्परा के अनुशीलन में पाश्चात्य प्रतविदों का महत्त्वपूर्ण योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न आयामों का गहन अनुशीलन विद्वानों ने किया किन्तु अपने अध्ययन की दिशा में उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह विहीन रहा हो, यह नहीं कहा जा सकता। भारतीय पुनरुत्थान की बेला में हमारे देश के गम्भीर विद्वानों ने अपनी सांस्कृतिक निधियों का अपेक्षित मूल्यांकन किया। संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य की पृष्ठभूमि में अपनी संस्कृति के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन किया गया। राष्ट्र की स्वतन्त्रता के अनन्तर हम उसके गौरवशाली पक्षों पर जितना अधिक प्रकाश डाल सकें, वह एक शुभ प्रयास कहा जा सकता है। साहित्यिक जगत के मनीषी डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने जहाँ संस्कृत साहित्य के परिवेश में पौराणिक साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन किया, वहीं उन्होंने संस्कृत के क्लासिकल साहित्य की पृष्ठभूमि में गुप्तकालीन संस्कृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। निश्चित ही उनकी ये कृतियाँ सांस्कृतिक अनुशीलन की दिशा में महती प्रेरणा का कारण बन सकीं। डा० अग्रवाल हिन्दी साहित्य के गम्भीर विद्वान थे और यह उनका अभिमत रहा कि हिन्दी साहित्य की मध्यकालीन कृतियों के अनुशीलन से हमारी संस्कृति पर व्यापक प्रकाश पड़ सकता है। इस सन्दर्भ में अवधी साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन की उनकी उत्कट इच्छा साहित्यिक जगत के दृष्टिपथ से ओझल नहीं की जा सकती। पद्मावत की संजीवनी व्याख्या में तत्कालीन संस्कृति के सम्भार जो उभरकर आए हैं उनके व्यापक अनुशीलन की अपेक्षा थी। वस्तुत. जायसी की कृतियाँ समग्र रूप से हमारी संस्कृति पर व्यापक प्रभाव डालती हैं और उनका सांस्कृतिक रूप से हमारी संस्कृति पर व्यापक प्रभाव महत्वपूर्ण और अनुपम है।

संस्कृति में देश की भौगोलिक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं दार्शनिक वैचारिक उपलब्धियों का समाहार होता है। भारतीय संस्कृति को अनेक संस्कृतियों के समन्वय का गर्व है। वस्तुतः जायसी का साहित्य भी सांस्कृतिक समन्वय की शृंखला को दृढ़ करने वाला है। उनके साहित्य सृजन के पूर्व भारत में हिन्दू

मुस्लिम सस्कृतियो का परसार सघर्ष हुआ था। और तदनन्तर यह सस्कृतियाँ समन्वित हो गतिशील हुई थी। उनमें स्थिरता का सूत्रपात हुआ था औरइस दृष्टि से जायसी की प्रेमाख्यान काव्यधारा को अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री सिद्ध किया गया है। ऐसी स्थिति मे तत्कालीन सस्कृति का यथार्थ चित्र उनकी कृतियो के शब्दकोश के सास्कृतिक अनुशोलन स स्पष्ट हो सकता है। जायसी के पूर्व अनेक कवियो ने हिन्दू मुस्लिम सघष का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके सम सामयिक कवियो की रचनाओं से भी इस सघर्ष के पूणतः अन्त का बाध नहीं होता। वस्तुत जायसी क साहित्य मे सास्कृतिक सम्भारो की दृष्टि मे किस पक्ष का उद्घाटन हुआ है यही उनके शब्दकोश के सास्कृतिक अनुशोलन की दृष्टि से उद्दिष्ट है और यह निश्चित ही अपनी सीमा में एक महत्वपूर्ण मौलिक प्रयास होगा।

जायसी की रचनाओ के पाठ भेद की समस्या भी उठाई गई है। सम्प्रति इन रचनाओ की कई प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। उनमें पाठान्तर होना सहज स्वाभाविक है। प्रसिद्ध विद्वान डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की 'पद्मावत' मूल और सजीवनी-व्याख्या वाले पद्मावत जायसी ग्रन्थावली (आचार्य शुक्ल) के अखरावट और आखिरी कलाम, डा० गौतम की पदमावत टीका की महरीवाइसी तथा सम्पादक शिवसहाय पाठक की चित्ररेखा एव 'मसला' को अध्ययन का आधार बनाया गया है जिनके आधार पर सज्ञा शब्दो का सास्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य होने से अधिकाश शब्द पद्मावत म ही आ गए है, प्रसग भेद मे ही अन्य ग्रन्थो के शब्दो को ग्रहीत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध छ अध्यायो मे विभक्त है। यथा (१) जायसीकालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि, (२) जायसीकालीन भूगोल (३) सामाजिक दशा (४) राजनैतिक स्थिति (५) धर्म एव दर्शन और (६) साहित्य शिक्षा और कला। आर्थिक विवरणों का उल्लेख कम था अत उसको सामाजिक दशा के अन्तर्गत ही रक्खा गया है।

शोध, गहन अध्यवसाय एव सतत् प्रयास का कार्य है। सम्प्रति विद्याव्यसन के अनन्तर वह जीविकोपार्जन से प्रत्यक्ष जुडा हुआ है। वस्तुत मन मे हिन्दी-साहित्य के किसी महत्वपूर्ण पक्ष के अनुशोलन की अभिलाषा अध्ययन काल म ही थी किन्तु निश्चित ही पारिवारिक परिस्थितियो क कारण मैं इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर प्रेरित नहीं हो पाता यदि गुरुवर डा० 'वार्ष्णेय' अध्यक्ष हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्व विद्यालय का स्नेहभरा प्रोत्साहन न मिलता। यह उन्ही के प्रोत्साहन एव आशीर्वचन की प्रेरणा का प्रतीक है कि मैं इस शोध कार्य के दायित्व का निर्वाह कर सका सहृदयता एव साहाय के स्रोत अपने शोध निर्देशक प्रो० माताबदल जी जायसवाल के प्रति मैं किन शब्दो मे कृतज्ञता ज्ञापित करूँ समझ मे नही आता। समय-समय पर

अध्ययन की दिशा को आत्मीयता के साथ स्पष्ट एवं प्रखर करने की जो प्रेरणा उन्होंने दी क्या कभी उसे भुलाया जा सकता है, उनके प्रति अपनी गम्भीर एवं असीम श्रद्धा व्यक्त करते हुए मैं विश्वस्त हूँ कि उनकी प्रेरणा के सम्बल से मैं जीवन में कुछ और महत्वपूर्ण कार्य कर सकूँगा। स्थानीय इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट नैनी के वरिष्ठ शान्तिमना प्राध्यापक डा० सूर्यनारायण पाण्डेय के साहाय्य के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

जबलपुर विश्वविद्यालय के भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं सम्प्रति यू० जी० सी० के सीनियर प्रोफेसर गुरुवर डा० उदय नारायण तिवारी के स्नेह एवं आशीर्वाद से कृति के प्रकाशनार्थ जो प्रोत्साहन मिला उसके प्रति मैं अपनी श्रद्धा भावना व्यक्त करता हूँ। साथ ही शोध कालीन समस्याओं का निराकरण करने वाले पूज्य गुरु डा० पारस नाथ तिवारी प्रवक्ता हिन्दी विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं श्रद्धावनत हूँ।

सम्प्रति स्थानीय श्री वैष्णवश्रम, दारागंज के महन्त १०८ श्री सीतारामाचार्य पूज्यचरण के प्रति अपनी श्रद्धा भावना व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अनेक सहायताएं प्रदत्त की। उन्हीं के सत्प्रयास से श्री वासुदेव सोमानी मधुसूदन ट्रस्ट बम्बई से इस कार्य के लिए कुछ आर्थिक सहायता उपलब्ध हुई, एतदर्थ इन दोनों गुणग्राही महानुभावों के प्रति अपना आदर व्यक्त करता हूँ। श्री रामदेशिक संस्कृत महाविद्यालय, दारागंज, इलाहाबाद के वेदान्त विभागाध्यक्ष पण्डित प्रवर श्री सनत्कुमार त्रिपाठी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी असीम अनुकम्पा से मैं शोधकार्य के सम्बन्ध में उठी समस्याओं से मुक्ति पाता रहा। अन्ततः मैं उन सभी विद्यानुरागी अपने गुरुओं, शुभेच्छुओं, सम्बन्धियों एवं समानधर्मा आत्मीय लोगों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ जिनकी थोड़ी-बहुत प्रेरणा से इस शोध कार्य में मुझे बल मिला।

पूज्यपाद पितृचरण प० द्रोपनारायण जी पाण्डेय एवं वात्सल्य मूर्ति ममतामयी माँ को इस पुनीत अवसर पर स्मरण करना मैं आवश्यक समझता हूँ जिनके आशीष एवं दुलार के सम्बल से ही यह सब कुछ मैं कर सका हूँ।

प्रूफ रीडिंग एव मुद्रण की टाइपो की कुछ गडबडी से यत्रतत्र अशुद्धियाँ रह गई हैं। जिन्हें परिशिष्ट रूप मे ग्रन्थ के अन्त मे सलग्न किया गया है। शुद्ध करके पाठक महोदय कृपया उसे यथा स्थान रखकर पढ़ने की कृपा करें। इन सब के बाद शोध साहित्य के प्रकाशक श्री तुलसी राम त्रिपाठी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। सम्पन्न किया।

मानुस प्रेम भएउ बैकुन्ठी
नाहित छार कहा एक मुठी।

—बृजनारायण पाण्डेय

बसन्त पंचमी माघ मास २०२६
चकिया घरहरा, सहसो
प्रयाग

विषय-सूची

संकेत-सूची

अखरावट	अख०
आखिरी कलाम	आ० क०
चित्ररेखा	चित्र०
जायसी ग्रन्थावली	जा० ग्र०
पद्मावत	प०, पदमावत, प
पृथ्वीराज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन	पृ० रा० का० सां० अ०
पाणिनिकालीन भारत	पा० का० भा०
महरीबाइसी	मह०
रामचन्द्र शुक्ल	रा० च० शुक्ल
वासुदेवशरण अग्रवाल	वा० दे० श० अग्र०

अध्याय १

जायसीकालीन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

जायसी का सांस्कृतिक अध्ययन करने के पूर्व यह ध्यान देना अनिवार्य है कि किन-किन राजनैतिक-सामाजिक धार्मिक, आर्थिक एव साहित्यिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में कवि ने अपने काव्यों की सरचना की क्योंकि कवि की साहित्यिक पयस्विनी की तरङ्गों में युगगत समस्याओं का उफान रहता है। आलोडन-विलोडन एवं घात-प्रतिघात रहता है। वह युग के व्यापक प्रभावों को ग्रहण कर उन्हें आत्मसात् करके पुन उसी को साधारणीकरण की स्थिति में लाकर अपनी प्रतिभा से उनके माध्यम द्वारा जीवन दृष्टि के नवोन्मेष की सरचना करता है। उसकी कृति रूपी निर्झरिणी मे समष्टिगत रूप से तत्कालीन सस्कृति के समस्त स्रोत आत्माविभूत होकर प्रवाहित होते हैं। स्वय कवि युगोद्भूत समस्त क्रियात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक रूपों में से किसी का खडन तथा किसी का मण्डन करता है। काव्य का प्रणेता सस्कृति के प्रवाह मे गतिशीलता एव अजस्रता लाता है। जायसीकालीन संस्कृति का प्रारूप कैसा था, इसका ज्ञान करना हमे जायसी के ग्रन्थो के अतिरिक्त इतर स्रोतों के आधार पर प्रथम ही विचारणीय है। इतिहासकारो ने जायसी द्वारा विरचित ग्रन्थो का उपयोग न करते हुए उस युग की सस्कृति का जो आकलन प्रस्तुत किया है उसकी विवेचना यहाँ इस दृष्टि से भी अनिवार्य हो जाती है कि जायसी के शब्दों के माध्यम से आलोच्यकाल का जो चित्रण हुआ है वह कितने अश मे वही है जिसका आभास विवेच्य कवि की कृतियों के इतर स्रोतों के आधार पर मिलता है तथा कितना इस तरह है जो आज भी इतिहासकारो के लिए अन्वेषणीय है। और किस अश तक इन अन्वेषणीय सामग्रियो पर प्रस्तुत कवि की कृतियों से प्रकाश पड़ता है। तभी इस काव्यमय एव प्रेमगाथा परक जायसी के शब्दकोश के सांस्कृतिक अध्ययन की उपयोगिता सिद्ध होगी। अतः इस प्रथम अध्याय में जायसी के काव्यों की रचनाकालीन ऐतिहासिक एव सास्कृतिक वास्तविक स्थिति का आकलन इतर स्रोतों के आधार पर करना तर्कसगत जान पड़ता है।

रचनाकार का काल सोलहवीं शताब्दी है जो अपनी निजी विशेषताओं के कारण भारतीय सस्कृति एव इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका सर्वप्रमुख कारण इसी शती के पूर्वार्ध में मुगलसाम्राज्य की स्थापना है। अतः आवश्यक है कि

तत्कालीन राजनैतिक वातावरण का विवेचन किया जाय जिसमें मुगलसाम्राज्य की स्थापना सभव हो सकी ।

भारतवर्ष अनेक छोटे राज्यों में विभाजित

दिल्ली सल्तनत के विघटन होने पर सोलहवी शती के आरम्भ में भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया । दिल्ली के अधीनस्थ अनेक प्रान्तपतियो ने केन्द्र से अपना सम्बन्ध विच्छेद करके स्वतन्त्रसत्ता स्थापित कर ली जो परस्पर युद्धरत रहते थे । फलत शक्ति क्षीण हो गई थी । राज्यों एव गढ़ो मे गुजरात, जौनपुर, चुनार, चित्तौड, सूरजगढ़, कालिंजर, गौड, रोहतास, कन्नौज, चौसा, विहार बनारस, सीकरी, आगरा, चदेरी, कालपी, दिल्ली, लाहौर, मालवा, माण्डू, उज्जैन, सारगपुर, उत्तर भारत इत्यादि प्रमुख थे ।

मुगलों तथा अफगानों का संघर्षमय युग

बाबर तथा उसके आत्मज हुमायूँ एव अफगानो में शेरशाह इत्यादि का सघर्ष उल्लेखनीय है । बाबर के आक्रमण १५१६-२० ई० में हुए तथा अत्यन्त सघर्षो परान्त वह २७ अप्रैल सन् १५२६ को यहाँ का सम्राट बन बैठा । हुमायूँ तथा शेरशाह की लडाई विशेष महत्वपूर्ण है । साम्राज्य अस्तव्यस्त था । नीव सुदृढ नही थी । रशब्रुक विलियम्स के अनुसार बाबर ने अपने युग के लिए ऐसा साम्राज्य छोडा था जो केवल युद्ध की परिस्थितियो मे ही सगठित रक्खा जा सकता था ।[1]

मुसलमानो में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम ही नही बनाया गया था । अत. इसके लिए भी तलवारो की परीक्षा होती थी । "एजिकाइन" के अनुसार "तलवार अधिकारियो को महान निर्णायक थी ।"[2] हुमायूँ के सामने भी उसके भाई कामरान हिन्दाल अस्करी भी गद्दी के लिए इच्छुक थे । शेरशाह को भी सौतेले भाइयों का शिकार होना पडा था ।

चूँकि उत्तराधिकार के लिए कोई नियम नही था । अत जो ही गद्दी का मालिक होता था वही एकतन्त्रात्मक अधिकारी बनता था । हुमायूँ तो किसी-किसी की परामर्श भी लेता था परन्तु शेरशाह परामर्शदाताओं को भी अपने कार्यो के लिए अनावश्यक मानता था । फिर भी निरकुशता की बू उसमें नही थी । एव स्वय सभी राजनैतिक कार्यो को देखता था ।[3]

---

(१) मध्यकालीन भारत १००० से १००७ तक, पृ० १७५ पी० डी० गुप्ता, प्रिन्सिपल एन० आर० ई० सी० कालेज, खुर्जा तथा एम० एल० शर्मा । (२) मध्यकालीन भारत, पृ० १६६ । (३) वही, पृ० १६५ ।

शासक ही सम्पूर्ण अधिकारों का स्रोत था। वे अपने सम्पूर्ण राज्य को छोटे-छोटे विभागों में बाँट कर शासन करते थे। सार्वभौमिक शक्तियों का केन्द्र स्वयं सम्राट था। प्रजाहित सर्वोपरि समझा गया है। मन्त्रिपरिषद् एवं सलाहकारी समिति पूर्वार्द्ध में भंग है लेकिन अकबर ने पुनः मन्त्रि-परिषद् बनाई। भूमि प्रबन्ध, सैन्य प्रबन्ध आदि तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए शेरशाह विशेष प्रसिद्ध है। अकबर ने इसका अनुसरण बहुत अंशों में किया है। जिसके कारण अकबर महान् राष्ट्र-निर्माता बन सका।

राजकीय कर्मचारी और उनका स्थान परिवर्तन

फौजदार, अश्वारोही, सरदार, सूबेदार, प्रधानशिकदार, सिकदार, अमीन, खजांची, मुन्सिफ, हिन्दी तथा फारसी लेखक, चौधरी, मुकद्दम, पटवारी आदि होते थे। फौजदार से सरदार तक सेना में थे। सरदार विभागों का होता था जिसे सूफी-काल में अफगान होना अनिवार्य था। शिकदार और अमीनका कार्य शान्ति स्थापित करना तथा लगान वसूल करना था। साम्राज्य के विभागपतियों को ही सूबेदार कहा जाता था जो केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी थे।

कोई भी कर्मचारी अधिक समय तक जब एक ही स्थान पर रह जाता है तो वह जनता का विश्वसनीय व्यक्ति बन जाता है ऐसी स्थिति में वह अपनी शक्ति मज-बूत करके विद्रोही बन सकता है इसी कारण से कर्मचारियों के स्थान परिवर्तन का भी नियम बना हुआ था। दो-तीन वर्ष के बाद प्रत्येक कर्मचारी का तबादला अनि-वार्य था।

जागीर-प्रथा

सोलहवीं शती के आरम्भ में जागीर-प्रथा का प्रचलन था। यही जागीरदार कभी मौका मिलने पर बगावत भी कर देते थे। सम्पूर्ण साम्राज्य जागीरों में विभक्त था। परन्तु इस तरह की कमजोरी को शेरशाह जानता था। क्योंकि उसे भी कई बार जागीरें देकर फिर छीनी जा चुकी थी। अतः उसने इस प्रथा को ही समाप्त कर दिया तथा उसके स्थान पर सरकारी कर्मचारियों को राजकोष से नकद वेतन का प्रबन्ध किया गया। परन्तु बाद में अकबर ने पुनः मनसबदारी चालू की।

षड्यन्त्रों तथा मानसिक एवं राजनैतिक सीमा के अस्थिरता का युग

इस काल में षड्यन्त्रों की झलक भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। बादशाह का जीवन बड़ी ही कठिनाइयों में बीतता था। साथ ही राजनैतिक सीमा का संकोच तथा विस्तार अहर्निश घटता-बढ़ता रहता था। अफगानों और मुगलों के संघर्ष से सीमा का घटना-बढ़ना अनिश्चित था।

भूमि प्रबन्ध

बड़े-बड़े शासक एवं नियोजक आज इस विज्ञान युग में भी तत्कालीन शासन नीतियों की सफलता एवं उसकी योजनाओं पर आश्चर्य करते हैं। सम्पूर्ण भूमि की पैमाइश हुई है। चौथाई भाग भूमि-कर था। लगान बकाया नहीं रहने पाती थी। अकाल, बीमारी तथा बाढ़ आदि प्राकृतिक सकटों में राज्य की ओर से सहायता भी क्षतिपूर्ति हेतुवर्ष दी जाती थी इसी नीति का अनुसरण अकबर ने भी किया।

न्याय

न्याय-व्यवस्था सराहनीय है। न्याय उत्तम कर्त्तव्य समझा जाता था जो हिन्दू तथा मुस्लिम दोनो राज्यों मे मान्य था न्याय निष्पक्ष होता था। अपराध का खूब नीर-क्षीर विवेक की तरह जाँच करने के बाद न्याय के अनुसार दण्ड-व्यवस्था होती थी जो अत्यन्त कठोर थी। प्राणदंड तक दिये जाते थे फौजदारी के मुकदमो को प्रधान शिकदार मालगुजारी के प्रधान मुन्सिफ, दीवानी के अदल तथा काजी करते थे। चोरी-डकैती कड़े नियमो से बन्द थी, जनता सुखी थी। न्याय मे गुप्तचर-विभाग की भी स्थिति महत्वपूर्ण थी।

पुलिस विभाग

आन्तरिक शान्ति एव व्यवस्था मे पुलिस-विभाग का स्थान है। अपराधियो को पकड़ना इनका मुख्य कार्य था। पुलिस-व्यवस्था इतनी सुदृढ थी कि जनता अपने जान-माल की कोई परवाह नही करती थी। लोग सर्वत्र निश्चित थे। सडको का निर्माण, डाक की सुविधा सरायो और कुओ का निर्माण आदि भी है।

सेना

चूँकि यह राजनैतिक अस्थिरता की अवधि की सीमा थी। अतः केवल साम्राज्य स्थापन मे ही सैन्यबल का अस्तित्व एवं आवश्यकता नहीं थी वरन् विजित साम्राज्य को सुदृढ करने तथा स्थायित्व प्रदान करने के लिए भी सुशिक्षित एव सगठित सेना की अनिवार्यता समझी गई है। अलाउद्दीन की सैन्य व्यवस्था का अनुकरण किया गया है तथा उसके अनुसार ही जागीरदारों की सेनाओ का स्थापन किया गया है तथा सामन्तों के सैनिक बल को समाप्त करके आधुनिक ढग को तरह से विशाल सेना तैयार की गई है। सैनिकों से व्यक्तिगत सम्पर्कों के लिए सम्राट् स्वय उनकी भर्ती करता था। सैन्यबल का राष्ट्रीयकरण हुआ है। सेना मे पैदल, हाथी, अश्वारोही एवं तोपखाना महत्वपूर्ण थे। घोडे दागे जाते थे जिससे उनके बदलने बेचने एव गम होने का शक नही रहता था। सैनिको की हुलिया लिखी जाती थी। सैनिक अनुशासन के नियम कडे थे। परन्तु यही सैन्य प्रबन्ध थोडा आगे चल कर मनसबदारी प्रथा में परिवर्तित हो गया।

युद्ध

यह सम्पूर्ण शती ही युद्धों की है। बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तरह के युद्ध होते थे। इस युग मे सैनिक विजय का ज्यादा अस्तित्व है। अफगानों, मुसलमानों एवं हिन्दू नरेशों के झगडो की चर्चा मुख्य है। युद्ध मे हारने पर परास्त शासक किसी शक्तिशाली के यहाँ शरण लेता था। युद्धो मे सन्धि प्रस्तावो का महत्व भी था तथा उससे लड़ाइयाँ स्थगित हो जाती थी। विजयश्री मिलने पर सम्मान पद, आमोद-प्रमोद एवं भेंट आदि देने की (जागीर वगैरह) व्यवस्थाएँ थी जिनमें रुपये जागीरें आदि हैं। युद्धो में बच्चों स्त्रियो एवं अद्भुत नर संहारो के दृश्य भी हैं। बाण, तीर, तोप आदि हथियारों में विशेष उल्लेखनीय हैं। दूरदर्शी एवं छल-छद्म से कार्य लेने वाले लड़ाकू सफल तथा इसके विपरीत वाले असफल होते हैं। घेरा डालना, बाँध बनाना, आपस में फूट डालना, प्रलोभन देना, भी रणनीतियाँ थीं। कूटनीति भेदनीति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा में भी युद्धों की योजना है तथा बदले की भावना भी परिलक्षित होती है। उपाधियाँ भी वितरित की जाती थीं। शेरशाह का सैन्य संचालन हुमायूँ से अच्छा था तथा हुमायूँ और बाबर का यहाँ के भारतीय नरेशो से उत्तम था।[१]

सामाजिक स्थिति

मुगलकाल तो समाजवादी था ही परन्तु इसके पूर्वार्द्ध में भी समाज की प्रगतिशीलता स्पष्ट होती है। जिस प्रकार आज के समय में विभिन्न आर्थिक वर्गभेद हैं उसी तरह उस समय भी था। सभी के रहन-सहन का स्तर भिन्न था प्रथमवर्ग में बड़े सरकारी कर्मचारी एवं अमीर तथा दूसरे में निम्न कर्मचारी श्रमिक एवं किसान थे।

अमीर एवं पदाधिकारी

इन लोगों का जीवन स्तर उच्च था। युद्धकाल में भी आमोद-प्रमोद मनाया जाता था। इनके अन्दर दानशीलता, वीरता, विद्या प्रेम के साथ सुखमय जीवन बिताने की आदत भी थी। समाज में भेद-भाव भी उत्पन्न था। कहीं-कहीं जीवन में दयनीयता भी थी लेकिन वह अमीरों तक नहीं पहुँच पाती थी।

(१) मध्यकालीन भारत—१००० से १००७ ई० तक, पृ० ३६७ से ५०२ तक, पी० डी० गुप्ता, एम० ए० (कलकत्ता) प्रिंसिपल सुरजा कालेज, तथा एम० एल० शर्मा, एम० ए० साहित्यरत्न, मध्य युग का संक्षिप्त इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति दिनेशचन्द्र भारद्वाज तारीखए शेरशाही तथा आइने अकबरी।

मध्यम निम्नवर्ग

इन लोगो का जीवन साधारण था। ये धन को अज्ञात ही रखते थे मजदूर परिश्रम अधिक करता था पर पारिश्रमिक कम मिलता था। निम्नवर्ग का जीवन दु खमय था। साधारण नौकर डेढ़ रुपए मासिक पाता था। कुछ शासको ने अकाल आदि मे क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की थी परन्तु वह सन्तोषजनक नहीं जान पडती है।

स्त्रियों का स्थान

हिन्दू राजपूत नरेशो के यहाँ पुत्री जन्म अशुभ माना जाता था। पर्दे की प्रथा थी। परन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियाँ मजदूरी आदि भी करती थी। मुसलमानी हरमो एव हिन्दू राजमन्दिरों की बेगमो एव रानियो को भी यहाँ का महत्व स्वीकार था। मुसलमानो के आतको से बाल-विवाह का भी प्रचलन हो गया था तथा विधवाओ को अपने सौहर की मृत्यु तथा वीरगति पाने के उपरान्त सती भी होना पडता था। विवाहो में स्वयम्बर एव बहु विवाह प्रथा भी प्रचलित थी परन्तु स्त्रियो को बहुभर्तृता की अनुमति नहीं जान पडती है। हरमो, राजमन्दिरो मे रानियो की सख्या, छोटी-बडी रानी से प्रेम करना, सौतेले भाइयो का व्यवहार इसके साक्ष्य हैं। हिन्दुओ के उच्च घरानो मे विधवा विवाह नही होता था परन्तु निम्न वर्गों मे कुछ कुछ चालू हो गया था। स्त्रियो में वेश्या प्रवृत्ति कम थी। तथा यह प्रथा समाज मे निन्दनीय एव घृणित थी।

तत्कालीन समाज मे स्त्रियो ने कुछ कौशल भी दिखाया है जिसके साक्ष्य मे चन्देल राजकुमारी दुर्गावती चाँद बीबी फत्ता की माँ (मेवाड की) इत्यादि की वीरता उज्ज्वल चरित्र पतियो को युद्ध के लिए प्रोत्साहन देना शासन आदि का चलाना है।

जाति प्रथा—का प्रचलन होने से छुआ छूत की भावना का उद्रेक भी दृष्टिगत होता है।

पहनावा

शासकीय वेश भूषा मे सल्तनतकालीन शासको द्वारा शिर पर कुलाए (कुलहीं) धारण का जाती थी। वे काबा भी पहनते थे। हुमायूँ भी वस्त्रो का शौकीन था। उसकी कोट को "अलवमचा" कहा जाता था। रगीन एव चित्रित वस्त्र जराऊ आदि भी पहने जाते थे।

उच्चवर्गीय वेशभूषा में मुसलमान सलवार, पायजामा तथा "खिलात" का

वस्त्र पहनते थे लेकिन हिन्दू अमीर पतली धोती तथा कन्धे पर श्वेत चादर और कान में वाली तथा जाड़ों में "दगल" नामक कोट पहनते थे।

सर्व साधारण का पहनावा सादा होता था। लंगोट तथा धोती ही विशेष पहनावा था। ब्राह्मण कमर के ऊपर वस्त्रहीन ही रहता था। स्त्रियाँ सादी धोती पहनती थीं।पैरों मे अमीर लोग शानदार जूते तथा सर्वसाधारण पनहियाँ पहनते थे।

आभूषण

आभूषण के प्रति स्त्री-पुरुष दोनो मे प्रेम परिलक्षित होता है। आइने अकबरी मे ३७ आभूषणों की सारिणी है जो चाँदी और सोने से निर्मित है। चोक-शीशफूल (शिर) कर्णफूल—पीपलपट्टी, भँवर चम्पाकली (कान) नथ (नथ का आगमन मुसलमानों के आगमन से है) (नाक में) हार-गुलबन्द (गले मे) बाजूबन्द, गजरा, बड़े कंगन,(बाँह मे) अँगूठी (अँगुली मे) कटिमेखला (कमर मे) पायल, घुँघरू, बिछिया (पैर में) अधिक प्रचलित थे। हिन्दुओं मे आभूषण को सुहाग का चिह्न माना जाता था। गरीब से गरीब स्त्री भी आभूषण पहनती थी।

शृंगार एवं सौंदर्य प्रसाधन

अबुल फजल ने १६ शृंगारों मे—स्नान, तेल मर्दन, केश विन्यास-गले मे आभूषण, काजल लगाना, मोती नाक में, गले मे हार, मेंहदी रचना, किंकडी पायल घुंघरू, पुष्पमाला एव कटाक्ष आदि की व्यवस्था बताई है। अनेक तरह के तेलों का प्रचलन था। पुरुषों मे भी बारह तरह के शृंगार की प्रथा थी।

खान-पान

अधिकांश लोगो का भोजन चावल, मक्का, दाल था। जन साधारण उत्तम कोटि के भोजन नही पाते थे। चपातियाँ जौ और गेहूँ की होती थीं। घी-खिचड़ी, दही तथा भोजनोपरान्त पान का प्रचलन था। अमीर लोग घी, दूध, दही, हलुआ, अचार, पनीर, पूडी कचौड़ी, खीर आदि का इस्तेमाल करते थे।

अलबरूनी के अनुसार ब्राह्मण हर तरह के मांस से परहेज करता था। हिन्दू मांस भक्षी नहीं होता था। मुसलमानों में मांस का अधिक प्रचलन था। जिनमें चिड़ियों और जानवरो का मांस होता था। (गाय को छोड़ कर)।

फलो में नारंगी, खीरा, अमरूद तथा खजूर, आम, जामुन है। आम और जामुन सर्वसाधारण के उपभोग्य की वस्तु थी। समरकन्द की नाशपाती और सेब अफगानिस्तान के अंगूर अमीरों के प्रिय फल थे।

मादक द्रव्यों मे मदिरा, अफीम, भाँग तथा तम्बाकू का प्रचलन था अफीम

का सेवन राजपूत और पठान करते थे। तम्बाकू का प्रचलन पुर्तगालियो के आगमन से हुआ। बर्फ का प्रयोग भी गर्मियो मे आइने अकबरी के अनुसार होता था।

मनोरंजन

तत्कालीन समाज में मेलो और त्योहारो, खेलकूद, घुडसवारी, नौका बिहार, पशुदौड, एव कुश्तियां विशेष समादृत थी। पशुओ के युद्ध में आनन्द लिया जाता था। ताश और चौपड (चौसर) का विशेष प्रचलन था। डा० अशरफ के अनुसार ताश का प्रचलन जो भारत मे हुआ इसका पूर्ण श्रेय बाबर को है। जुएँ का खेल भी प्रचलित था। नृत्य-गान आदि का महत्व था।

त्योहारो मे होली, दीवाली, दशहरा, शिवरात्रि, रक्षाबन्धन, बसत पचमी हिन्दुओं के तथा मुसलमानों के ईदुलजुहा-नौरोज एव शब-ए बरात विशेष समादृत थे। इन त्योहारो में १६ वी शती के पूर्वार्द्ध मे तो नहीं लेकिन उत्तरार्द्ध में आपसी सहयोग हिन्दू मुसलमान करते थे। दोनो एक दूसरे के उत्सव मे भाग लेने लगे। इस तरह कटुता दूर हो रही थी। शानदार भोजन, आमन्त्रण, जन्मोत्सव तथा अन्य समारोह भी मनाये जाते थे, जिसमें लोग भाग लेते थे। इस तरह हिन्दुस्तान भर के मनोमालिन्य दूर हो रहे थे।

हिन्दुओं में वर्णव्यवस्था की शृंखला कुछ टूटती-सी नजर आती है जो मुसलमानी आक्रमणो से ज्यादा जर्जर हो गई। फिर भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का परिगणन होता था। राजपूतो और मुसलमानों के वैवाहिक सम्बन्ध भी कालान्तर मे चालू हो गए थे।

सवारी

सवारियों मे भी कुछ विशेष समृद्धि के लक्षण दिखाई पडते थे। जिनमें घोडो, हाथियों, रथो और पालकियों का प्रयोग होता है।

चरित्र

प्राचीनकाल से ही भारतीयों का चरित्र उज्ज्वल एव श्लाघनीय रहा। मैगस्थनीज, ह्वेनसाग, अलबरूनी तथा शमसुद्दीन अबू अब्दुल्ला आदि विदेशी यात्री इतिहासकारों के अनुसार चोरी न करना, मिथ्या न बोलना, प्रमाद न करना, बेइमानी न करना, किसी का अनभल न करना, कपट न करना, धोखा न देना, सयम न तोडना, जीवन-मरण की परवाह न करना यहाँ के उच्चादर्श थे परन्तु मुसलमानी आक्रमणों के समय इन पर कुछ बुरे प्रभाव परिलक्षित होने लगे थे तथा मानसिंह आदि की उत्पत्ति होना शुरू हो गया था। इसके विपरीत मुसलमानो में कुछ छल-छद्मता अधिक थी जो कूटनीति राजनीति में साम्राज्य स्थापन एव विस्तार के लिए आवश्यक थी।

अंध-विश्वास

हिन्दू तथा मुसलमानो मे सैकड़ो अन्धविश्वास अपना अस्तित्व जमाए बैठे थे। फलित ज्योतिष विशेष समादृत थी। वीरों, फकीरों, साधुओं का स्थान पूज्य था। बलि प्रथा भी थी। मत्तो तथा साधुओ ने जनता पर अधिकार जमा लिया था। सगुन-असगुन भी विचारणीय था।

दास-प्रथा

नौकरशाही के साथ-साथ पूर्वकालिक दास प्रथा चालू रह गई। अमीर लोगो के पास दास और नौकर थे। रिश्वत भी चालू थी परन्तु शेरशाह के काल में नहीं बल्कि उसके उत्तरकालीन मुसलमान-काल मे। उपहार प्रथा भी चालू हो गई थी। बड़े-बड़े पदाधिकारियो को भेंट दी जाती थी। दरबारो में पोशाकें आदि उपहार में वितरित की जाती थी।[1]

धार्मिक स्थिति

वैष्णव भक्ति के चतुर्थयुग में भारत स्वाधीनता के पथ पर था फलतः कालिदास, बाण, भवभूति आदि का उदय हुआ और भागवत धर्म का प्रचलन जोर शोर से हुआ। परन्तु धीरे-धीरे समय बदला और स्वाधीनता का सूर्य दिल्ली अजमेर के चौहान सम्राट पृथ्वीराज की मृत्यु के साथ अस्ताचलगामी हो चला। फिर देश को गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद लोदी पठानों के दुर्विचार को सहना पड़ा। परन्तु इनको भी नष्ट-भ्रष्ट करने वाला बाबर का आक्रमण तो अन्त ही कर दिया तथा सूरीवंश के उपरान्त मुगल साम्राज्य ही स्थापित हुआ जो १५२६ से १७०७ तक चला।

धार्मिक आन्दोलन

मुसलमानो की क्रूरता से आक्रान्त शान्ति एवं व्यवस्था के अभाव से विपन्न तथा न्याय और धर्म से वंचित धर्मप्राण भारत में धार्मिक आन्दोलनों की खूब चर्चा चली। जिनमें स्वामी रामानन्द, और आचार्य बल्लभ विशेष उल्लेखनीय हैं। रामानुज, वल्लभ, रामानन्द, शैव, नाथ, शाक्त, सनातनधर्मी, उदासी, परमहंस, सूफी इस्लाम आदि सब अपने-अपने मतों के प्रचार में रत रहे। कबीर जुलाहा सेनानाई, रैदास चमार, धन्नाजाट, महाराज भीमानी, सुरसुरानन्द, सुखानन्द, भावानन्द आदि

(१) मध्यकालीन भारत, १००० से १००७ ई० तक, पृ० ४०२ से ४०७ तक पी० डी० गुप्ता एम० ए०, प्रिंसिपल, खुर्जा कालेज, मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति दिनेशचन्द्र भारद्वाज-मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी।

रामानन्द के शिष्य थे। जिससे प्रमाणित होता है कि "हर का भजे सो हरि का होई। जाति-पाँति पूँछे नहिं कोई। अर्थात् ब्राह्मण धर्म की कर्मकाण्डता को ठेस पहुँच रही थी। वर्णाश्रम मर्यादा का पालन तथा संस्कृत के प्रयोग पर बल दिया जाता था।

स्वामी रामानन्द के बाद १५वी शती के उत्तरार्द्ध में दक्षिणात्य तैलग ब्राह्मण श्री लक्ष्मण भट्ट के द्वितीय पुत्र आचार्य बल्लभ का स्थान आता है जो श्री नारायण भट्ट के शिष्य थे। ये शुद्धाद्वैत और आचार पक्ष के पुष्टिमार्गी सन्त थे।

सूफी सम्प्रदाय ने अपना सिक्का जमाना शुरू किया था। मुसलमानी आतङ्क से कुछ कम लेकिन सूफी सन्तो की सहृदयता और उदारता मे आकर अधिकाश हिन्दू मुसलमान बने। ये इस्लामी नही बल्कि ईश्वर विश्वासी और प्रेमी तथा ध्यानी थे फिर भी इस्लाम के विरोधी नही बल्कि सहयोगी थे।

कुछ ऐसा देखने मे मिलता है कि हिन्दुओ मे जो पहले मुसलमानो के प्रति मनोमालिन्य था वह कुछ धुंधला सा पडने लगा तथा आपसी सौहार्द्र की भावना जाग्रत होने लगी। सोलहवी शदी के शाह करीम सिन्धी अहमदाबाद के एक वैष्णव साधक से प्रभावित थे।

वैष्णव का प्राबल्य अधिक था। बौद्ध-जैन कुछ कमजोर से दृष्टिगोचर होने लगे थे। नाथ योगियो की धार्मिकता जो शैव मत की ओर ज्यादा मुडी जान पडती है अधिक प्रबल थी परन्तु वैष्णवों के आतक से कुछ दबती सी जा रही थी। इसी बीच इस्लाम और सूफी का दिग्दर्शन भी हुआ। इस तरह आभासित होता है कि वह युग धार्मिक आन्दोलनो का गढ सा बन गया था। हर क्षेत्र मे एक नया धर्म ही दिखाई पडता था।

इन धार्मिक सन्तों और पीरों की उपासना पद्धतियों में एक वर्ग निर्गुण निराकार, अलख, अरवरन, अरूप-स्वरूप मे ईश्वर की मान्यता द्योतित करता था। कबीर आदि इसी मे थे तथा इसको और लोगो ने सगुणो, पासना, साकार, रूपवास, सौंदर्य की खान उपमा की कोटि से परे "छबि गृह दीप सिखा जनु बरई" अथवा "केहि पट तरौं" क्योंकि सभी उपमायें जूठी हो गई हैं की भावना भी परिलक्षित होती है। निर्गुण शाखा के दो विभाग थे ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी तथा सगुण धारा के दो—राम भक्ति और कृष्णभक्ति की साखा मे निर्मित थे।

बाबर तथा हुमायू की तरह अकबर ने धार्मिक सकीर्णता, को पूर्णतः स्वीकार नही किया था। दीन इलाहीं सभी धर्मों का समन्वित परिपाक था जो अकबर द्वारा हिन्दू मुसलमान के मैत्री भाव को प्रोत्साहन देने के लिए प्रचलित किया गया था।

लौकिकी

अध्ययनों से ज्ञात होता है कि यह युग धर्मोन्मादी काल था परन्तु इसमें भी शेरशाह ने अपने साम्राज्य को लौकिक ही बनाया था। शासक किसी न किसी धर्म से संलग्न होता था। औषधालय, दानालय, भोजनालय धार्मिक दृष्टि से बनवाये गए। शेरशाह के अनुसरण से अकबर ने भी राजनीति को धर्म से मुक्त करने का प्रयास किया था। शासन की नीति का धर्माचार्यों के लिए कोई महत्व नहीं था। धर्म के क्षेत्र में ही धर्म समाहित था, राजनीति में नहीं। अकबर द्वारा धार्मिक मेल की पयस्विनी औरंगजेब की कट्टर धर्मान्धता से ग्रीष्मकालीन सूखी सरिता के सदृश हो गई।

पूर्वार्द्ध में असहिष्णुता तथा मध्य में सहिष्णु

सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में तो इस्लाम धर्मावलम्बी मुसलमान हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु ही रहे। मन्दिरों को तुड़वाना, मन्दिरों की जगह मस्जिदों का निर्माण मूर्तियों का खंडन ही इनका कर्त्तव्य रहा। बाबर, हुमायूं इसी तरह के बादशाह थे परन्तु शेरशाह इसका अपवाद रहा है किन्तु इस्लाम के प्रति उसके भी हृदय में श्रद्धा थी उसने जोधपुर में एक मन्दिर तोड़वाया था लेकिन उदार भी रहा। अकबर को तो धर्म सुधारक ही कहा गया है। धार्मिक दृष्टि से दिए गये दानों जायदादों, सम्पत्तियों के सदुपयोग का भी ध्यान रक्खा जाता था दीन दुखियों की परवाह कुछ अगर की जाती थी तो धार्मिकता की आड़ में। [1]

आर्थिक दशा

भारत मुख्यतः कृषि प्रधान देश है। किसान शासक को भूमि उपज का चौथाई भाग कर रूप में देता था और भूमि के पूर्ण स्वामित्व का उपयोग करता था कृषि का प्रबन्ध शासन का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता था। आय के मुख्य साधन भूमि कर थे। भूमि कर ही आय का शासन के लिए प्रधान साधन था। शेरशाह ने सामन्तों की बीच वाली कड़ी को समाप्त कर दिया था परन्तु बाद में वह मनसबदारी की पोशाक पहन कर घुमी। निम्न वर्ग की आय शोचनीय थी मजदूरी अधिक वेतन कम १ मास की कमाई १ रुपया पचास पैसे के बराबर थी। कृषि उपज ही उनके लिए आय थी।

कृषि के यन्त्रों में किसी तरह की उन्नति नहीं हुई थी। अतः छोटे पैमाने पर ही खेती होती थी। गेहूँ, चावल, जो, बाजरा, मक्का, ज्वार, गन्ना, नील, तिलहन, कपास दाल आदि मुख्य उपज थी।

---

(१) भक्ति का विकास, पृ० ३७६ से ४१६, डा० मुन्शीराम शर्मा (२) मध्यकालीन धर्म साधना, हजारी प्रसाद द्विवेदी। (३) वैष्णव धर्म रत्नाकर (४) मध्यकालीन भारत, सभ्यता और संस्कृति, दिनेशचन्द्र भारद्वाज।

अकाल दुर्भिक्ष—अवर्षण अथवा अतिवृष्टि से पड जाते थे । उपज नष्ट हो जाती थी । लोगों को मृत्यु के कारण काल के गाल मे विवश होकर जाना पडता था । शासन की ओर से कुछ सुविधाये मिलती थी पर वे पूर्ण सफल नही हो पाती थी ।

व्यापारिक केन्द्र

गोआ, कोचीन, मछली पट्टम, सोनारगाँव, चटगाँव, श्रीपुर आदि मुख्य बन्दर गाह थे । सूती कपडे, रेशमी साडियाँ, छपी साडियाँ छींट, नील, काली मिर्च, मसाले आदि निर्यात में तथा सोना-चाँदी आदि विदेशो से आती थी । दिल्ली, आगरा, फतेहपुर,लाहौर, बुरहानपुर, खानदेश, अहमदाबाद, बनारस, पटना, राजमहल, वर्दवान, हुगली, ढाका, चटगाँव आदि तत्कालीन समृद्धशाली नगर थे । शेरशाह द्वारा निर्मित लम्बी-लम्बी सडकें एक भाग को दूसरे भाग से मिलाती थी जिनमें सबसे बडी सडक ग्रांट ट्रंक रोड है । इसकी लम्बाई १५०० कोस थी । बगाल में ढाका से सुनारगाँव से पजाब में अटक तक । आगरा से बुरहानपुर, आगरा से जोधपुर, चित्तौड तक लाहौर से मुलतान तक ये चार सडकें थी । इनके किनारे पर छायादार वृक्ष सराय कुएँ आदि की व्यवस्था थी । ये सरायें डाक का भी कार्य करती थी । जलीय मार्गों में नावों का उपयोग सामग्री वहन हेतु किया जाता था ।

व्यवसाय

भारत का व्यवसाय और उद्योग अधोलिखित है । उद्योग धन्धों मे सूती तथा रेशमी कपडो के लिए भारत का नाम समस्त एशिया और यूरोप तक था । बिहार बगाल ,गुजरात मे सूती तथा सोनारगाँव—ढाका मे मलमल बनते थे । कपडों की छपाई भी होती थी । मूर्तियों की कलाकारी, चित्रों की चित्रकारी श्लाघनीय है ।

उत्सवों, समारोहो, त्योहारों, मेलों, सैन्यप्रबन्ध, लडाइयो, आमोद-प्रमोद, भेंट, उपहार, शादी, विवाह, भोज-निमन्त्रणादि मे व्यय होता था । मस्जिद-मन्दिर के निर्माण कार्य में भी व्यय होता था ।

प्रचलित मुद्रा

सोलहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध जो शेरशाह का शासन-काल था भारतीय मुद्राओ के इतिहास मे अत्यन्त ऊँचा स्थान रखता है । समस्त देश मे एक ही मुद्रा का प्रचलन था । सूरी के पहले मुद्राओं की स्थिति शोचनीय थी । दिल्ली के अन्तिम सुल्तानो के काल मे मुद्रा का स्तर एव मूल्य एकदम गिर गया था । अतः शेरशाह ने सोना-चाँदी तथा ताँबे के अनुपातों को ठीक करके समस्त राज्य में एक नवीन

सरल मुद्रा प्रणाली प्रचलित की इससे व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला।[१] तत्कालीन भारत की आर्थिक स्थिति आक्रमणों के कारण डांवाडोल की दशा में थी। १० लाख रुपये वार्षिक हुमायूँ को देने के लिए शेरशाह ने वचन दिया था।[२]

शिक्षा और साहित्य

शिक्षा प्रबन्ध राज्य का कर्तव्य न होकर समाज का कर्तव्य था। जिसका आधार धार्मिक था। हिन्दू अपनी पाठशालाओं में विद्यार्थियों को साहित्य, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र पढ़ाते थे। तो मौलवी मकतबों और मदरसों में इस्लामी शिक्षा देते थे। बादशाह भी शिक्षा के प्रेमी थे। वे विद्यार्थियों को वजीफे, स्कूलों के खर्च के लिए सहायताएँ दिया करते थे तथा विद्वानों का सम्मान भी करते थे। विद्यालयों की स्थापना भी होती थी। स्त्री-शिक्षा भी उपेक्षणीय नहीं जान पड़ता उच्च घराने की स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करती थी। १६वीं शती के पूर्वार्द्ध में जौनपुर शिक्षा का केन्द्र जैसा बन गया था।[३]

बाबर स्वयं अरबी-फारसी और तुर्की मे कविता करता था। बाबरनामा उसकी अमर कृति है। दरबार मे रचयिताओं का स्थान था। युद्धस्थलों मे भी विशाल पुस्तकालयों की झलक मिलती है। 'वाजिकरात-उल-वाकआत' का लेखक जौहर हुमायूँ का सेवक था। मुल्ला दाउद की तारीख अल्फी, अब्दुल फजल का आइने अकबरी तथा अकबर नामा, मुन्तखब-उल-तवारीख, गुलबदन बेगम का हुमायूँ नामा, अब्बास खाँ शेरवानी की तारीख-ए-शेरशाही, नियामतउल्ला की मरवजन अफगानों आदि फारसी ग्रन्थ हैं। संस्कृत ग्रन्थों का भी फारसी आदि मे अनुवाद कार्य भी हुआ। फैजी ने कथा सरित्सागर और भागवत का अनुवाद किया। फैजी और गिजाली कवि थे।[४]

हिन्दी साहित्य की भी उन्नति हुई। संस्कृत की गति धीमी थी। हिन्दू तथा मुसलमान कवियों ने हिन्दी साहित्य का परिवर्द्धन किया। कबीर का बीजक, जायसी का पद्मावत, आखिरी कलाम (इसमे बाबर का जिक्र है) बीरबल के चुट-कुले, अब्दुलरहीम खानखाना के दोहे, सूर और तुलसी के सूर-सागर और रामायण, रसखान के सवैये विशेष महत्वपूर्ण हैं। वैसे तो यह हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग ही है।[५]

यह काल कला के वैभव का युग है। ललित और उपयोगी दोनों कलाओं

(१) मध्यकालीन भारत, पृ० २००, पी० डी० गुप्ता। (२) वही, पृ० ४०७ से ४०६ तक तथा मध्ययुग का संक्षिप्त इतिहास। (३) मध्यकालीन भारत, १००० से १००७ तक, पृ० १८३, पी० डी० गुप्ता एवं उनके सहयोगी। (४) मध्यकालीन भारत, १००० से १००७ तक, पृ०४१० से ४१२।

को आश्चर्यजनक उन्नति हुई। फारसी और हिन्दी शैली का सयोग काल है। चित्रकारी कढाई, बुनाई, सोने चाँदी के कामों के ऐश्वर्य का उल्लास युग था।

सम्राट इमारतो के निर्माण करवाने के शौकीन थे। बाबर ने सीकरी, बयाना धौलपुर, ग्वालियर, आगरा मे कई साफ सुथरी इमारते बनवायी। फतेहाबाद की मस्जिद हुमायूँ द्वारा निर्मित है। शेरशाह, अकबर, जहांगीर शाहजहाँ आदि के उदाहरण तो सर्वविदित ही हैं कि वे कितने भवन-निर्माण के प्रेमी थे।

भारतीय चित्रकारो मे 'दसवन्त' और बसावन तथा ईरानी कलाकार मे ख्वाजा अब्दुस्समद अधिक प्रसिद्ध थे।

संगीत—सगीत की भी अभूतपूर्व उन्नति हुई। बाबर अनेक गीतो की रचना करने वाला था। उसने हिरात के गायको की प्रशंसा की है। बाबर स्वय गीत लिखता था। सुरीले गीत समादृत थे। हुमायूँ सप्ताह मे एक दिन अवश्य गीत सुना करता था। अकबर का भी ध्यान इस ओर था। वह स्वय नगाड़ा बजाता और गीत लिखता था। तानसेन विशेष उल्लेखनीय है।

उपसंहार

जायसीकालीन संस्कृति १६वी शताब्दी की है जब मुगल साम्राज्य की स्थापना ऊहापोह की स्थिति मे थी। क्योंकि सत्ता स्थापित होने के पूर्व शेरशाह भी बीच मे आ पड़ा था। साम्राज्य अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था। सघर्ष की भडी लगी थी। उत्तराधिकारो के नियम नही थे। शासन की बागडोर तलवारो के बल पर ली जाती थी। अत: सम्पूर्ण शासन शासक मे ही केन्द्रित रहता था। राजकीय कर्मचारियो मे अमीर से लेकर मुकद्दम भी होते थे इसका स्थान परिवर्तन भी होता था। अफगान शेरशाह ने जागीर प्रथा समाप्त कर दी थी परन्तु हुमायूँ ने नही। अकबर ने उसे मनसबदारी की सज्ञा दे दी थी। इस तरह राजनैतिक अस्थिरता विद्यमान थी। भूमि प्रबन्ध, न्याय, पुलिस प्रबन्ध, सैन्य सगठन, युद्ध की प्रक्रिया तथा अन्य सार्वजनिक सुधारो का वर्णन मिलता है। सामाजिक स्थिति न अति उत्तम न अति मध्यम थी। उच्च वर्ग और मध्यम तथा निम्न तीन वर्ग थे। स्त्रियों का स्थान भी मध्य की ही स्थिति में था। जाति प्रथा का भी प्रचलन था। वस्त्राभूषण मे कुलहा, वाली, धोती, लगोट, कर्णफूल, नथ, बिछिया, कटि मेखला आदि का उल्लेख है। तेलों की भी चर्चा हुई है। रोटी, चावल, दाल भोज्य सामग्री मे व्यवहृत होते थे। मास केवल मुस्लमानो में प्रचलित थी। फलो का उपयोग भी होता था। अफीम, भाग, आदि

(१) मध्यकालीन भारत–पृ० ४१२ से ४१५ तक। (२) वही, १००० से १००७ ई० तक, पृ० ४२०, पी० डी० गुप्ता। (३) वही, पृ० ४१५ से ४२० तक।

भी व्यवहृत होते थे मनोरंजन में पासा, चौपड़, उत्सव, त्यौहार आदि थे। घोड़े हाथी रथ इत्यादि सवारियाँ थीं। चरित्र की स्थिति संदिग्धावस्था में थी। अन्धविश्वासों का स्थान था। दास-प्रथा, रिश्वत एवं उपहार का भी प्रचलन था। वह युग धार्मिक उन्माद का काल था। आर्थिक दशा मध्य की स्थिति में थी। यातायात में सुधार किया गया था। शिक्षा, साहित्य और कला उन्नतिशील थी।

इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि जायसी काल कई समष्टियों के संक्रान्ति का काल था। हिन्दू अफगान मुसलमान की सभ्यता, धर्म, साहित्य, कला, शिक्षा रहन-सहन, रीति-रिवाज का आपस में समन्वय की दृष्टि से कुछ का मेल तथा कुछ का उच्चाटन हो रहा था। धार्मिकता जोरों पर थी तथा इनके धर्मगुरुओं ने अपने उपदेशों, प्रवचनों तथा लेखों द्वारा, सुधार मार्ग की ओर अपने-अपने दृष्टिकोण से समाज को ले जाना चाह रहे थे। जिनमे जायसी से थोड़ा आगे पीछे की अवधि में कबीर, सूर, तुलसी की कृतियाँ भी अविस्मरणीय महत्व रखती हैं। जिनके अनुशीलन से जायसीकालीन स्थितियों के सम्यक विवेचन पर प्रकाश पड़ता है। ऐतिहासिक श्रोतों में बाबर, अबुल फजल, गुलबदन, रहीम, बीरबल आदि की कृतियाँ भी विचारणीय हैं। जो जायसीकाल से पहले तथा बाद की संस्कृति को अपने में संजोए हुए हैं। ऐतिहासिक ग्रन्थ, धार्मिक ग्रन्थ, एवं यात्रा विवरणों से तत्कालीन संस्कृति एवं सभ्यता जानी जाती है। जिस युग में पद्मावत के रचयिता जायसी का उद्भव हुआ तथा जिन गेय परिस्थितियों के प्रभाव से अनु-प्राणित होकर कवि ने रचना की जिसमें उन युगगत् समस्याओं का आकलन भी प्रस्तुत करने का सफल प्रायास किया।

अध्याय २

जायसी कालीन भूगोल

भारतीय सीमा

जायसी ने भूगोल के 'धरनिखण्ड' सातों द्वीप, नवों खण्ड इत्यादि भौगोलिक सकेतो का कई बार प्रयोग किया है। उत्तर में हेम[1] (हिमालय) दक्षिण में सेतु (सेतुबन्ध रामेश्वरम्) पूर्व में गौड बगाला, पश्चिम में गाजना (गजनी) भारतीय सीमा थी। तत्कालीन सामाजिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे भारतवर्ष के लिए 'चार-खूंट' शब्द भूगोल का सकेत था जिसके लिए कवि ने 'चहुँखण्ड' की कल्पना की है। ऐसा ज्ञात होता है कि जायसी के कल्पना जगत मे तत्कालीन भारतीय राजनीति, धर्म नीति एव सस्कृति का विकास इसी 'हेम सेत और गौर गाजना' की परिधि में ही हो रहा था। डा० अग्रवाल के अनुसार 'चहुँखण्ड' शब्द कवि ने तत्कालीन बोल चाल की भाषा से ग्रहीत किया है। भारतीय चतुर्दिक सीमा हेतु बाण ने उदयाचल-अस्ताचल, गन्धमादन तथा त्रिकूट बताया है। देवली ताम्रपत्र (८१६ ई०) से दक्षिण के सेतु उत्तर के तुषाराद्रि तथा पूर्व और पश्चिम में समुद्र की चर्चा मिलती है। इन साक्ष्यो से ज्ञात होता है कि कवियो मे चतुर्दिक सीमा बताने का भी प्रचलन था।[2] जायसी द्वारा उल्लिखित सीमा से ज्ञात होता है कि हमारी परिधि का सकोच होना शुरू हो गया था क्योकि इससे पूर्व पृथ्वीराज तथा जयचन्द काल मे हमारी सीमा गजनी ही नही वरन् इससे पश्चिम हेरात और हेरात से भी पश्चिम खुरासान तक हमारी देशीय सीमा रेखा थी।[4] जो जायसी काल में विलग है परन्तु शाही सेना के कूच के समय साथ दिये लेकिन चित्तौड मे ज्यादा उलझे हुए देखकर दिल्ली पर आक्रमण भी कर दिया और जब चित्ताड फतेह हो गया तो अलाउद्दीन से डरने भी लगे।[5]

दिल्ली—भारतीय सास्कृतिक-राजनैतिक एवं ऐतिहासिक क्षेत्रो मे दिल्ली की सार्वकालिक महत्ता रही है। जायसी ने काव्य रचना काल मे 'दिल्ली सुलतान'[6]

(१) हेमसत और गोर गाजना—३४१।५ प तथा ४२।१० प। (२) मैं अहान चहुँखंड बखानी—३।४।५।७ प। (३) टीक की टिप्पणी पृ० ५२५। (४) पृ० रा० रा० का० सा० अध्ययन पृ० २६ बा० २६ डा० सूर्यनारायण पाण्डेय। (५) दिल्ली की खोज। (६) चित्तौड़गढ़ वर्णन खंड सम्पूर्ण—पद्मावत।

शेरशाह का उल्लेख स्तुति खंड मे ही किया है तथा कथानक काल में ढीली नगर की विवेचना है। रतनसेन बिदाई खड से यह ज्ञात होता है कि अलाउद्दीन ढीली नगर का सुल्तान है जो चित्तौड के 'नियर है।' नियर शब्द से ज्ञात होता है कि ढीली के सुल्तानी राज्य की सीमा चित्तौडी सीमा के समीप है तथा वह कम भी आक्रमण कर सकता है। अनुसन्धान स्रोतो से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन की दिल्ली शुरु से लेकर छठवीं तथा केवल मुस्लिम काल से तीसरी सदी है और शेरशाह वाली दिल्ली शुरू से तेरहवी तथा मुस्लिम दिल्ली मे दस वीं है।

खिलजी अलाउद्दीन की दिल्ली—अलाउद्दीन को इमारतो के बनवाने का बड़ा शौक था यद्यपि उसका अधिकांश समय लड़ाइयो में बीता फिर भी उसने पृथ्वीराज की दिल्ली लालकोट को छोड़कर अपनी राजधानी यहाँ से २॥ मील उत्तरपूर्व में सीरा के स्थान पर सन् १३०३ ई० मे निर्मित करवाई जो दिल्ली से ६ मील पूर्व है, जिसकी दीवारें अभी तक खड़ी हैं। वर्तमान समय मे वहाँ शाहपुर नामक ग्राम बसा है। पुरानी दिल्ली मुगलों की बर्बरता से दो बार बस चुकी थी अतः उसने किला राय पिथौरा की मरम्मत कराके एक नया दुर्ग निर्मित करवाया तथा उसका नाम सीरी रक्खा जिसकी दीवारें चूने के पत्थर से बनी हैं और घेरा एक मील का है। इस समय की राजनीति में सीरी को नई दिल्ली और पृथ्वीराज की दिल्ली को पुरानी दिल्ली कहा जाता है। तैमूरी आक्रमण के ७० वर्ष पूर्व आने वाले इब्नबतूता नामक इतिहासकार ने सीरी को 'दारूल खिलाफत' अर्थात् खिलाफत की गद्दी लिखा है। तथा स्वयम् तैमूर ने अपने रोजनामचे मे लिखा है कि 'सीरी शहर गोलाकार बसा है, इसमें बड़ी-बड़ी इमारतें हैं—इनके चारो ओर एक मजबूत किला है जो सीरी के किले से बड़ा है। उसने सीरी शहर के ७ दरवाजे का उल्लेख किया है.........। सीरी मुसलमान बादशाहों की तीसरी राजधानी थी। सीरी का किला सन् १३२१ ई० तक कायम रहा। तैमूर और यजीदी के अनुसार ३ शहरों को मिलाकर दिल्ली कहा जाता था—उत्तर पूर्व में सीरी—पश्चिम में दिल्ली जो सीरी से बड़ी थी तथा मध्य में जहाँ पनाह जो दिल्ली से भी बड़ा था।

काव्य रचनाकाल की दिल्ली शेरगढ अथवा शेरशाह की दिल्ली है। शाह ने दीनपनाह के किले की मरम्मत करवा के शेरगढ़ नाम रक्खा। जो इन्द्रप्रस्थ के वीरान किले पर निर्मित हुआ। 'तारीख-ए-शेरशाही के अनुसार दिल्ली शहर की पहली राजधानी यमुना से फासले पर थी परन्तु शेरशाह ने उसे तुड़वाकर फिर से यमुना के किनारे पर बनवाया और उसका नाम शेरगढ़ रक्खा जिसकी दक्षिणी सीमा कुमायूँ

(१) राजा बादशाह युद्ध खड, (२ शेरशाह दिल्ली सुल्तान १।१।३' १ प।

के मकबरे के निकट-पूर्वा यमुना नदी के किनारे तक, पश्चिम मे शहरपनाह । इस तरह इसका घेरा ६ मील था ।[१]

चित्तौड :—विवेच्य ग्रन्थ मे चित्तौड[२] एक गढ स्वरूप व्यवहृत है । चित्तौड बहुत मजबूत एव सुरक्षित था । अलाउद्दीन ने इस दुर्ग को जीतने का विचार करके पद्मावती को प्राप्त करने के बहाने दुर्ग का घेरा डाल दिया जो "आठ बरिस"[३] तक चला । शाह द्वारा लगाई हुई बगीची फलने लगी परन्तु दुर्ग नहीं लिया जा सका । अतः कपट या कूटनीति के सहारे "बैधो" रतन पान दे बीरा[४] और केवल ५ रत्नो पर ही मेल करके उसके यहाँ भोज स्वीकारता है लेकिन धोखे से रत्नसेन को बन्धन में डालता है फलत गोरा-बादलराउतों ने युद्ध किया और अन्त मे सब कुछ नष्ट हो गया, मात्र भस्म ही बच गई । कवि जायसी से केवल इतना ही ज्ञात होता है । परन्तु अकबरनामा,[५] मध्यकालीन भारत,[६] दिल्ली सल्तनत,[७] मध्ययुग का भारत[८] इसाए अमीर इत्यादि ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि दुर्ग का घेरा ६ माह ७ दिन तक ही रहा । युद्धोपरान्त वहाँ का किला खिज्रखाँ को मिला तथा नाम चित्तौड की जगह खिजराबाद रखा गया ।

अन्य :—दिल्ली सुल्तान शाह अलाउद्दीन के शाही फरमान (चित्तौड पर चढ़ाई कर) सुनते ही खुरासान, हैरात, गौड, बगाल, रूप, साम, काश्मीर, ठ्ठा मुलतान, बीदर, माँडो, गुजरात, ओडेसा, कार्वरू, कामता, पडआई, जूनागढ़ चैपानेर, चन्देरी, ग्वालियर, अंजगिरि, बान्धो, कालिजर, बिजैगिरि, रोहतास, कन्नोज इत्यादि सभी नगर, देश, गढ शाह की सहायता हेतु काँपते हुए ससैन्य चल पडे । अतः ज्ञात होता है कि इन पर शाही आधिपत्य था । परन्तु रूप, साम, खुरासान, हिरमिज खुरभुज हैरात आदि का नाम भी आया है जो हैमसैत गौड गाजना की परिधि से बाहर हैं और अलाउद्दीन का आधिपत्य गाजना तक ही था । अतः इन देशो से व्यापारिक अथवा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था । हैरात तो शाह के साथ शत्रुता का व्यवहार चित्तौड के घेराकालीन स्थिति मे ही दिल्ली पर आक्रमण कर व्यक्त करता है । परन्तु दूसरी ओर चित्तौड के साहाय्य मे सभी हिन्दू नरेश हैं लेकिन उनके राज्यो आदि का नामोल्लेख नही है ।

धार्मिक स्थल :—प्रयाग, काशी, गया, जगर नाथ अयोध्या, द्वारिका तथा

(१) दिल्ली की खोज, (२) चित्तौड़गढ वर्णन खण्ड सम्पूर्ण—पद्मावत ३) (४२ । १७ । १) प (४) (४३ । १ ५) प (५) रत्नसेन बन्धन खण्ड-गोराबादल युद्ध खण्ड पद्मावती नागमती सतीखंड) प (६ (टिप्पणी संस्करण की, पृ० ६६६) (७) डा० ए० बी० (८) आशिर्वादीलाल श्रीवास्तव ।

केदार नाथ आदि तीर्थस्थलों का उल्लेख मिलता है। गंगा यमुना के संगम तट पर प्रयाग है तथा इसी के समीपस्थ अरैल की भी चर्चा कवि ने की है जो पद्मावती की रोमावली की विवेचना में भी व्यवहृत है। काशी करवट लेना तत्कालीन धर्म प्राण जनता में समादृत था। गया में पिण्डदान सर्वोत्तम समझे जाते थे। जगरनाथ में जगरन, द्वारिका में स्नान केदारनाथ में दगवाना (छापलेना), अयोध्या का भ्रमण करना इत्यादि जायसी काल में उच्चतम समझे जाते थे। जिसे बादशाह की दूती अपना अनन्य धार्मिकता सिद्ध करने हेतु पद्मावती से कहती है। ६४ तीर्थों के भ्रमण की चर्चा तो है पर उनके नामोल्लेख नहीं हैं। जायस भी धर्मस्थान है। इन विवरणों से द्योतित होता है कि उक्त स्थान विशेष तीर्थस्थली स्वरूप में ही विशेष समादृत थे तथा किसी भी जपा-तपा जोगी आदि के लिए अनिवार्य था कि वह इनका भ्रमण आदि अवश्य करे। आज भी चारों धाम का तीर्थाटन आवश्यक समझा जाता है जो हमारी सीमान्त स्थली के कोनों पर हैं—उत्तर, केदार, और बद्री नाथ, पूर्व गया, पश्चिम द्वारिका दक्षिण सेतुबन्ध रामेश्वरम्। परन्तु जायसी के विवेचनों से तत्कालीन धार्मिक क्षेत्रों की परिधि उत्तरी भारत तक ही ज्ञात होती है।[१] गोलकुन्डा,[२] गढ़ारवटगा,[३] अंधियार खटोला तथा रतन पुर[४] यात्रा के मार्ग स्वरूप व्यवहृत है।

जायसी द्वारा उल्लिखित भारतीय सीमा के बाहरी देश

सिंहल (लंका) :—नायिका की जन्मस्थली होने से कवि जायसी ने (लंका) सिंहल का वर्णन अधिक किया है। लंका और सिंहल को कवि ने कहीं-कहीं एक तथा कहीं-कहीं अलग माना है। सिंहल द्वीप, दिया-सारा, जम्बू, लंक, कुंभस्थल तथा महुस्थल इन ६ ओं द्वीपों से उत्तम है। विवच्य काल में भूगोल की कल्पित कहानियों में ७ द्वीपों की कथा भी आती है। अरब और चीनी भूगोल में भी इन नामों की समता वाले आख्यान मिलते हैं। सम्भवतः कवि ने इसी मध्यकालीन किम्वदन्ती से इन सात द्वीपों का उल्लेख किया है। अनुसन्धान स्रोतों से ज्ञात हुआ है कि काठियावाड़ी समुद्र के पास दीउ नामक द्वीप था सम्भवतः वही दिया दीप रहा होगा और सरो दीप सुमात्रा का प्राचीन नाम था। जम्बू द्वीप में ही चित्तौड़ की चर्चा से ज्ञात होता है कि शायद भारत है। लंका दीप को डा० अग्रवाल ने स्पष्टतः सिंहल से अलग माना है परन्तु इतिहासकार शर्मा[६] के अनुसार लंका को ही अरब वाले सरन, लंका वासी राजा के नामा-

---

(१) बादशाह दूती खण्ड—पद्मावत तथा जायसनगरा धरा अस्थान (११। २३। १) प (२) (१२।१३।५) प (३) (१२। १३। ६) प (४) (१२। १३। ५ (५) टिप्पणी, टीका, पृ० २६ (६) लंका का इतिहास (७) पृथ्वीराज रासउ या सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३७-३८

नुसार सिंहल यूरोपीय लोग इसी को अपभ्रंश करके सीलोन कहा करते हैं तथा डा० सूर्यनारायण पांडेय ने भी लंका और सिंहल को एक ही माना है। कुशस्थल के विषय में पुराणों में भी कथानक मिलते हैं। कतिपय विद्वान् इसे कान्यकुब्ज का नामान्तर भी मानते हैं। हरिवंश पुराण और विष्णुपुराण में द्वारका को ही कुशस्थल माना गया है। कुछ लोग अवनीसिया से भी इसकी पहचान करते हैं[१]। सिंहल द्वीप की विशेषता है कि वह सात समुद्र—खार, खीर (क्षीर), दधि, उदधि सुरा, किलकिलात तथा मानसर[२] के बाद मिलता है। सिंहल दीप का वर्णन नगर वर्णन में द्रष्टव्य है। पल[३] का शब्द लंका के जोट में ही है। सम्भवत: इलोरा कैलाश मन्दिर की दोनो गुफाएं लंका-पलका कहलाती हैं। या यह शब्द मात्र तुक मिलाने के लिए ही है।

रूम-साम :—रूम देश अपने तोपचियों के लिए प्रसिद्ध था। शाह की सहायता में वे चले। यद्यपि कि इन दोनो देशो पर सुल्तान का आधिपत्य नहीं था फिर भी वे सहायक बने हैं। उस काल में ये दोनो देश (आरोमन) उस्मान के साम्राज्य थे।[४]

हरेउ-खुरासान :—हरेउ (हैरात) हरी सूद नदी के तट पर है। प्राचीन ईरानी भाषा में इसका उच्चारण हरैव है जो आज हैरात बन गया है। यह हिन्दूकुश के पश्चिम में था। चित्तौड़ चढ़ाई के समय सुल्तान का सहायक तथा चित्तौड़ में शाह को ज्यादा दिन लगने पर उसकी राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करता भी है परन्तु जब चित्तौड़ फतेह हो गया तो डरने भी लगा। खुरासान उस समय फारस के उत्तर पूर्व में अवस्थित था जिसके पूर्व में हैरात था। यह अलाउद्दीन का सहायक है।

हिरंभिज, खुरमुज, खंधार .—हिरंभिज की तत्कालीन स्थिति फारस की खाडी में बन्दर अब्बास के पास थी। याकूती के अनुसार सर्वत्र का व्यापार सिमट कर यहीं आ गया था। पश्चिमी भारत में राष्ट्रकूटी नरेशो के काल से ही यहाँ के व्यापारी आना शुरू कर दिए थे। 'मार्को पोलो' के अनुसार यह घोडो के व्यापार का केन्द्र था। १४ वी शती में हुरमुज बन्दरगाह उठकर उसी नाम के द्वीप में आ गया। जायसी ने हुरमुजी घोडो की चर्चा की है जिससे ज्ञात होता हैं कि मध्यकाल (१६ वी शती) तक यह घोडों के व्यापार का केन्द्र बना रहा। खुरमुज ईरान की खाडी के ऊपरी हिस्से 'खारेमूसा' नामक बन्दरगाह है। यहाँ के घोडे भी शाह की सेना में व्यवहृत हैं। ईराक देश के घोडे भी सुल्तानी पैगह (घुड सवार सेना) में उल्लिखित है। खंधार तो शाह के चित्तौड़ी आक्रमण को सुनकर काँप उठा।[५]

---

(१) हिं० वि० कोश, न० ना० वसु। (२) सिंहल द्वीप वर्णन खंड (२) (३) (३०। १४। ३) प (४) बादशाह चढ़ाई खड, पद्मावत ७ (५) सभी वर्णन बादशाह चढ़ाई खड में हैं।

उपर्युक्त कथानकों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारतीय सीमा गाजना, गौड़, बंगाला, सेतु, हेमतक थी। जो पूर्वकालीन पृथ्वीराज रासउ काल से सकुचित हो गई थी। भारतीय अनेक राज्य एक होकर सुल्तानी सेना के साहाय्य मे चल पड़े। हिन्दू नरेश भी चित्तौड़ की आन-बान हेतु तत्पर हो गए। धार्मिक स्थलों में केदार, अयोध्या, जगन्नाथ, प्रयाग, बनारस, द्वारका, गया इत्यादि चर्चित है। जाएस कवि का परमस्थान है। जो सम्भवत उस समय मुसलमानी सूफी सन्तों का अड्डा बन चुका था। वर्तमान रायबरेली जिले म यह है। हिरभिज, खुरमुज, हरात, खुरासान, रूम, स्याम, सिंहल, लका, कंधार इत्यादि विदेशी नगरों एव द्वीपों की चर्चा भी है। खड, चऊखड, षट् खण्ड चौदह भुवन जगनि, जगत मे दिनि ब्रह्माण्डा, संसार (ससार के ३१ पर्याय हैं) भुई, भुम्मि, धरनि, धरति, अवनि, महि, पृथ्वी आदि शब्दों का प्रयोग भी ससार की विशालता के द्योतनार्थ हुआ है।[१]

द्वीप, समुद्र, पहाड़, नदी, वन इत्यादि

द्वीप—मध्यकालीन भौगोलिक जन-प्रचलित आख्याना म कवि जायसी ने सात द्वीपों[२] की बात को लिया है तथा उन सातों द्वीपों में सिंहल को सर्वोत्तम सिद्ध किया है। सात द्वीपों की कल्पना से साम्य रखने वाली बातें अरब और चीन की भौगोलिक पारिभाषिक शब्दावलियों में भी मिलती हैं। गोरखनाथी जोगियों की साधना मे सिंहल गमन की चर्चा आती है। दिया, सरा, मड़ु, स्थल, कुरु स्थल एव लका द्वीप की चर्चा है। सिंहल की विशेष विवेचना के लिए नगर वर्णन एव भारतीय सीमा के बाह्य देशों वाले परिच्छेद द्रष्टव्य हैं।[३]

समुद्र—सात समुद्रों[४] का उल्लेख भी इसी तरह से जान पड़ता है। खार (क्षार नमकीन जलवाला) खीर (क्षीर) दधि, उदधि, सुरा, किलकिला एव मानसर की चर्चा की गई है। क्षार समुद्र के बाद क्षीर समुद्र मिलता है जिसका जल श्वेत और पीने में दूध जैसा है। द्रव्यों का भाण्डार भी इसमे दीख पड़ता है। दधि समुद्र मे शरीर दग्ध होने लगती है तथा उसकी दही जैसी चर्चा की गई है। उदधि की ज्वाला से धरती आकाश जलने की कल्पना है। तेल के जलते हुए कड़ाहे के सदृश

(१) पद्मावत, अखरावट, आखिरीकलाम, महरी बाइसी, चित्ररेखा आदि सभी ग्रन्थों में इनका प्रयोग प्रसंगानुसार हैं। (२) सिंहल द्वीप वर्णन खड, पद्मावत (३) पद्मावत, अध्याय ३ का नगर वर्णन तथा अध्याय २ का भारतीय सीमा के बाह्य देश का परिच्छेद। (४) सात समुद्र खंड, पद्मावत

इसका पानी है। सुरा मे मदिरा जैसा उल्लेख है। किलकिला सबसे भयानक है जिसके हिलोरो से आकाश टूटते हुए ज्ञात होता है। इसके पश्चात मानसर है जायसी द्वारा उल्लिखित सात समुद्रो के नामो मे से पाँच तो पुराणानुकूल है परन्तु अन्तिम दो किलकिला और मानसर भिन्न हैं। पुराणो के घृत और मधु के समुद्र को छोड़ दिया है तथा सिंहल द्वीप के पास मानसर की कल्पना की है जो कैलाश मे इन्द्र और अप्सराओ की कल्पना जैसी है।[1] समुद्रो के जीवो की विवेचना जीवजन्तु वाले अध्याय मे चर्चित है। पानी[2] के पर्यायस्वरूप जल[3], नीर[4] तथा वारि आये है। समुद्र[5] के पर्याय म रत्नाकर[6] सागर[7] प्रयुक्त है।

पहाड़ :—पहार[8] के पर्याय मे पब्बे[9], परवत[10] गिरि,[11], गिरिवर[12], है। उदैगिरि पर्वत[13] उदयाचल स्वरूप प्रयुक्त है। खिरिवदा[14] (किष्किन्धा) ईश्वर की सृष्टि है। धवलागिरि[15] उपमान म तथा मन्दराचल[16] पराक्रमार्थ द्योतन मे व्यवहृत है सुमेरु का कवि जायसी ने लगभग १८ बार प्रयोग कचन पर्वत तथा मेरु इत्यादि रूपो मे व्यवहृत किया है जो अनेक उपमानो मे चर्चित है। डा० सूर्य नारायण पाण्डेय के अनुसार यह पर्वत कम्बोज जनपद के मध्य तथा वक्षु (ओक्सस) नदी का उदरस्थ है।[18] कर्त्ता की सृष्टि मे जायसी ने इसी को सर्वप्रथम माना है। मलैगिरि[19] मात्र सुगन्धि-भण्डार के रूप मे व्यवहृत है। हिमालय[20] सीमान्त एव हिम के भण्डार के रूप मे है। विन्ध्याटवी के लिए माटी शब्द आया है।[21] पहाडो से सम्बन्धित सिखर-पाखान-पाहन इत्यादि शब्द भी प्रसंगानुसार आये है।

वन खण्ड :—झारखण्ड, मिरगारन, दण्डक एव विन्ध्यवन का भी परिगणन है, जो यात्रा मार्ग एव उपमान स्वरूप व्यवहृत है। इनकी भयानकता भी चर्चित है।[23]

---

(१) जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ८३, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (२) (१ । १४ । ७) प (३) (१ । १ । ३) प (४) (१ । १५ । ६) प (५) (४ । ५) प सातसमुद्र खड, (६) (११ । ३) प (७) (१५ । १ । १) प (८) (१ । २ । १) प (६) (२ । २१ । ६) प (१०) (२ । २१ । ६) प (११) (२ । २१ । ६) प (१२) (४० । ६ । ३) प (१३) (२४ । १७ । ३) प (१४) (१ । २ । १) प (१५) (१४ । २ । ४) प (१६) (२६ । ६ । ५) प (१७) (८५ । ६ । ५) प तथा अन्य कई स्थलों पर भी द्रष्टव्य। (१८) पृथ्वीराज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन पृ० १८ (१६) ५ । ७ । ३) प (२२) (३० । १० । ४, प (२२) (१२ । ११ । ४) प (२३) जोगी खण्ड पद्मावत

नदी :—नदियों की अंठारह[1] गन्डे की सख्यानुसार ७२ नदियों की आख्या मिलती है परन्तु सबों का चित्रण नहीं है। यह मध्यकालीन इतिहास में भी ऐसी मान्यता है। यहाँ पर केवल गगा[2], यमुना[3], और सरस्वती[4] एवं सोन[5] तथा गोमती[6], नील[7] इन छ नदियों का उल्लेख हुआ है। गगाजल की अविनश्वरता, धारा की श्वेतिमा, भदई गगा का उफान आदि रूपों में उपमानस्वरूप प्रयुक्त हैं तथा शकर जटा वाली गगा को सुरसरि[8] कहा गया है। गगा का पर्यवसान समुद्र में माना गया है।[9] गगा और यमुना के सगम का चित्रण माँग के वर्णन मे है। यमुना जल की कालिमा और गंगा से मिलने इत्यादि रूप मे चित्रित है। इसके पर्यवस्थानस्थली स्वरूप प्रयागस्थ "अरइल"[10] को बताया गया है। कवि की कल्पना सरस्वती के विषय मे यथार्थ-ही जान पडती है क्योंकि आज भी सरस्वती का दर्शन नही मिलता है—धर्मप्राण जनता का ऐसा विश्वास है कि पापो क कारण अब वह अदृश्य हो गई अत. त्रिवेणी मे अब केवल दो नदियो (गगा यमुना का सरस्वती का नही) का ही दर्शन होता है। इसी को "मानो सरसुती दखी" से कवि जायसी ने व्यक्त किया है। सरस्वती का स्थल विशेष गगा-यमुना का मिलापस्थल ही है।[11] सोन[12] नदी की चर्चा रत्नसेन की श्लाघा के द्योतनार्थ हुई है। जिसे सोने की नदी माना गया है। इसे फारसी में जरफशा अर्थात् अपने बहाव में सोने को बिखेरने वाली नदी कहा जाता है। इस कल्पना को जायसी ने सम्भवत प्राचीन सस्कृत और फारसी साहित्य से गृहीत की है। नदियों मे मिलने वाले नालों को मार्ग के प्रसग में दुर्गम बताया गया है।[13] झरना[14] ईश्वर की सृष्टि में ही है अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। सरोवर रूप में मानसरोवर की चर्चा है जहाँ पर बालाएँ क्रीडा मे गई हैं।[15]

संक्षिप्त—सात समुद्र, सात द्वीप, सात पहाड, छ नदियाँ, एक सरोवर की चर्चा हुई है। समुद्रों का वर्णन- लहरो की उत्तालता-विशालता उल्लिखित है। द्वीपों में सिंहल सर्वोत्तम है। पहाडों में सुमेरु की महत्ता अधिक है। नदियां उपमानों में हैं जिनमे गगा समुद्र मे यमुना गगा में मिलने वाली हैं। मानसरोदक का उल्लेख श्लाघनीय है जो जलकेलि की स्थली स्वरूप है। चार बनखण्ड भी व्यवहृत हैं जो यात्री के लिए मार्ग में भयानकता के उत्पादक हैं। सिरगारन की प० सुधाकर जी

---

(१) (१।१५) प (२) (१। १५) प (३) ३५। ७ ४) प (४) १०। २।४) प (५) (४०।४४) प (६) चित्र रेखा (७) ससि माथे औ सुरसरि जटा—२२।१४ प (८) छ्अ (६।६) आ० क० (६) (४८।१०।५) प (१०) अरइल बिच आई (१०।१६।६) पद्मावत (११) (१०।२।४) प (१२) (४८।१६।३) प (१३) टीका टिप्पणी, पृ० ८०० (१४) (१२।११।५) प (१५क) (१।२।२) प मानसरोदक खड

ने नर्मदा नदी के तटपर माना है। दण्डकारण्य तो सर्वविदित ही है। विन्ध्याटवी की चर्चा भी कादम्बरी आदि ग्रन्थो मे परिलक्षित है। खेह, झील, रेह भी प्रसगा-वशात् व्यवहृत हुए हैं।

जलवायु एवं उपज

आलोच्य काव्य मे वर्णित जलवायु से सम्पूर्ण भारत की ऋतुगत सभी विशेषताओ का पूर्णतः स्पस्टीकरण नही होता है बल्कि चित्तौड तथा सिंहल एव इनके आस-पास के देशो का ही ज्ञान होता है। ऋतुएँ छ मानी गई हैं।

वसन्त—इसका समय माघ शुक्ल पचमी से चैत वैसाख तक माना गया है। वसन्तकालीन पक्षियो मे कोयल, फल नारगी, फूल टेसू है। भौरे का भी उल्लेख मिलता है।

ग्रीष्म—वैसाख-जेठ, असाढ़ का अर्धांश इसका समय है। तपनि-जरनि, लुवारा, बवडर, आग, उठना, आधी आना इस ऋतु के विशेषण हैं। दाडिम, द्राक्षा, आम, सहार इत्यादि ग्रीष्म कालीन फल हैं तथा इनको चखने वाले के रूप मे सुवटा है। ग्रीष्म का नक्षत्र मिरगिसिरा है जो अधिक तपता है।

पावस—सावन-भादो (आषाढ का शेष अर्धांश) इसका समय है क्वार मेभी कुछ वर्षा होती है लेकिन वह नाममात्र होती है। अद्रा-पुनर्वसु (पुरुय-चिरैया) सरखा, मघा, तथा पुरवा ये वर्षा के मुख्य नक्षत्र हैं। मोर-कोकिल, एव बगुले पक्षी हैं तथा बीर-बहूटी-भमीरा-दादुर ये वर्षाकालिक मुख्य जीव जन्तु हैं। घटा का झुकना, बिजली का चमकना रात अँधेरी होना, हवा का पानी की बू दो के साथ झकझोर कर बहना बेइल फूलना विशेषताए हैं। घर का छवाना भी अनिवार्य।

शरद्—क्वार, कातिक इसका समय है तथा हस्ति उत्तरा चित्रा तथा स्वाति चार नक्षत्र हैं और अगस्ति तारा का उदय हस्ति नक्षत्र मे है। सारस, कोकिल, हंस खजन, चातक ये पांच मुख्य पक्षियाँ हैं। सरद्चन्द्र सम्माननीय हैं। सरद्कालीन सरोवर स्पृहणीय है। झूमक गीत भी इसी ऋतु मे उल्लिखित है। काश का फूलना भी चर्चित है जो वर्षा की बुढाई का द्योतक है।

शिशिर—इसका समय अगहन और पूस है। काग-सैचान-मारग, हंस, चकई कोकिल तथा भवरा भी चर्चित हैं। जाडे का आधिक्य होता हैं। दिन घटने लगता है।

हेमन्त—माघ फागुन हेमन्त का समय है। पाले का आधिक्य है। ठण्डा हवा के झकोरे चलते हैं। तरिवर, वन, ढांख तथा सभी वनस्पतियाँ पत्र विहीन हो जाती

हैं। फाग-चाँचरि और होरी भी वर्णित है। इन सभी वर्णनों के लिए द्रष्टव्य है षड्ऋतु वर्णन तथा नागमती वियोग।

उपज—सभी तरह के अन्नो का पैदा होना यहाँ की उर्वरा वसुन्धरा की अपनी निजी विशेषता है किन्तु अनेक अन्नों मे गेहूँ तथा २७ तरह के धान की चर्चा हुई है जो भोग खण्ड मे द्रष्टव्य है अलसी के फूल नीलिमा के उपमान मे आए है।[1] ऊख[2] भी चर्चित है। धन (धनियाँ)[3] शकुनार्थ मे उल्लिखित है।

वृक्ष · तरिवर,[4] बिरिख,[5] बीरो,[6] रूख[7] इत्यादि शब्द वृक्ष[8] के पर्याय हैं। इवली, आम की सघनता आकर्षक है। फलो से आम के वृक्ष झुक गए हैं। कटहल डाल और जड़ दोनो मे फले हैं। बड़हर अनुमेय है। भौंरो के सदृश काली जामुन है। पुष्प की सुगंध एव महद की मिठास से युक्त महुआ है। ताड़ और खजूर की सघनता स्पृहणीय है। इस बगीचे मे चुहचुही, पाडुक, साहो-सुवा, परेवा, पपीहा गुड़रू, कोइल, भिंगराज, महरि, हारिल मोर, कागा आदि पक्षियों का कलरव भी मोहक है। ये सभी वृक्ष सिंहल द्वीप में हैं। तथा ऊवरें, कचनबिरिख, कदम, करील कैथ, चन्दन, ढोख, तेंदू, नीबि-पाकरि-पीपल बड़हर, वर, बबुर, मोगबिरिख सेवर आदि वृक्षो एव काम प्रभृति झाड-झंखाडो का भी पदमावत मे अनेक प्रसगों में प्रयोग हुआ है। उपयुक्त पेड़ों का उनके तद्जन्य स्वभाव का उपमान व्यग्यार्थ में नागमती और पद्मावती विवाह खण्ड मे उल्लिखित है।[9]

फल :—फलो मे अँवरा, उड़ानफर, अंजीरा, कमरख, करौंदा, करौंदा, केला, हजहजा, खजूर, खिरनी, खीरा, खुरहुरी, चिरौंजी, छोहारा, जैफर, तूत, द्राक्षा, दाड़िम, नरियर, नारगी-चौंजी, नींबू, बादाम, बिम्बाफल, बेदमुश्क, बैर, मकोइ, मिरिच, लौंग, सखदराइ, सिरीफल, सेव-सटन, सुपारी, हिन्दुआना आदि फलों से युक्त सिंहल द्वीप की अमराई है। इनमे से कुछ फलों की चर्चा उपमानों एव नागमती तथा पद्मावती के व्यग्यार्थ मे भी हुई है।[1] फलों को सींचने के लिए कुओं मे खाँड भी घोला जाता है।

फूल :—असोग, कमल, करना, कुंद, कूजा, केतकी, केवरा, गुलाल, चम्पा, चमेली, जाही-जूही, टेसू, तिल, नागेसरि, नेवारी, फूलदुपहरी, बकचुन, बकौरइ,

---

(१) अध्याय ३ के परिच्छेद—भोजन की सामग्री (२) (२२) अख० तथा (१।४।४) प (३) (३२।६।४) प (४) (१।२।५) प (५) (१। २२।१) प (६) (४०।११।४) प (७) (११) अख० (८) (१।२।७) प (९) (२।५) प की सम्पूर्ण पंक्तियां तथा नागमती पद्मावती विवाह खण्ड ६५ वही तथा अन्य स्थलों पर भी प्रसंगानुसार।

वोलसिरी, मदारेन, मालती, सदवरग, सिंगारद्वार, सुदरसन, सेवती, सोनजरद, इत्यादि २६-२७ फूलो को सिंघलद्वीप फुलवाई मे लगाया गया है। इन फूलों से गन्धर्पसेन पूजा करते हैं। फूलो की विशेपता है कि वे सदैव सुवासित एव पुष्पित रहते हैं।[1] काव्य में ये फूल उपमानस्वरूप एव द्वैअर्थक भापा मे भी चर्चित हैं। कवल को कवि ने २६ बार[3] इसकी विसाइध तीन बार, कमोद,[4] कुह[5], केवा[6], कज[7], कोकावेरी[8] पुरईन[9], मिनोल[10], सरोज[11] इत्यादि पर्यायों के साथ प्रयुक्त किया है। शेप सभी फूल दो या एक बार प्रयुक्त हुए हैं जो शृङ्गारादि प्रसाधनो मे भी उल्लिखित हैं।

अर्क, जवास, घु घुची-कोश एव अन्य झार झखाड की चर्चा भी हुई है जो मात्र उपमान स्वरूप ही प्रयुक्त है।

फूल-फल आदि वे वृक्षो एव उनकी अमराइयो तथा बगीचियो से सम्बन्धित केसर, रस, पराग, तृण, पत्ता, साखा, डार, मजरी, कली, मधु, नाल, कोटा आदि भी चर्चित है जो सिंहल द्वीप आदि खण्डो मे दृष्टव्य है।[12]

खनिज पदार्थ —कवि जायसी द्वारा प्रयुक्त धातुओ से तत्कालीन ऐश्वर्य एव रसायन विद्या का ज्ञान होता है। अमरक,[14] पारम,[15] कोयला,[16] गधक[17], जसता,[18] दिनार,[19] नग, [20] पारस,[21] पारा,[22] पहुप,[23] फटिक,[24] विद्रुम,[25] मनि,[26] मोती,[27] मूँगा[28], माणिक्य,[29] हीरा,[30] रतन,[31] रूपा,[32] रागा,[33] सोहागा[34], लोहा[35], स्याम[36] आदि की चर्चा काव्यो मे[37] हुई है। अभरक

(१) (२।४) प तथा नागमती पद्मावती विवाह खंड, एवं अन्य स्थलों पर भी प्रसंगानुसार। (२) सिंह द्वीप वर्णन खड (२।११) प (३) (१।२।४) तथा अन्य स्थलों पर भी (४) (४।१) प तथा अन्य स्थलो पर भी। (५) (४।४७) प तथा अन्य स्थलों पर भी। (६) (२५।११।५) प (७) (१०।१३।१) प (८) (३६।८।१) प (९) (३४।१८।४) प (१०) (१५।९।२) प (११) (३४।१८।४) प (१२) (२७।३३) प (१३) दृष्टव्य टिप्पणी २।१ (१४) (२७।३।४) प (१५) (४५।१७।७) प (१६) (२७।१८।७) प (१७) (१।१७।५) प (१८) (२७।४।४) प (१९) (४०।२१।३) प (२१) (१।२।३) प (२१) (४।७।१) प (२२) (२७ २८।१) प (२३) (३२।४।३) प (२४) (३७।४।१) (२५) (३७।४।५) प (२६) (१०।८।३) प (२७) २६।१।४) (२८) (१।२।३) प (२९) (७।९।४) प (३०) (१।२३।७) प (३१) (२।२४।३) प (३२) (१२।१०।१) प (३३) (२७।४।६) प (३४) (२५। १०) प (३५) (२७।२६।१) प (३६) (३५।७।३) प (३७) (४०।१०।४) प

पद्मावती के रज-कण हेतु प्रयुक्त है। सोना-चाँदी, आभूषण पात्र स्थापत्यकला एव शृङ्गारिक सौंदर्य की चमक को प्रदर्शित करने के रूप मे कई स्थलों पर व्यवहृत है। जसता, आरस, तुच्छ धातुएहैं। कोइला मात्र कालिमा के प्रदर्शन म है। गन्धक में पार का विलय हो जाता है उसी तरह रत्नसेन और पद्मावती का हुआ है। नग कीमती पत्थर है। पारस लोहे क स्वर्ण बनाने वाले पत्थर के स्वरूप मे प्रयुक्त है। पुहुप पीतन है। मणि-माणिक्य, मूंगा मोती रतन आदि सर्वविदित है। रतन रतनसेन का भी पर्याय है। सोहागा सोने की चमक को बढ़ाने क अर्थ म है। हीरा और स्याम बहुमूल्य पत्थर रत्न है।

जीव-जन्तु (भूमण्डलीय)

देवताओं से सम्बन्धित जीव .—देवताओ न सम्बन्धित जीवो में सर्वप्रथम बैल[१] है जो भगवान शकर के वाहनस्वरूप प्रयुक्त है। शषनाग[२] को शिवजी गले म लपेटे है तथा 'हस्त कर छाला'[३] ओढे हुए है। मैमतहाथी[४] क समान कामदेव की उच्छृखलता आंकी गई है। पीयूषवर्षी चन्द्रदव के वाहन स्वरूप मृग[४] है। हनुमान जी का वेष बन्दर[५] क बच्चे जैसे उल्लिखित है। इन वर्णित जीवों को दवताओ क साहचर्य का सोभाग्य प्राप्त है। देवताओ की इस जीव प्रियता स जीवो के प्रति प्रम करने की प्ररणा मिलती है।

आदर्श अगों के उपमान स्वरूप —नागराज वासुकि, भौंरे, विषधर साँप, काले नाग, विषधर भुजग, यहाँ तक कि अष्टौ कुरी नाग तक काले केशों के उपमान मे हैं। जिनमे उनका लहराना, विषाक्त आदि होना भी अभिप्रेत है। माँग की शोभा मे मोती, भ्रमर, लगाम का अकुस न मानने वाले मस्त तुरग खजन, मिरिग इत्यादि जीव नैनो की बकिमा मे, स्वाभी जगली जीवों के रोयें बरुनी से विधे हुए। सुग्गा नासिका के उपमान स्वरूप। अमिय सुरंग रस भर विकसित कमल के रस को पीने वाले के रूप मे मधुकर। चात्रिक कोकिला पदमावती के कण्ठ की मधुरिमा से छिप गए। क्रौंच पक्षी सदृश ग्रीवा आदश है। मोरिनी तथा बाग खींचने के समय घोडे की खड़ी ग्रीवा, छाती फुलाये हुए कपोत की ग्रीवा, कुक्कुट उत्तम माने गए हैं इनसे भी बढ़कर पदमावती की ग्रीवा है। केतकी कट में बिधे भँवरो सदृश स्तन तथा उनके चुचुक सर्वोत्तम समझे जाते थे। रोमावली, काली भुजगिनी सदृश तथा भ्रमरों की पंक्तिवत् उच्चतम मानी गई है। काले नाग के समान वेणी का

(१) ततखन पहुँचा आइ महेसू। वाहन बैलकुस्टि कर भेसू। २२। १। प (२) सेस्नाग औ कठ माला २२। १। ३ प (३) हस्तीकर छाला २२। १। ३। प (४) गई बैन मनु रैनिनिहाई। ससिवाहन तबर है औनाई। १८। १। ५ प

उल्लेख है। केहरि तथा वसा (बर्रे) की लंक से भी अधिक पतली पद्मावती का कटि प्रदेश है जिससे ईर्ष्यावश सिंह मनुष्य का मास और रक्त का आहार करता तथा लज्जावश जंगलवासी बना है और वसा इसलिए डक मारती है। कुरंगिनि के पद चिह्न के सदृश योनि उत्तम समझी गई है जहाँ से भेद नामक सुगन्धि निसरित हो रही है फलतः उसके नीवी बन्ध के पास रस लोभी भँवरे मँडरा रहे हैं। हाथीवत उन्नत नितम्ब चित्ताकर्षक है। गज सदृश मत्त चाल मनमोहक है। नखसिख खण्ड के अतिरिक्त भी सारगनैनी,पिकवैनी, हैमगामिनी ,रायमुनी, रतमुही, फलचुही, कुम्भस्थल सदृश कुच, इत्यादि पद्मावती रूप चर्चा खड मे भी है। वसन्त खड, मानसरोदक खड, रतनसेन पद्मावती भेंट खड इत्यादि स्थलो पर अगो की समता के शोभा के जीवों की उपमा दी गई है। सिंह तथा गज से मतवाले सैनिको की वीरता प्रदर्शित की गई है।

रस युक्त काम केलि मे भवरे[१],को रखा गया है। पति-पत्नी की केलि को कली (पुष्प) और भ्रमर की केलि मानी गई है। बीन धुनि अनुरागी मिरिग[२] सिंघल दीपा वेश्याओ की करतलग्रहीता वीणाध्वनि से मुग्ध हो सकते हैं।

मंडराने वाले जीव—अलि वसा मडराने वाले जीव हैं। रसलुब्धा[४] कली रूपी दुल्हन का अवगुण्ठन खोलने वाला,[५] कमलरूपी मुख पर मडराने वाले भवरे सदृश नेत्र[६] तथा वसा[७] उड कर मनुष्यो को डक मारने के रूप मे चर्चित है।

गज, सिंह के स्वाभाविक गुण : आदर्शस्वरूप—लक सिंहिनी[८] कमर प्रसिद्ध है। सिंघली पनिहारिन सिंघनियां थी। पद्मावती की कटि सिंघ से[९] अधिक पतली है। स्त्री भेद वर्णन खड मे उरसुभर खीन लक, सिंहवत् चाल तथा सेज पर मिलते समय स्वामी को नखो से विक्षत करता सिंघनी का स्वभाव है[८]। वीर वरिवडा को जो गजरूपी दुश्मनी सेना का सिंह रूप मे विध्वंसक है, चर्चित किया गया है।[९] गजगामिनी चाल प्रसिद्ध है। सिंघली पनिहारिनें गजगामिनी पिकबैनी है।[१०] हाथी के कुम्भस्थल[११] एव मत्तयौवन तथा उन्नत नितम्बों का स्वरूप भी चर्चित है।

---

(१) धरे वेष जनु बन्दर छाया। २२। १। ६ प (२) उपरोक्त सभी जीवों का प्रसग मानसरोदक खण्ड—नखसिख खण्ड, रत्नसेन पद्मावती भेंट खण्ड, पड्ऋतुवर्णन खण्ड, पद्मावती रूप चर्चा खंड स्त्री भेद वर्णन खड में इत्यादि स्थल पद्मावत में द्रष्टव्य है। (३) भंवर पुहुप सग करहि धमारी (२६।४।५) प (४) हाथबीन सुनि मिरगि भुलाहीं २।१४।३ प (५) भवर होइ रस लेवा। (२५।१५।५) प (६) (१८।१।७)प (७) रति कंवल करहिं अलिय को—१०।५।२प (८) (१०।१८।३)प (९) लक सिंहनी सारंग-नैनी (२।८।१) प (१०) (३६।२) प (११) (२६।३।५) प (१२) (२।८।३) प

पद्मावती भी गजगामिनी है।[1] हस्तिनी नारी वर्णन में स्त्री की सभी चीजें गज के स्वाभाविक गुणवाली मिलती है।[2]

उपहार वाले जीव—रत्नसेन विदाई खंड[3] में 'तुरिपन्ह' और 'हस्ति' उपहार की वस्तु स्वरूप व्यवहृत हैं जो गन्धर्वसेन द्वारा रत्नसेन को मिले हैं। घोड़ों की सहस्रों पंक्तियाँ तथा हाथियों की सैकड़ों चलीं। राघवचेतन को भी अलाउद्दीन द्वारा १० हाथी तथा १०० घोड़े मिले हैं।[4] राजा रत्नसेन को हंस-सोनहापंछी तथा शार्दूल का बच्चा समुद्र द्वारा सम्मान से प्राप्त हुए हैं।[5]

हिंसक जीव—सिंह की हिंसकता जगत् प्रसिद्ध है। हाथियाँ भी जब बिगड़ जाती है तो वीभत्सता उत्पन्न कर देती है। सोनहा छोटा कुत्ता है जो शिकार में सहायक है। शार्दूल सिंह या व्याघ्र ही है।

भोजनशाला के जीव—पद्मावत में पाकशाला की चर्चा विवाहखंड तथा शाह की दावत दो स्थलों पर हुई है। पहली शाकाहारी तथा दूसरी मांसाहारी है। छागर (बकरा) मेढ़ा (सम्भवत, भेंडा), हरिन, रोझ (नीलगाय), लगुना (हिरन) चीतर, गौन (बारह सिंघा), झाख (सामर), ससे (खरगोश) तथा अनेक तरह के पक्षियों के मांस बनाए गए। सभी तरह की मछलियाँ भी रसोई मे मशाले से बनाई गई।[6]

अन्य—उंदुर[7] चूहे का पर्याय है जो ईश्वर की सृष्टि मे है। कुत्ता[8] 'गउव'[9] गाय के लिए प्रयुक्त है जिसे रोझ[10] भी कहा गया है। गादुर[11] को चमगादड़[12] मानकर सूर्य का मुंह न देखने वाले के रूप मे रखा गया है सृगाल जम्बुक[13] के रूप मे शकुनाय में रखा गया है। गिरगिट[14] वेप बदलने के लिए व्यवहृत है। बादशाही तोपों की बारूदों को लपटों से गैंडे[15] को काले होने के रूप में देखा गया है। यह भैंस जैसा जानवर है इसकी चमड़ी बहुत मुलायम होती है। इसकी सींग मस्तक पर होती है। घुन और भौरों की तुलना में घुन को साहसहीन बताया गया जिससे वह काठ धूनता है परन्तु भौंरा साहस से फूल का रस। चींटी[16] का सम्बन्ध गुड़ से द्योतित किया गया है। इसकी चाल मन्द[17] दिखाई गई है। पतंग[18] प्रेम

(१) (३६।३।७) प (२) (१०।२०।१) प (३) (३६।१) प (४) सहसपांति तुरिपन्ह कै चली। औ से पांति हस्ति सिंघली। ३२।१२।७ प (५) ४०। २२।१ प (६) (३४।२३ X ४+५) प (७) बादशाह भोज खंड (८) (१४।६) प (९) मसला—(१०) (२।१५।५) प (११) (४४।१।२) प (१२) (१२।१०।५)प (१३) (५४।१।२)प (१४) (१२।१०।५)प (१५) (२४।२।६)प (१६) (४१।२।३)प (१७) (१५।६)प (१८) (११४।७)प (१९) (बोहित खंड) (२०) (१३।१।४) प

तथा एक छोटे निकृष्ट जीव रूप मे है। बहूटी वीर बहूटियो के उपमान मे है। बाउरि [१] पखि (दीमक) है, इतने छोटे जीव को भी जो मिट्टी खाकर जीता है, काल नही छोडता, अर्थात् मृत्यु अनिवार्य है। बिग [२] (वृक) ये मसुखवा जीव हैं। बिखसवरिया [३] (बैल) का पर्याय गादर भी आया है जिसे देहातो मे गरियार कहते हैं। भमीरा [४] वर्षाकालीन कीडा जो घासो पर रहता है मन-मन करता रहता है। भालू [५] निम्नता दिखाने मे, रीछ [६] लगूर, [७] के मुँह की कालिमा नागमती की विरहाग्नि के कारण है इस रूप मे व्यवहृत है। भृंगि [८] यह दुष्ट कीड़ा है जो पतिंगे को डक से मार कर खाता है। मकरी [९] के जाले साड़ी के तारो के लिए प्रयुक्त हैं। मजारी [१०] सुग्गे के शत्रु स्वरूप व्यवहृत है। माखी [११]-माखा-माछी-मशा हैं जो मधु का निर्माण करने वाले, अगो पर मडराने वाले इत्यादि रूपो मे चर्चित हैं। 'लीवा' [१२] यात्रा मे शकुनार्थ है। साहि [१३] बाणों से विधे हुए के उपमान स्वरूप है। सउजा [१४] जगली जीवो के पर्यायस्वरूप है। सोनहा शिकारी कुत्ता है।

जीवों के पर्याय :— अलि [१५] के पर्याय में भवर, मधुप, कुन्जर के गज [१६] हस्ति, मैमत्, गयन्द, हाथी, कुरंग [१७] के कुरगिनि, मृत-सारग-ससिवाहन, हरिन सिह [१८] के केहरि, नाहर-शार्दूल, घोडे [१९] के घोट, तुरग, तुरिंत इत्यादि पर्याय हैं तथा इनसे सम्बन्धित चन्डोल [२०] कुम्भस्थल [२१] पूँछ, [२२] जिह्वा इत्यादि शब्दो को भी रक्खा रक्खा गया है।

---

(१) (२६ । ६ । २) प (२) (३३ । ६ । ३) प (३) (४२ । ४ । ४) प (४) (१२ । १० । ५) प (५) (३० । ५ । ६) प (६) (४८ । १६ । २) प (७) (३३ । ४ । ६) प (८) (२१ । ८ । ६ प (९) (११ । ७ । ७) प (१०) (४० । १ ८ । ६) प (११) (३ । ८ । ३) तथा (५ । १ । १) प (१२) (१ । ४ । ५) प (१३) (१५ । १० । ६) प (१४) (२७ । १२ । ४) प (१५) (१ । २ । ५) प (१६) (९ । ६ । ३) प, (२९ । ४ । ५) प, (४ । ३ । १७) प (१७) (४ । २ । ६) (२० । ३ । ३) प, (१८ । ३ । २) प, (१८ । ३ । २) प, ३५ । ८ । ७ (२४ । ४ । १) प (१८) (१ । ६ । ४) प, (१ । ६ । ४) प, (१८ । २) प (२ । ८ ३) प, (१८ । १ । ५) प, (१८ । १ । ५) प, (४४ । १ । २ प, (१९) (१ । १२ । ५) प, (३ । ६ । ७) प, (२ । १७ । ५) प, (१३ । ५ । ६) प (१ । ३ । २ प (२०) (१ । ३ । २), प, (२ । २२ । २) प (३१ । ८ । ४) प (२१) (३५ । १ । ३) प (२२) (२७ । ३ । ५) प (२३) (२ । १७ । ६) प

जलीय जीव-जन्तु

काछू[1] के कमठ,[2] कुरुम[3] और कच्छ[4] पर्याय प्रयुक्त है, बार-बार गर्दन बाहर, अन्दर, निकालन, मजबूती एवं पक्काई आदि के उपमान स्वरूप यह काव्य मे व्यवहृत है। गुरु की स्थिति प्रजता को कछुए से द्योतित की गई है। सिंहलगढ़ की दृढ़ता तथा वहाँ के शासक गन्धर्व सेन के पराक्रम प्रदर्शित करने में कुरुम की पीठ टूटने का उल्लेख है। घरियार[5] का पर्याय मगर[6] भी व्यवहृत है जो ईश्वर को सृष्टि का जीव एवं गजपति संवाद मे मनुष्यभक्षी रूपों मे चर्चित है। घोंघा[7] सख की तरह का एक कीड़ा है। इसकी भी आकृति घुमावदार होती है। इसका प्रयोग जलकेलि समय मे हुआ हैं जलकुक्कुटी[8] को देहातों मे जलमुर्गी भी कहा जाता है जायसी द्वारा भोजखड में यह प्रयुक्त है। वर्षाकाल मे दादुर की आवाज वेदपाठियों की सी लगती है। इसके मेंधा, मढ़ुक पर्याय है जिसे कवि ने वर्षा का आनन्द लेने वाला प्रिय आगमन का सूचक एवं कूपमढ़ुक अर्थात् 'अज्ञ' में रक्खा है।

यह भी जल कुकुटी की तरह ही है। इसका प्रयोग नागमती की अपेक्षा पद्मावती को रूपवान बताने मे है। हीरामनि नागमती को बकुली[11] तथा हंस को पद्मावती सिद्ध किया है। जलबोदरी[12] (जलमुर्गी ही है) भी भोज खंड म है। इसे बोदरी भी कहा जाता है। 'मछ बहुबरना'[13] स्तुती खड में ही आया है जिससे ज्ञात होता है कि अनेक तरह की मछलियाँ है प्रमाण स्वरूप बादशाह भोज खड मे-टेंगिनि (आवाज करने वाली मछली) चरक (चर्सी भी कही जाती है), चाल्हा (छोटी मछली), पढ़िना (पहिना, रोहू (बड़ी छिनकार मछली, सध (सुम्भा) सुगन्ध (सिलध) भोर (बड़ी मछली), सिंगी, मगुरी, भोय, बाव (सर्पवत्) बंगरे (बांगुर), पर हांसी (परियांसी) इत्यादि १५-१६ किस्म की मछलियों का उल्लेख किया है जो ठीक ढङ्ग से बनाकर तैयार की गई है[14] मछलियों की चचलता से चेले की मनः स्थिति भी बताई गई है। मीन[15] जल रहस्य ज्ञात रूप में भी है। मोती, सीपी, माणिक आदि भी चर्चित हैं।[16]

---

(१) (२१। २२। ५) प (२) (४०। १४)प (३) (२। १६। २)प (४) (३६। ६। ३)प (५) (१३। २। ४) प. (३। ७) मह० (६) मारहि मगर मच्छ १३। २। ४ प तथा (१। २। २) प (७) घोंगा याहुँ हाथ ४।६प (८) धन-कुक्कुठी जल कुकुटी धरे, ४४। १। ५प (९) दादुरमोर कोकिला बोले (३५। ४। ७)प (१०) समुद्र न जान कुआ कर मेंजा। (१४। ३। १) प (११) (८। २। २) प (१२) कैंयपिंदारे (४४।२।६) प (१३) (१।२।२) प (१४) (४४।२)प की सभी पंक्तियां (१५) (२।६।७)प (१६) २२।६प

नाग—नाग[१] के पर्यायस्वरूप नागिनि[२]' पन्नग[३], फणपति[४], फनीन्द्र[५] विसारे[६], विसहर[७], भुअग[८१३], भुअंगिन[९१४], साप[१०] अजगर[११], अस्टौकुरी-नाग[१२], कारी[१३], वासुकि[१४], सैस[१५] इत्यादि शब्द आए हैं। नागो का उस काल मे महत्व जान पडता है। इनका दर्शन शकुन माना गया है। इनकी कालिमा—विषात्तता, लहराने इत्यादि उपमानो मे है। अस्टौकुरी नाग मे—वासुकि, कुलक ककोट-पद्म, शख, चूणमहापद्म और धनजय आते हैं जिन कुलो के अधिपति पद्मावती के काले नागो जैसे केसो के बन्दी जैसे वने बैठे हैं।[१६] अजगर बिना आपस के आयास के मुक्तयोगी है।[१७] कालिय कृष्ण कथा से सम्बन्धित कालियनाग है और उसी तरह के प्रसग मे उपमानस्वरूप प्रयुक्त हुआ है।[१८] शेष पृथ्वी को सम्हालने वाले हैं इसके लिए सहस्रो शीस शब्द भी आया है।[१९] नागो से सम्बन्धित केंचुकि (केंचुली) तथा विष भी आया है।[२०] नागो का वासस्थल पाताल माना गया है।

उपसंहार

अलि उन्दुर, कुजर, कुरग, केहरि, खरगोस, गउव, गाद्रर, कुत्ता, गौन, गिरगिट, गैंड, घुन, घोर, चाटी, छागर, फाख, पतग, फनिग, बसा, बन्दर, बाउरि-पखि, विग, विरवेसवरिया, भभीरा, भालू, मृङ्गि, मकरी, मजारी, माखी, भखा, मेढो तथा काछू, घरियार, घोघा, जलकुक्कुटी, दादुर, बकुली, जलवोदरी, मँछ (अनेक तरह की) मोती, मानिक, नाग (जिसमें अस्टौकुरी भी हैं] इत्यादि जीवो की चर्चा कवि ने की है कि जो शारीरिक अंग विशेष के तथा घटना विशेष की पुष्टि हेतु उदाहरणस्वरूप प्रयुक्त हुए हैं। इनमे से कुछ (हाथी, मृग, बैल, बन्दर) जीवों को देवताओं का सान्निध्य प्राप्त है। जिसमें देव प्रेम इनके प्रति झलकता है फलतः जीव-जन्तु से प्रेम करने की एक प्रेरणा भी मानव समुदाय को मिलती है। इन जीवो की व्याख्या जायसी के प्रायः सभी ग्रन्थो में कुछ न कुछ हुई है।

---

(१) नागन्ह झांकि लेहिं अरगानी (४।३।२) प (२) नागमती नागिन बुझिताऊ (८।४।५) प (३) पन्नग पकज मुखगहे (१०। १७) प (४) फनपति फनपतार सों काढ़ा २५।५।५) प (५) इन्द्र फनिन्द्र डोलिडरि माना (४१।१७-१) प (६) (१०।१।५) प (७) (४।४।४) प (८) (१०।१।५) प, (९) (१०।१६।३) प (१०) (३३।३) प (११) (३३।५।२) प (१२) (१०।१) प (१३) (४६।३।५) प (१४) (२५।४) प (१५) (१।१४।५) प (१६) अस्टौकुरी नाग औरगाने में कैसन्ह के वाद १०।१ प (१७) (३३।५।२) प (१८) (४६।३।५) (१९) लक्ष्मीसमुद्र खण्ड (२०) (२०।१७।३) प तथा (२५।५।५) प

पक्षी

काव्य का श्रीगणेश ही पक्षी की विरहजन्य पीड़ा से है। वाल्मीकि ,कालिदास भवभूति, भास, बाण इत्यादि महाकवियों ने पक्षियों का बड़ा सजीव चित्रण किया है जिससे द्योतित होता है कि इनका मानव-जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। चित्रों-खिलौनों तथा सुवे बरतनों में हम इनकी आकृति मात्र देखकर प्रसन्न होते हैं। कामसूत्रकार[1] वात्स्यायन ने पक्षियों की चर्चा में अपने को धन्य समझा है। आकाशगामी होने से यह सम्पूर्ण अन्तरिक्ष का पर्यटक है तथा झाड़-फूस पेड़ पर्वत सरोवर ही इसके पर्यटक आवासगृह (टूरिस्ट बंगलाव) हैं। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पक्षियों से अतीतकालीन मानव के सम्बन्ध को बताते हुए चर्चा की है कि 'पक्षी' हमारे विनोद का साथी था रहस्यालाप का दूत था, भविष्य के शुभाशुभ का द्रष्टा था, वियोग का सहारा था, युद्ध का सन्देशवाहक एवं अन्यमनस्कता में उत्साह प्रदाता था। पक्षी भूतकाल में अन्तःपुर से लेकर तपोवन तक सम्मानित थे। प्रेमी प्रेमिकाओं के सन्धि का प्रस्तावक था। कवि जायसी ने पक्षी के पांख, पखी, .खाग पखेरु, पंछी विहंगम आदि। पर्यायों में मानवीय क्रिया कलापों को उपमान स्वरूप व्यक्त किया है। इनके उड़न, चोंच तथा पखो की विशेषता की विशेषता भी उल्लिखित है। कवि ने लगभग४०-४५ पक्षियों का विशद सदर्भो मे उल्लिखित किया है जो इस प्रकार है—

उल्लू

> यद्यपि तरणे मवलमिदं विरचभुज्ज्वले निदघे।
> तदपि न पश्यति घूक पुराकृत भुज्यते कर्म.॥

उल्लू सिपत प्रसन्न होता है जो इसकी मूर्खता का कारण भी है। शान्तमन इतना कि जब भोग्य पदार्थ को देखकर अन्य सभी पक्षी एकदम उस पर टूट पड़ते हैं परन्तु यह तब भी योग साधना में ही निमग्न रहता है। इसके प्रत्येक आचरण से बड़प्पन की बू' आती है। यह चाहे ईंट पत्थर का शिकार हो चाहे गाली का परन्तु दुम हिलाना, चंचलता दिखाना इसके स्वभाव के प्रतिकूल है। सुख-दुःख दोनों में समान चित्त। दो उल्लू साथ बैठे तो मिल सकते हैं। परन्तु आपसी बात करते हुए नहीं। इसकी अन्य पक्षियों से भिन्नता—

(१) सम्पूर्ण विश्व की निद्रा के समय इसका कार्यकाल होता है। (२) सूर्य का प्रकाश इसके लिये असह्य है। (३) सभी पक्षियों की आँखें बगल में होती हैं लेकिन

(१) कामसूत्र नागरक वृत्त प्रकरण हिन्दी टीका पूरी द्रष्टव्य है।

इसकी मनुष्य की तरह सामने । (४) इसकी गर्दन पीछे भी घूम जाती है अतः यह सब कुछ आगे पीछे देख लेता है । (५) पंख मुलायम होने से उडते समय आवाज नहीं होती फलतः शिकार आसानी से कर लेता है । प्रायः पक्षियों के कान ढके और छोटे पर इसके खुले और बडे होते हैं जिससे फुसफुसाहट तक भी यह सुन लेता है । (६) शिकार बिना नोंचे खरोंचे सीधे निगल जाता है । (७) पैर, पखे से ढके रहते हैं । (८) खन्डहर प्रेमी । (९) चूहे का शत्रु । (१०) इसका बोलना अशुभ ।

भारत में इनकी ४०-४५ किस्मे हैं । जिनमें १. सग्रहालय प्रेमी, २. जलतट-वासी, ३. सींगदार, ४. खूसट ही मिल पाते हैं । डा० सूर्य नारायण पान्डेय[1] ने मत्स्य उलूक को भी अन्धा माना है । जायसी ने उल्लू को अन्धा चर्चित किया है। खूसट भी प्रयुक्त है । 'रैनि को राऊ, संज्ञा भी पद्मावत मे है ।

ऊसर बगेरी—इसका मास जायकेदार होना है । अतः बादशाह की भोज्य सामग्री मे रक्खी गई । इसका जन्मस्थल ऊसर-कद छोटा निवास गृह ऊसर की पट-परी जमीन । रग ऊसर जैसा भूरा । समुदाय प्रेमी । २००-३०० के झुंडो मे ही रहती है । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे भार्दूल जाति का पक्षी माना है । यह ऊसर में छिपी रहती है जिसमें हमें भान नही होता परन्तु समीप पहुँचने पर यह भुर्र से उड जाती है ।

ककनू—दाम्पत्य सुख के चस्के के लिए तडपने वाले चक-चकोर तक को अपनी विरहजन्य वेदना से मात करने वाला । ऐसी धारणा है कि यह नर ही होता है । मृत्यु निकट आने पर यह विरह पीडा से सिक्त रागिनी अलापता है फलतः ज्वाला प्रज्वलित होती है और यह भस्मसात हो जाता है । पावस की मादक झीनी-झीनी बूंदे जब इसकी भस्म की कणो को स्पर्श करती हैं तो एक-एक कण से अंडे निकलते हैं । जायसी का रत्नसेन ककनू वत् विरही चित्रित है । कन-कन[2] शब्द का विकृत रूप है । डा० अग्रवाल ने इसे आतशजान माना है । सभाश्रृंगार की सूची में इसका नाम नहीं है ।[3]

कतनंसा

"नील कंठ के दर्शन होए,
मनवांछित फल पावे सोए"[4]

नीलकठ मूरतहराम पक्षी है । वाणी कर्कश । झगडालू । नाम नीलकठ परन्तु

---

(१) पृथ्वीराजरासउ का शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६७ (२) कन-कन होइ मिलि छार उड़ानी । ४७। २१४५ (३) अगरचन्द नाहटा-सभा श्रृंगार (४) डाक कवि ।

कठ नीला नहीं होता। बल्कि पद्ये होते हैं। दर्शन सुखदायक होता है। कीट-झींगुर छुहिया गुबहोरा का आहारी। पत्नीभक्त। अपनी मादा की प्रसन्नता हेतु बड़ी कलाबाजियां प्रदर्शित करता है। नागमती[1] की विरह व्यथा के प्रदर्शनार्थ प्रयुक्त हुआ है। कवि ने इसकी संज्ञा कतनसा[2] रक्खी है।

कागा—आलोच्य कवि ने तेरह बार कागा, १ बार काक तथा १ बार प्रतिहार शब्द प्रयुक्त किया है। कौआ प्रियजन का सन्देशवाहक, भविष्यवक्ता परन्तु आदर का पात्र नहीं जबकि धोखे से दूसरे के घोसले में अपने बच्चे को रख कर पालन वाली कोइल सबको सुहावन। कागा के दो भेद होते हैं :—कौआ-कागा। कौआ झुंड प्रेमी, बस्ती प्रेमी, कागा नहीं। दोनों में रंगभेद भी है। कौआ कागा से अधिक बदमाश। धूर्तता के प्रतीक चेष्टा के पक्के।[3] चोरी में नम्बर दस। इनकी कांव-कांव रणभेरी की तरह पूरी जमात इकट्ठा कर लेती है। सुबह ही सबको जगाने वाले। 'मोरत निंदिया अगाई हो रामा'। सन्देश प्रेषण के लिए नायिकाओं ने सोने को चोंच मढ़ाने तक की प्रतिज्ञा इसके लिए की है। लालच में नम्बर दस। श्राद्धपक्ष का प्रथम भोग खाने वाला। कौओ में ब्राह्मण, ठाकुर-वैश्य, शूद्र होते हैं। ब्राह्मण-शकुन द्रष्टा। कोंडाइक नाला में ये नहीं पाए जाते। चित्रकूट में भी जयंता के कथानक से प्रभावित होने से कौए नहीं पाए जाते।[4] कोयल द्वारा छले भी जाते हैं। काग भुशुण्डि के वशज। कालिमा छोटापन, फुर्तीलापन, कोलाहल करने वाले, अभ्यागत के आगमन का सूचक इत्यादि रूपों में यह पदमावत में प्रयुक्त है।

कुररी—परोपकारी यह पक्षी रात में पैर ऊपर कर सोता है जिससे सोते हुए संसार के ऊपर आकाश न गिर पड़े। इसका क्रन्दन प्रसिद्ध है। विलाप बड़ कष्टकारक होता है। 'विलपत अति कुररी की नाईं'। महद्र किस्म की होती है। १-१६" की रग स्लेटीहल्का चोंचलम्बी पैर बतख की तरह पानी में तैर नहीं पाती, दुम-डैने सम्बे[3]। नीचे का हिस्सा काला। अंडे नदी अथवा पहाड़ियों में देती है। काली गुलाबी सफेद कुररियाँ बाम्बे से १७०० मील दक्षिण में मिलती हैं।

कतिपय विद्वान् कुररी को ही टिटहरी भी कहते हैं। यह भी जल तट वासी है। चोंच लाल। पैर पीला। शिकारियों का दुश्मन। समुद्र के किनारे टिटहरी

(१) विरहापैठि हिए मतनंसा।२०।१८।७५ (२) काकचेष्टा बकुल ध्यानं।
(२) बायें कुररी दाहिन कूचा—२१। १०७ तथा।
वामं प्रवासे रटितं हिताय सधो परिष्यादपि टिट्टिभस्य।
टिटीति शान्तं टिटिरीतिदीप्तं शब्द द्वयं चास्य सुधायदन्ति॥

के अडे की कथा लोक प्रसिद्ध है । जायसी ने कुररी का बाएँ बोलना शुभ माना है ।

कूंज :—आदि कवि की कीर्ति के प्रधान स्तम्भ । जंगलवासी । दम्पति प्रेम के उदाहरण । गर्दन सुन्दर होती है । क्रौंच शब्द का विकृत रूप ही कून्ज है ।[1] जायसी ने ग्रीवा, विरहपीडा-एव भोज्य पदार्थ आदि प्रसगो मे इसे रक्खा है ।

केवा :—जल वासी ? जल वोदरी खैमा तथा पैमा, कैवा' के पर्याय है । यह मुर्गी और बतख के मध्य की जान पडती है । यह पानी पर आसानी से तैर लेती है क्योकि पैर की आकृति नाव के पतवार की तरह होती है । देहातो की जल मुर्गी ही शायद कैवा है । सिंहल के तालावो[2] एव भोजन सामग्री मे इसकी चर्चा पद्मावत में हुई है ।

कोइल —प्रेम की व्यथा सन्त हृदय तक जगाने वाली । कुहू-कुहू करके तडपाने और रूलाने वाली । सहस्रो लेखको की प्रशस्ति की पात्रा । सगीत की गणिका । धूर्तराज कौओ को भी ठगने वाली । प्रोषित पतिकाओ के आहत हृदय मे भी विष का च्यवन करने वाली । सर्वप्रिय पक्षी । यजुर्वेद से लेकर आज तक इसकी गाथा साहित्य मे मिलती है । रग काला । फारस की बुलबुल की तरह दिल खोल कर गाती है । कवि प्रशस्ति है कि यह वसन्त के बाद नही बोलती परन्तु यह केवल शीत काल छोड कर शेष ८ माह बोलती है । नर, नीली, हरी, चमकीली एव भूरी परन्तु मादा केवल भूरी होती है । मादा के पखो पर सफेद चित्तियाँ होती है । आँखे दोनों की लाल । लम्बाई १७' । गाने का शौकीन नर ही है मादा कम । नर कुहू-कुहू मादा किक्-किक् बोलती है । अडे का समय अप्रैल से अगस्त । नर कोकिल अपनी आवाज से आतकित कौओ को अपने पीछे लेकर दूर उड जाता है तभी मादा अपने अडे को रख कर कौए के अडो को गिरा कर एक आवाज लगाती है तब नर कोकिल कौओ की आँख से ओझल हो जाता है तथा कौए दुश्मन को अदृश्य समझ कर वापस आते हैं और अंडो का सेंचन करते है । अडे भी जब बडे हो जाते है तो कौआ को धोखा देकर भाग निकलते हैं । जायसी ने इसकी कूक-नायिका की मधुर वाणी इत्यादि प्रसंगों मे रक्खा है । डा० सुरेश सिंह ने कोकिल-कोइल पक्षी को अलग माना है कोकिल को हारिल जाति का पक्षी माना है परन्तु जन प्रचलन के अनुसार ये दोनो एक ही हैं । महरी बाइसी मे भी कोकिल[3] शब्द आया है

कौड़िला :—कौड़िल्ला[3] जल पक्षी है । जल मे से मछलियो को झपट कर

---

(१) केवांसोन ठैक चालेदी (२ । ६ । ७ प तथा ४४ । १ । ६ प) ।
(२) १२ । ६ महरी वाइसी
रक नैन काड़िला होइ रहे । १३ । ४ प

श्मसान के पक्षी रूप मे डा० सूर्य नारायण पाडेय[1] ने इन्हे स्वीकार किया है। पांडेय जी के अनुसार चाहे इन्हें हम छाती से न लगायें परन्तु घृणा भी न करें क्योकि ये हमे गन्दगी से बचाते हैं गिद्ध को मिद्ध रूप में जायसी ने देखा है। युद्ध मे मांस आदि से ये प्रसन्न होते हैं।[2]

गौरया :—मानव आवास का प्रेमी। घोसला निर्माण स्थान का विचारक नही। सर्वत्र उपलब्ध। जिस कमरे को मनुष्य छोड देता है उसे यह भी त्याग देता है। प्लेट से नमकीन तक लेकर उडने मे सकोच नही करता यह छोटा-सा जीव अपने मित्रो सहित सेरो नुकसान कर डालता है। ची-चू इसकी आवाज है। नर-मादा में काफी अन्तर नहीं। नर का शिर स्लेटी, बाल श्वेत, पख भूरे। मादा मटमैली तथा भूरी साल भर जनन क्रिया चालू रहती है। अंडो का रग राख जैसा। इसका धूल में लौटना वर्षागमन की सूचना है। इसी की एक जाति 'तूती' है। कवि ने दाम्पत्य प्रेम के प्रदर्शनार्थ गौरैया[2] को व्यवहृत किया है।

चक-चकई—'वाम भाग मे बोल चकोर' यह शकुन माना जाता है। शीतल चन्द्र मयूख प्रेमी। अगारभक्षी। तीतर से मिलता जुलता। लेकिन लडाकू नहीं। यूरोप का "ग्रीक पाट्रीज" चक-चकई ही है। गर्म से गर्म ठड से ठंड देश में भी रहता है। इसका रग राख और बादाम का मिश्रण। चेहरे पर आँख-गाल तथा कठ तक एक गाढा चक्कर होता है। चोच पैर लाल। पहले झुण्ड में रहता है पर प्रजनन काल में जोडे-जोडे हो जाता है। अप्रैल से अगस्त तक अडा देता है। बडी जल्दी पालतू बन जाता है। जायसी ने चक-चकई, चक-चकोर शब्दो को व्यवहृत किया है। भोज्य खड के साथ अन्य स्थलो पर उपमानादि मे प्रयुक्त।

चील्ह :—खतरनाक पक्षी। बच्चो के हाथो से लड्डू तथा सोहारी छीन लेती है। गिद्धो से कुछ मेल खाती है। चील्ह का आकासी धोबिन तथा क्षेमकरी पर्याय हैं। जायसी ने इसके बोलने को शुभ एव मास भक्षी दो रूपो मे प्रयुक्त किया है। 'चील्ह झपट्टा' एक कहावत भी है।

चुहचुही :—पुष्प सुगन्धित का आहार। भ्रमर की तरह फूलो पर मडराना। मधुपाई तथा मधुमाखी। पुष्पो में पराग आना, फुलवारी मे इसका प्रवेश होना।

---

(१) (२५। ५) प तथा ४२। ४। ५ प

(२) (फरे गैरान सोई गौरवा) ३०। १८। ५ प

(३) चकई चकवा कैलि कराहीं। २६। ५ प तथा चकोरदिष्टि। ४। ३। ५ प एवं चकवा चकाई केंवपियारे। ४४। १। ६ प।

(४) बायें अकासी धोबिन आई (१२। १०। ६) प, गीध चील्ह सब माड़ी छावहि ४२। ४। ५ प

इनकी मधुशाला सैमल वृक्ष। जायका बदलने के लिए कभी कीड़े मकोड़े भी खा लेती है। सैमल की रुई इसका बिस्तरा। इस मिया 'बीवी के सोने में बादल गर्जन बिजली की चमक तक बाधक नहीं हो पाते। हल्का बैगनी-गाढ़ा बैगनी इनकी दो जातियाँ हैं। रंग अधिक सुहावना। परन्तु मादा से जोड़ा बाँधने पर रंग फीका पड़ जाता है। पराग की ही कैशर तक ये पहुँचाते हैं। फरवरी से अगस्त तक घोंसला बनाते हैं। वर्ष में ३-४ बार अंडा देते हैं। इनके शत्रु सर्प गिलहरी। जननक्रिया प्रगतिशील। जायसी ने इसको सुबह बोलने[1] के अर्थ में रक्खा है। इसकी संज्ञा फुलचनी है। अतः फूल चुही भी कही जाती है। अभिसारोपरान्त पद्मावती[2] की उपमा फुलचुही से है।

ताम्रचूड़ :— चार बजे जगने वालों के लिए एलार्म। इसके अण्डे की उपयोगिता अत्यधिक। शुद्ध शाकाहारी दूकान तक इसका आधिपत्य। कुटीर उद्योग में मुर्गीपालन का महत्व। मुगलकाल में भी इसका अस्तित्व स्पृहणीय है। १४०० ई० पू० में सर्वप्रथम चीन ने इसे पाला था। परन्तु आज विश्व में अमेरिका आगे है। संस्कृत में इसे कुक्कुट कहा गया है। तवचुरू को जायसी ने भी बांग देने वाले के रूप में ही रक्खा है।[3] इसकी चोटी लाल होती है।

तीतर :—पतीला-पतीला उत्तर मिला सुभान तेरी कुदरत। तीतर का रंग मटमैला। जोड़े के साथ झाड़ी में छिपा रहता है। उड़ने में कमजोर लड़ने में बलजोर। ये चितकबरा तथा काला दो तरह की जातियों में पाये जाते हैं। चितकबरा अधिक मिलता है। पैर लाल, शरीर कुछ स्याह-सफेद धारियाँ तथा रंग बदामी होता है। बड़ी जल्दी पालतू बन जाता है। उलझन पचायत से नहीं लड़कर सुलझाते हैं। औरत इन्हें जोश देती है। एक पत्नीक होते हैं अपने झुण्ड में शादी नहीं करते। काला तीतर कछारों में मिलता है। चन्द ने पृथ्वीराज[4] के ऊपर उड़ने से तीतर को शकुन पक्षी बताया है। जायसी ने लड़ने-उड़ने एवं भोजन सामग्री में इसे रक्खा है।

नक्टा :—नक्टा एक प्रकार की बतख है। जल की बतख, स्थल की बतख, सूतिका गृह में बच्चों को रोग से मुक्त कराने वाली बतक। सिलारे भी इन्हीं की जाति है। आवाज अगर कर्ण कटु नहीं तो मीठी भी नहीं। ज्यादा उड़ नहीं पाती। जायसी

(१) भोर होत बासहि चुहचुही। २।४।२ पद्मावत (२) रायमुनी तू ओ रवमुही। (अलिमुख लागि भई फुलचुही। (२७।३६।५)प (३) बिरह तबंचुरू ८।३।३ तथा कई स्थलों पर (४) पृथ्वीराज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७२, डा० सूर्यनारायण पाण्डेय

न इसे भोजन में रखा है परन्तु अब ये भोज्य सामग्री में नहीं है। लेदी भी इन्ही की जाति में है जो जल बतख होती है और भोज्य सामग्री में आयी है।

पपीहा और चातक :—पति वियोग में मर्माहत यौवन सम्पन्न रमणी जब रात भर जागने के बाद प्रातः बेरा की प्रमादी समीर के हल्के झोंको में अनजाने ही सोने लगती है—पापी पपीहा "पिउ-पिउ" की रट लगाकर अभागी सन्तृप्त हृदया को जगा ही देता है और वह कह उठती है – "पापी पपीहा जलपान की न प्यासो काहू बीथित्त वियोगिनो के प्रानन को प्यासो है" एक ओर अलसाई नायिका झिड़कती है और दूसरी ओर सतर्क नायिका कहती है—"सखी चातक मोहि जियावत"। समय असमय का बिना ध्यान किये पिउ-पिउ की रट लगाना। दुम लम्बी। चोच आँखो की तरह पीली। पैर पीले। १५ से १६ इंच तक लम्बा। नर मादा एक तरह। शिकारा पपीहा एक ही रंग के लेकिन पहला हत्यारा दूसरा मृदु भाषी। कोइल की भाँति अपने अण्डे को "सत भइए" से पोषवाती है। अप्रैल से जून तक अंडा देती है। कतिपय व्यक्तियो ने चातक-पपीहा अलग माना है। चातक काला, पपीहा पीला। चातक आकाशगामी पपीहा पेडो की आड का। पपीहा के लिए वर्षा दुःखदायी। अंग्रेजो ने इनकी रट से ऊब कर ज्वरग्रस्त पक्षी कहा है। जायसी ने पिउ-पिउ की रट लगाने में पपीहा, धार्मिक बोल मे चातक को प्रयुक्त किया है।

पाण्डुक :—कबूतर के रंग वाली। ईसाई दृष्टिकोण से पवित्र पक्षी। मांस स्वादिष्ट। कद मैना जैसा। बारहमासी चिड़िया। इसे फाख्ता भी कहते हैं। अंग्रेजी 'डोव' यही है। इसकी आवाज "कू" "कीं" है। आँख गाढ़ी लाल-डैने स्याही के रंग के। गाल तथा भौंहे सफेद। पाव नीले या लाल। पहाड़ या बाँस की कोठ वास-स्थल। वट और पीपल का आहारी। "चितरोखा" भी इसी की जाति का है जिसे गर्मी प्रिय है। निर्भीक होता है। भोर होते ही शोर करता है। "पेंडकी १० इंच की छोटी चिड़िया इसी वर्ग की है। यह मानव प्रेमी होता है। राम घुग्गा भी इसी वंश की है। बहुत छोटे कद की है। धावर-इटकोटुरी- तथा पहाड़ी शिखरो पर मिलने वाली को मिलाकर इनकी सात उपजातियाँ है। इनको नाचना पसन्द है। जायसी ने पाडुक और सुमें का कंठ वैषम्य दिखाया है। भोज्य पदार्थ स्वरूप भी प्रयुक्त हुआ है।

परेवा (कबूतर) :—दाम्पत्य प्रेमी। प्रणय कला का बेशर्म। स्वभावतः कामी। मानव-प्रेमी। गुटरू गू इसकी आवाज। सर्वत्र प्राप्त। अधिक मिलने वाले का रंग स्लेटी, गर्दन चमकीली, हरे पखो की कंठी। पुतली काली। नरमादा एक तरह। एक अंगुली पीछे तीन आगे। लड़ने में चोंच का साहाय्य नही लेता। घोसला

नही बनाता । अडा साल भर देता है । काला, हरा, सफेद, गुलाबी रंग तथा गिरहबाण, मुखबी, शिराजी, बगदादी, लक्का इनकी जातियाँ है । इनका पालना मुसलमानो नकल से शुरू हुआ जैसे अंग्रेजी नकल से कुत्ता पालने का श्रीगणेश हुआ । सन्देशवाहक होता है । जायसी कपोत प्रत्येक कलाबाजी का जिक्र किया है । गिरना, करवट लेना आदि । भोज्य सामग्री मे भी रखवा गया है ।

पिदारे, यथा बनकुक्कुटी बगुला :—पिदार कम महत्वपूर्ण जान पडता है क्योकि कवि जायसी केवल भोजन में ही इसकी चर्चा किए है । बया भी केवल प्रेमालिंगन मे ही चर्चित है । बन कुकुरी केवल भोजन मे । काक चेष्टा बकुल ध्यान । मुँह मे राम बगल मे छूरी का उदाहरण । बगुला भगत की कहावत प्रचलित है । मछली उछला नही कि चट किया । रात्रि मे झगडालू दिन मे साधु । ढक-ओगन बगुला इन्ही की जाति है । जायसी ने इनकी पंक्ति आदि की उपमा दी है ।

बटेर :—डा० अग्रवाल ने बटई-बटेर तथा गुडरू को एक ही जाति का माना है । खीभना इनकी विशेषता है । गुडरू का खीभना जायसी ने दिखाया है । भोजन सामग्री मे इसके साथ बटेई भी है ।

भिंगराज —कई प्रकार की बोलियो वाला । यही भुजइल भी कहा जाता है । भुजईल काले रंग तथा भिंगराज बोली के लिए जायसी द्वारा प्रयुक्त है ।

महरि —महरि ग्वालिनि भी कही जाती है । दही-दही पुकारने के रूप मे कवि ने इसे रखा है ।

महोख —महोख देहाती पक्षी है । इसके बोलने पर जोन्हा उत्तर देता है । जायसी ने इसी रूप मे इसे रखा है ।

मोर .—एक पक्षी होता है जिसके दुम पर पैसा । मोर मुकुट मकराकृत कुंडल । पूजो एवं पुस्तक चिह्नों के रूप मे इसके पखो का उपयोग । बादल देखा कि लगे नाचने । मोरिनी नाचती नहीं नृत्यकला अवश्य देखती है । राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त पक्षी । सिकन्दर इसको अपने यहाँ भारत से ले गया था जायसी ने इसे पुकारि कहा है । मुयो-मुयो बोलता है । गर्दन आदि की उपमा मे प्रयुक्त है । इसके लिए मयूर शब्द भी आया है ।

रतमुही रायमुनी —ये दोनों चिड़िया भिन्न हैं । रतमुही का प्रयोग लाल मुँह के प्रसंग में तथा रायमुनी का इसी अर्थ मे जायसी ने प्रयोग किया है । रायमुनिया सदिया पक्षी है ।

लवा :—यह एक बहुत छोटी चिड़िया है । डरपोक स्वभाव से ही होती है ।

"झपटि लवा जनु बाजि लुकाने" । यह बाज का प्रमुख शिकार है । इसी की एक जाति कालवा भी है । लवा को भोजन मे तथा कठलवा को प्रेमालाप के प्रसग में जायसी ने रखा है ।

सारस :—ऊँची डीग । गर्दन लम्बी । ऊँट जैसे । पास जाने पर कर्ण कटु शब्द के उच्चारण के साथ कुछ दूर भाग जाना । पालतू बन जाने पर चौकीदार का काम करना । अपरिचित के प्रवेश निषेध को चोंचो से इगित करना । एक पत्नीक जोडे मे किसी के मरने पर विधुर या विधवा पुन. जोडा नहीं बाँधते । नर-मादा मुह के मुँह डाले हुए पाए जाते है । इसी कारण "रस लुब्धा" कहा जाता है । भविष्य की वर्षानुमान अनुसार अडे नीचे-ऊँची जमीन पर देना । चीनी इसका सम्मान करते हैं । इनके केवल ३० जोडे ही सम्भवत. अब शेष रह गये हैं । वंशावली इनकी समाप्त होती जा रही है । एक जोडा अमेरिका मे है । जायसी ने कुलेल करने तथा वियोगावस्था आदि मे इसका स्मरण किया है । सारस के पर्याय में तिलोर और सरवान भी हैं ।

सारिका—बोली में 'टेप रिकार्ड' सर्पों तक की बदमाशी को आउट करने वाली । साप तथा चोर के जाने के लिए सिगनल । घोसला शयन कक्ष तक बनाने में शर्माती नही । जायसी ने सारी के रहचह का उल्लेख किया ।

सुग्गा—'सुग्गा' शब्द 'तोते' से अधिक मधुर जैसे भ्राता से भइया भाभी से भउजी । कवि ने भी तोता न कहकर 'सुवा' शब्द ही रखा है । यह पक्षियों में पंडित है । 'राम नाम की याद दिलाकर गणिका को मोक्ष दिलाने मे इसी का हाथ है । संस्कृत साहित्य मे इसकी प्रशस्तियाँ बहुलता में हैं । डा० सुरेश सिंह द्वारा वर्णित इनकी सभा की कार्यवाही विचारणीय है । प्राचीन कालीन रूपगर्वा नवयुवतियाँ इसकी आकृति अपनी कोमल कलाइयो पर गुदवाती थी । यह पालतू पक्षी है इसके शत्रु सर्प, बिल्ली, कुत्ते हैं । मनुष्य से अधिक दीर्घायु होता है । 'काकातुआ, इन्ही की जाति है जो आस्ट्रेलिया मे अधिक पाए जाते हैं । उत्तर-प्रदेश मे लहवरिया तथा टोइया ही मिलते हैं । लहवरिया का शरीर हरा, दुम पीला, चोच लाल, ठोढी काली, गले मे कठो । दस इच की पूँछ, छः इच का शरीर । जनवरी से अप्रैल तक अडा देते हैं । टोइया—गर्दन बैगनी, चोंच नारगी । सुग्गो की माद पेड की खोड़र। इनका आहार वैष्णवीय होता है । कीडा मकोडा नही खाते । इनकी सभा परवते,'

---

(१) द्विजकुलपते, मेधा सिन्धी, सुभाषित कोविदत्वंयिगृंहमुपायवेआर्दबहुपकृतं मम । यदिह नियतबाला कक्षा स्त्रीयः परिचारिकाशुकभगवतोनाम प्रीति.गृहणन्तिमुहुर्मुहः ।

सुवा¹, हीरामनि (हीरा + मणि-वज्र + शुक) इत्यादि रूपों मे जायसी द्वारा चर्चित है जो नासिका-मृदु-भाषण, प्रज्ञा प्रदर्शन इत्यादि प्रसगों मे है। पद्मावत मे तो हीरामणि को साधक का गुरु भी माना गया है। रत्नसेन-पद्मावती को मिलाने वाला हीरामनि ही है।

सेचान—बाज का पर्याय सागना तथा सेचान है। बड़ा दुष्ट हिंसक। शिकार में नम्बर वन। *शिकारी का पालतू पक्षी। मुर्दे की मास नहीं खाता।* जिस शरीर म स्वास प्रक्रिया चालू रहती है उसी का मास भक्षण करता है। लवा आदि इसके शिकार। वर्णरत्नाकर मे इसकी चौदह किस्मे गिनाई गई हैं। जायसी ने विरह आदि प्रसगों में रक्खा है।

हंस—हस के लिए 'नीर-क्षीर' विवेक कवि रूढ़ हो गया है। मान-सरोवर वासी। दुग्ध मोती का अहारी। शरीर सफेद-आँख-पैर लोहित वर्ण। सरस्वती का वाहन। पवित्रता का प्रतीक। कई जातियां हैं लेकिन भारत में काश्मीर के पास 'मूक' ह स ही मिलता है। इनके नीर-क्षीर विवेक, मुक्ता चुनने आदि को वैज्ञानिकों ने गलत सिद्ध किया है और सत्य को सामने प्रकट किया है कि नीर स्वच्छ जल तथा क्षीर कमल नाल के बिसतंतु का रस है साधारण पानी-दूध का अर्थ नहीं। ह ंस के पर्यायों में मराल है। सोन को कलह स करके लिखा गया है। ये स्त्रियों की चाल-स्त्रियो के वर्गीकरण ह मिनी इत्यादि तथा भोजनादि प्रसगो मे प्रयुक्त हो ह ंस को प्राण का प्रतीक भी माना है।

हारिल—ऐसा पक्षी जो जमीन पर पैर ही नहीं रखता। 'हारिल बिनवै आपन हारा'। नागमती के वियोग तथा भोज्य पदार्थ मे यह रक्खा गया है।

पक्षियों के प्रयोग संदर्भ तथा विशेषताएँ—

जायसी ने पक्षियों को जिन प्रसगों में रक्खा हैं वे उनसे सम्बन्धित व्याख्या में चर्चित हो चुकी है जैसे बोली, शुभाशुभ, भोज्यपदार्थ, विरह का स्मारक, अंग विशेष

---

(१) सभापति मित्रो एक समय था जब हमारा बहुतलाड़ प्यार था। श्रद्धेय हीरामनि (जायसी ने भी इसे याद किया है) की पण्डिताई विश्व-व्याप्त थी। कारण हमारी मेधा-बुद्धि थी। जिसे मानव शिशु वर्षों रट कर नहीं कंठ कर पाता उसे हम चन्द मिनटों में सुनाने लगते थे जगद्गुरु शंकराचार्य को मंडन मिश्र का पता बताने में हमीने साथ दिया था। पर खेद है हम आज उस योग्य नहीं रहे। कारण 'गुलशन में बुलबुलों का तराना बदल गया।'

के उपमान...... आदि में प्रयोग करके तत्कालीन सांस्कृतिक परम्परा का द्योतन किया है। उल्लू का अन्धापन ऊसरबगेरी भोज्यपदार्थ में, ककनू की विरह पीडा, कंठ नीले होने में नीलकंठ, सन्देशवाहक तथा अन्य सन्दर्भों में कागा, शकुन भाषी के रूप में कुररी ग्रीवा प्रसग में कूंज, भोजन में केंवा, हूक तथा विरह व्यथा को जगाने के अर्थ में कोइल, आँसू के टपकाव में कौडिल्ला, आँखो के उपमान में खजन, रात बिछुड़ने के अर्थ में चक-चकई, मासभक्षी रूप में चील्ह, अभिसारो परान्त हतप्रभ नायिका की मुखाकृति रूप में फुलचुही, ग्रीवा के उपमान में ताम्रचूड, भयकरता में गरुड, बहु अहार में गिद्ध, अडो के प्रेमी रूप में गौरैया, ग्रीवा तथा भोजन के प्रसग मे तीतर, विरह जगाने तथा भोजन में पपीहा, नाचने तथा भोजन में पान्डुक' दाम्पत्य प्रेम में परेवा, पिदार भोजन में बगुला श्वेतिमा प्रदर्शनार्थ, भोजन में गरुड़ बटेर, महोख तथा भिगराज बोली बोलने वाले के रूप में, दहू, दही बोलने के रूप में महरि ग्रीवा में मोर, मुखदशा प्रसग में राम मुनिया, रतमुही, भोजन में लवा, सारस कुलेल करने में, रह चह में सारो, इस काव्य का मुख्य पक्षी सुग्गा, फुर्वबाज उड़कू रूप में सैचान, नायिका की चाल में हस, जमीन पर पैर न रखने वाले के रूप में हारिल इत्यादि प्रसगो में पक्षियो का उल्लेख है।

संक्षिप्त—उल्लू, ऊसर बगेरी, ककनू, कतवंसा, कागा, कुररी, कूंज, केंवा, कोइल, खजन, गरुड, गिद्ध, गौरैया, चक-चकई, चील्ह, चुहचुही, तवचह, तीतर, नकटा, पपीहा, चात्रिक, पाण्डुक, परेवा, पिदारे, बया, बनकुकटी, बगुला (ढेक) बटेर, भिगराज, भुजइल' महोख, महिर, मोर, रतमुही, रायमुनी, लवा, सारस, सारिका, सुग्गा, सचान, हस तथा हारिल आदि पक्षियो का जायसी ने विभिन्न प्रसगों में प्रयोग करके अपने ज्ञान तथा मानव समुदाय की भावना को सन्तोष तथा मध्यकालीन समाज की भोजन सारिणी की ओर ध्यान आकर्षित कराया है।[१]

खगोल-गगन मण्डल

सूर्य —आलोच्य काव्य में सूर्य के पर्याय स्वरूप दिनकर, भानु, रवि, सुरुजन, सहसकरा, सूर इत्यादि शब्दों को प्रयुक्त किया है। सूर्य का निर्माण पद्मावती के सौन्दर्य की निर्माण सामग्री के अवशिष्ट भाग से माना गया है। ग्रीष्मकालीन सूर्य देर में तथा शरदकालीन जल्दी अस्त हो जाता है। इसकी जलन एव तपन विशेष उल्लेख रूप में प्रयुक्त है। रात्रि में इसका छिपना वर्णित है। रत्नसेन के तथा तत्का-

(१) पक्षियों की जानकारी के लिए द्रष्टव्य—हमारे पक्षी, डा० सुरेश सिंह तथा भारत के पक्षी राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह।

सीन सभी सम्राटों के प्रताप गरिमा एवं ऐश्वर्य के घोतनार्थ भी यह प्रयुक्त है। नक्षत्रों का स्वामी और सौरमंडल का राजा है। अरुणिमा का जिक्र भी है। सहसकरा के रूप में यह कमल को विकसित करने वाला है। सूर्य चंचल भी है जो सिंहल की अट्टालिकाओं से रथ बचाकर यात्रा करता है। इसका वाहन उच्चै श्रवा घोड़ा है तथा सारथि अरुण पंगु है।

चन्द्र :—शरदकालीन चन्द्रमा की निर्मलता चर्चित है। चाँद भी प्रतिदिन चलता है। शंकर का ललाट, आभूषण है।[१] यह सुन्दर शीतल, रात में द्योतित होने वाला तथा सुबह होते ही कान्तिहीन हो जाता है इसका वाहन मृग है। यह कलंकी[२] है। चन्द्रमा तारापति है। सुधाकर भी है। यात्रा में इसका विचार अनिवार्य है। यह आठों दिशा में फिरता है।

नक्षत्र ग्रह :—तारे चमकते हैं। सूर्योदय पर ये धूमिल हो जाते हैं। नक्षत्र में मिरगिसिरा अद्रा, पुष्प, सरेखा, पुनर्वस पुरवा, मघा, अगस्ति, चित्रा, उत्तरा, चीत, स्वाती और अगस्ति, ध्रुव, कचपची, केतु राहु, शनि, शुक्र,[३] गुरु, बुद्ध, मंगल का उल्लेख हुआ है। अगस्ति उदय से वर्षा की वृद्धता का अनुमान है। कचपची, ध्रुव चमकते हैं। ध्रुव अडिग भी है। शेष सभी ग्रह शकुनार्थ एवं चमकने आदि में प्रयुक्त है।

हवा मेघ दामिनी :—हवा का एक रूप आंधी भी है। ऋतु वर्णन में बवंडर, झकझोरत पौन की चर्चा है। आकाश में उलूक भी दिखाई पड़ते है वायु-सर्दी, गर्मी और वर्षा का कारण भी है।[३] जल के आधिक्य से मेघों का झुकना वर्षा-काल में चर्चित है।[४] इनकी संख्या ८६ करोड़ मानी गई है। गजना, झुकना, मंडरान उल्लिखित है। धूम, स्याम, धौरे, कारे-सेत इत्यादि इनके रंग हैं।[५] आकाश में चमकने के रूप में, जो वर्षा काल में चारो तरफ चकमक कर देती है[६] ऐसे रूप में दामिनी उल्लिखित है। मेघ और दामिनी अंगों के उपमान में भी हैं।

उपसंहार

आलोच्यकाव्य में वर्णित भारतीय सीमा हेम, सैत, गौड, गाजना बतायी गयी है जिसके अन्दर के २६, ३० राज्यों एवं दुर्गों की चर्चा है। धार्मिक स्थल सात आठ हैं। जो मात्र उत्तरी भारत के ही ज्ञात होते हैं। आठ-नौ विदेशों का चर्चा है जिसमें व्यापारिक सम्बन्ध ही ज्ञात होता है। सात द्वीप सात समुद्र की कल्पना मध्यकालीन भौगोलिक आख्यानों से ग्रहीत जान पड़ती है। सात द्वीपों में सिंहल सर्वोत्तम है। छः

(१) ससि माथे औ सुरसरि जटा (२२।१।४) प (२) पद्मावत नख-सिख खण्ड (३) नागमती वियोग खंड (४) (३०।४।७) प (५) नागमती वियोग खंड (६) नखसिख खंड।

पर्वतो की चर्चा है जिसमे सुमेरू सर्वोपरि है। जो कचन का पर्वत है। चार वनखडों का उल्लेख है जो यात्रा मार्ग में पडते हैं। छः नदियो का उल्लेख है जिनमें, गगा, यमुना, सोन, सरस्वती, गोमती, नील हैं। नदियो मे मिलने वाले नालो की चर्चा है परन्तु नामोल्लेख नहीं हैं। ऋतुओं मे पारम्परिकता के अनुसार षड्ऋतु एव बारह मासे का वर्णन है। अनाजो मे अलसीधान, गेहूँ चर्चित है। ३२, ३३ किस्म के वृक्षों, ३६-३७ किस्म के फलो, २६-२७ किस्म के फूलो, तथा २४, २५ प्रकार की धातुओ का उल्लेख हुआ है। जीवो मे ४६-४७ किस्म जन्तु व्यवहृत हैं जिनका बसेरा, पहाड जगल, नदी, समुद्र पेडों की कोढ़र हैं। जीवो को अंगो के उपमान, मडराने, सुन्दर ध्वनि करने एव भोज्य सामग्री आदि प्रसगो मे उल्लिखित किया है। ४०-४२ पक्षियों मे हीरामनि सुग्गा का विशिष्ट स्थान है। हस, कौकिल, सारस, सारव, ककनू, पपीहा, मोर तथा हारिल विशेष उल्लेखनीय हैं। सूर्य-चन्द्र के अतिरिक्त नवग्रहो तथा १७-१८ नक्षत्रों के साथ मेघ-दामिनी तथा हवा की विवेचना भी प्रस्तुत की गयी है। इस सभी भौगोलिक उपकरणो का स्वाभाविक गुण राजनैतिक दृष्टिकोण, आर्थिक परिस्थिति धार्मिकता किसी युग के प्रतीक आदर्श अगों के उपमान सृङ्गार प्रसाधन शकुनार्थ संदेश वाहक, क्रीडा विनोद, युद्ध की भयकरता आदि स्वरूपो मे प्रयोग हुआ है[१]।

---

(१) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय (२) सम्पूर्ण उपसहार के लिए दृष्टव्य।

अध्याय ३

सामाजिक दशा

जायसी ने अपने काव्यों में मनुष्य एव आदम की उत्पत्ति आदि शक्ति से मानी है। कर्त्ता ने सहम अठारह[1] योनियो में राकस-भूत-प्रेत आदि अनेको तरह की सृष्टि की। हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार ८४ लाख योनियाँ होती हैं पर जायसी ने यहाँ इस्लाम के अनुसार १८ सहस योनियो की ही चर्चा की है।

तुरुक :—पद्मावत के स्तुति खड मे ही कवि ने हिन्दू तुरुक की लडाई का उल्लेख किया है। तुरुकों को उपजातियों शेख, सैय्यद, मिया का वर्णन भी हुआ है। तुरुको को ओरगा भी कहा गया है। जहाँगीरशरफ तथा शेरशाह का क्रमशः चिस्ती[2] और सूरी[3] वश था। म० म० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी के अनुसार तुरुक (मुसलमान) जाति १४वीं सदी में बनी। जायसी ने स्वय अपनी उपाधि "मलिक" रक्खी है। "मलिक" शब्द "मुमुक्षु" के लिए भी व्यवहृत है जो पडित और ज्ञानी था। तुरुक सर्व भक्षी होता है। वे एक ही जीव मे आस्था रखते हैं। तुरुकों के बच्चे बडे कठोर होते थे।

अन्य विदेशी जातियाँ :—खसिया (गढवाल की लडाकू जाति), मगर (नेपाली), हबसी (अबनीसिया के निवासी), रूमी (तुर्की के निवासी), फिरंगी पुर्तगाली) की चर्चा भी जायसी के काव्य में युद्धस्थली की सैन्य व्यवस्था मे हुई है। उस समय फिरगी शब्द पुर्तगालियों के लिए प्रयुक्त होता था।

हिन्दू :—भारतीय सभ्यता के मेरुदड वर्णव्यवस्थानुसार समाज को सयोजित रखना आदर्श माना जाता था। धीरे-धीरे वर्ण शब्द जाति के पर्याय स्वरूप व्यवहृत होने लगा। विवेच्य काल में जाति का ही उल्लेख मिलता है। जातीय-गौरव और कीर्ति का भी स्थान उस समय था। गोत्रों के अनुसार भी हिन्दू जाति की कई उप-जातियाँ बनीं इनके विषय में पुराणों से जानकारी प्राप्त हो सकती है। जायसी ने सिंहलगढ़ के वर्णन में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, सन्यास आदि आश्रमों की चर्चा भी की है।

बाँभन :—हिन्दुओं को सर्वपूज्य एव सर्वश्रेष्ठ जाति के लिए जायसी ने बांभन और विप्र शब्द का प्रयोग किया है। इनकी गोत्रीय उपजातियाँ पांडे और दूबे का भी उल्लेख है। बाँभन जाति पर कवि ने चोट करते हुए कहा है कि अगर

(१) जहाँगीर और चिस्ती हैं उनके फरयांद (उन्हीं की शिष्य परम्परा में जायसी भी थे। (१।१८)प (२) (जाति सूर और खांडक सूरा १-१३।३)प

उसे दक्षिणा मिले तो उसके लिए वह बुलाने पर स्वर्ग भी जा सकता है।[1] पृथ्वीराज रासो मे भी बाभन की दक्षिणाप्रियता का जिक्र[2] है। भीख मांगना, असीस देना, दान लेना, इनकी मुख्य क्रियाओ के ही रूप में जायसी ने बताया है। आज के पानी पांडे की तरह बाभन के लिए उस समय भी पांडे रूढ़ि हो गया था। कनक वैसाखी, तिलक दुवादस, कर्णमुद्रा, पादुका-जनेऊ आदि इनकी पोशाक कवि ने बताई है। चित्ररेखा म इन्हे बडदरस भी कहा गया है।

क्षत्री :—क्षत्री का प्रयोग कवि ने गौरव, मर्यादा, वीरता एव स्वामिभक्ति के प्रसङ्ग मे किया है। दृढ प्रतिज्ञा होने से ये युद्धो मे पीठ नही दिखाते थे। युद्धोन्मत क्षत्री वीर जवान माता के वात्सल्य और नवागन्तुक नवयौवन सम्पन्ना नवेली की कटाक्ष का भी तिरस्कार कर देते हैं। पृथ्वीराज रासो मे ३६ कुल के क्षत्रियों का उल्लेख है जायसी ने भी किया है। उन्होने कुरु, पाडव, तोवर, (दिल्ली का प्रसिद्ध राजव श) वेस, पवार (परमार मालवे के प्रसिद्ध राजवश) गहिलौत। गुहिल द्वारा स्थापित वशजो सूर्यवशी कहलाते थे) चौहान, चदेल, बघेल, गहरवार (काशी कन्नौज के राजवश) परिहार (कान्यकुब्ज) का गुर्जर-प्रतिहार वंश) इतने प्रसिद्ध वशो की चर्चा के बाद खत्री (वर्ण रत्नाकर मे इसे ७२ कुलो की सूची मे रखा गया है), अगरवार, मिलन-हंस, ये तीनो वंश क्षत्रियो से परे जान पडते हैं परन्तु कवि ने राव-राना, राउत मे इन्हे भी गिनाया है। ये सब चित्तौड की आन के मान हेत लडने के लिए जान की परवाह छोड कर रणस्थली मे डटे रहे।

जन-जातियाँ :—हीरामनि सुग्गे के शत्रुस्वरूप नाऊ और बारी का जिक्र है। दसौधी भाट आशीश देने वाले के रूप मे आया है। डोव को हेला भी कहा गया है। बिआधा पक्षियो का फँसाने वाला हत्यारा है। कोहार, लोहार, तेली, धोबी, भूंज, जरिया नट, माझी, सोनार, धोमर, आदि जन जातियो का प्रसगवशात् प्रयोग हुआ है। फिर कवि ने ३६ केली वालाओ की गणना मे बामनि, चौहानी चंदेलिनि बानिनि, सोनारी, कलवारी, अगरवारिनि, कैथिरिनि, पटुहनि, बरइनि, कोरी, चैसिनि आदि का उल्लेख पद्मावती की सहेलियो के रूप मे प्रयुक्त किया है। गन्धी, मालिनि वेश्या, पातुर, नर्तकी, बेडिनि पाखडी, चोर छरहरा, परियारी ठाढी आदि का वर्णन भी हुआ हैं।

---

(१) बांभन जहाँ दक्खिना पावा। सरग जाइ जौ होइ बोलावा (३७ ५।७) प (२) दब्बिहि नारि सकु जपटोर। मनउ दुज दक्खिन लागइ चोर। (४। ५।११, १२)

हिन्दू मुसलमान सम्बन्ध :—इतिहासकारों[1] के अभिमत में तत्कालीन समाज में मुसलमानी शासको द्वारा हिन्दुओं को दवा दिया गया था। हिन्दू रावों को अलाउद्दीन ने कौवा कह कर पुकारा है। मुसलमान एक ही जीवन मे आस्था रखते थे। धार्मिक पक्षपात के कारण हिन्दू लोग ऊँचे-ऊँचे पदो से वंचित रखे जाते थे। हिन्दू राव गोरा-बादल ने तुरकों को विश्वासघाती के रूप में देखा है।[2]

किन्तु जन सामान्य मे दोनों जातियो की यह विषमता स्पष्ट रूप से कहीं भी उल्लिखित नहीं हैं। केवल अलाउद्दीन शाह द्वारा हिन्दुओ को कौवे की संज्ञा दी गई है तथा हिन्दू राव गोरा बादल द्वारा मुसलमानो को विश्वासघाती के रूप में देखा गया है।

उपसंहार :—कवि ने अपने काव्यो में (मुसलमान) तुरक एवं हिन्दू जाति की आस्था प्रस्तुत की है। हिन्दुओं की जातियो में—ब्राह्मण, क्षत्री, (३६ कुलीय) वैश्य सूद्र इत्यादि सभी प्रचलित एव मुसलमानी सभी फिरको का जिक्र किया है। बादशाह मेले खड से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में हिन्दू-मुसलमानों के आपसी व्यवहार में कुछ मधुरिमा भी आ रही थी। जन सामान्य मे ज्यादा वैषम्य दृष्टि-गोचर नहीं होता। इतिहासकारो ने व्यर्थ मे ही तूल पकड़ा है। तथा मध्ययुगीन इतिहास के पृष्ठों को हिन्दू मुसलमानों को वैषम्य से रंगने में सकोच नहीं किया है परन्तु साहित्य में मात्र राजनैतिक क्षेत्रों मे हिन्दू तुरक की लड़ाई का उल्लेख है। सर्वजनीन लड़ाई का वर्णन अप्राप्य है। अतः इतिहासकारों के कथनों को साहित्य अप्रमाणित सिद्ध करने में सक्षम है।

परिवार

परिवार बना कर वंश परम्परा द्वारा मरणधर्मा मनुष्य ने मानव जाति को अमर बनाया। इसके द्वारा समाज को एक विशिष्ट प्रणाली में निमित कर उसका सचालन भी किया है।[3] ऋग्वेद काल मे समाज में परिवार संस्था दृढ़ हो चुकी थी[4] पाणिनिकाल मे परिवार की सज्ञा कुल थी। कुल की प्रतिष्ठा पर जातीयतानुसार भारतीय बहुत ध्यान देते थे। यशस्वीकुल महाकुल कहलाते थे। महाभारत में भी

(१) घाचापरिक तुरूक हम थूमा। परगट भए सुपुत सूमा। (४५।७।३) प
(२) इतिहासकार बर्नी, हेवेल, डा० ईश्वरी प्रसाद, (मध्यकालीन भारत), पृ० १२५ से १४८ तक। (३) पृ० राज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ११६, डा० सूर्य नरायण पांडेय (४। हिन्दू संस्कार, पृ० २०१ (३ भाग) (विवाह स्थिति)— डा० राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

कुलों की चर्चा है। परिवार की मूल और सयुक्त दो प्रथाएँ होती हैं। जायसी द्वारा वर्णित कुटुम्ब और कुडबे की प्रणाली से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में सयुक्त परिवार की प्रथा थी।

(१) संयुक्त प्रथा :—सयुक्त परिवार मे जायसी ने सास-ससुर-सौत जेठ, देवर, ननद, कंत, तथा माता-पिता, भाई (बहन) भगिनि, पूत, बेटा नाती आदि का जिक्र किया है।

(२) परिवार का अंग:—सेवक, दास, नेगी, दासी, दूती, धाय आदि मध्यकालीन परिवार के अग समझे जाते थे। ये अन्तरङ्ग होते थे। पाणिनि काल मे भृत्य शब्द किंकर तक पहुँच चुका था। भृत्यो में परिचारक परिर्षचक द्वार-पाली आदि का वर्णन है। जायसी न ठाकुर-सेवक की अनन्यता का दिग्दर्शन किया है। ठाकुर की सेवा मे सेवक अपना प्राण तक गवाना अच्छा समझता है। गाढ़े में साथ नहीं छोडना अच्छे सेवक का धर्म था। तरहेल शब्द मातहत अथवा सेवक के लिए प्रयुक्त है।

(३) पुरुपसत्ताक :—सिंहल नरेश गन्धपसैन, चित्तौड नरेश रत्नसेन, (जो चित्रसेन के बाद सिंहासनासीन हुआ) दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन, चन्द्रपुर नरेश चन्द्र-भानु, कुम्भलनेरि राय देवपाल प्रभृति पारिवारिक पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि ये अपने परिवार के सर्वोच्च अधिकारी थे। पाणिनिकाल मे गृहपति का अधिकार पिता का होता था। पिता के बाद ज्येष्ठ पुत्र अधिकारी बनता था। जायसी ने भी चित्र-सेन के बाद पुत्र रत्नसेन को चित्तौड के सिंहासन पर आसीन किया है।

(४) वंशपरम्परापिता सूचक —भारत मे विद्या वश गुरु-शिष्य परम्परा मे और योनि सम्बन्ध मातृ-पितृ वशपरम्परा मे प्रचलित है। जायसी ने अपनी गुरू परम्परा का उल्लेख करते हुए 'ओह मखदूम जाति के हैं। उनके घर बार, का उल्लेख किया है। अर्थात् मध्ययुगीन समाज में गुरू-वश परम्परा का परिवार भी होता था। तत्कालीन समाज से यौन सम्बन्धीय वशपरम्परा पितृवशीय उल्लेख मिला है। माता के नामो पर वशो के सकेत अप्राप्य हैं। पिता के बाद पिता-का पुत्र ही उत्तराधिकारी होता था। कुल और कुलवधू दोनों की रक्षा परिवार के अधिकारी द्वारा वांछनीय थी।

(५) पति-पत्नी :—पिउ से सयुक्त स्त्री ही सुहागिनी समझी जाती थी। तथा पिउ से वियुक्त नारी हृदय बाउर हो जाती थी। पत्नी के लिए पति से प्यारा और कोई नहीं होता था। अर्थात् पति का स्थान पत्नी से ऊँचा था। स्वामी की रक्षा मे गोरा तथा अध्यात्म पक्षीय साधना मे रत्नसेन आदि ने अपनी पत्नियों की प्रेम

पूर्ण उक्ति एवं लाड प्यार को तिलांजलि देना उचित समझा जाता है। किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति में भारतीय आत्मा ने किसी भी व्यवधान की प्रवंचना को सहन करना उचित नहीं माना है।

बहु परस्थानी :—चन्द्रपुर के रनिवास की ७०० रानियों में अति सलोनी रूपरेखा, सोलह सौ पद्मिनी रानियों में पाट परधानी चम्पावती, रत्नसेन के १६०० रानियों में नागमती और पद्मावती सर्वोत्तम हैं जिससे ज्ञात होता है कि बहुभार्यता प्रथा थी किन्तु उनमें १ या २ पट रानियाँ होती थी। रानियों के सतीत्व में यदि किसी तरह की म्लेच्छों से आँच-आठी जान पड़ती थी तो वे रनिवास सहित सती हो जाती थीं।

(७) एक भर्तृता एवं सतीप्रथा :—रत्नसेन की मृत्यु पर नागमती और पद्मावती ने जौहर किया, चित्ररेखा प्रीतम कुंवर द्वारा अचलपट्ट पर लिखे हुए वाक्य से ही सम्बन्ध जोड़ कर सरि (चिता) पर चढ़ी पर देवात् वह काशी से लौट आया अतः चित्ररेखा सौत-हाथिकर चितापर से उतर पड़ी। इन वर्णनों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में एक भर्तृता प्रथा थी और 'सती होना भी प्रचलित था।

(८) परिवार के कर्म्म :—राजा के देहावसान पर राजपुत्र कार्यभार ग्रहण करता था। कन्या के विवाह की जिम्मेदारी पिता के ऊपर रहती थी। उसका यह भी कर्त्तव्य होता था कि मेरी लड़की जहाँ भी जाय वह कुल उच्च हो, वर सुन्दर हो, वह राजकुमार के सभी लक्षणों से सम्पन्न हो। पति का कार्य गृहिणी की रक्षा करना था। वह युद्ध स्वीकार करता था पर गृहिनी का अपमान नहीं सहन करता था।

(९) पारिवारिक सम्बन्ध :—माता-पिता-भाई, बहन, पुत्र, बेटा, आता कन्या, बारी, बेटी सास, ननद, ससुर, जेठ, देवर-पति, पत्नी, नाती आदि पारिवारिक सम्बन्ध में आने वाले शब्दों को प्रसंगावशात् जायसी ने अपने काव्यों में प्रयुक्त किया।

(१०) रक्त सम्बन्धियों के अतिरिक्त :—परिवार के अतिरिक्त मित्र और सुहृदवर्ग में भी मानव अपने मन की प्रसन्नता का अनुभव करता है। जातकों में माता-पिता मित्र, सुहृत-जाति वर्ग का प्रायः साथ-साथ उल्लेख हुआ है। पाणिनी ने गाढ़ी मैत्री का वर्णन किया है। जायसी ने भी 'मीत' को गाढ़े का साथी, बन्धुवत एवं संकट में कन्धा देने वाले के रूप में वर्णित किया है। मित्र के समान ही शत्रु का भी महत्व होता है। सुग्गे के शत्रु नाऊ-बारी एवं हिन्दुओं के शत्रुस्वरूप तुरक का वर्णन कवि ने किया है। वैरी और रिपु शब्द शत्रु के पर्याय हैं।

(११) पाहुन परदेसी :—पाणिनि ने अभ्यागत के लिए अतिथि शब्दों सेवा को आतिथ्य तथा सेवक को आतिथेय बताया है। वैदिक भाषा में अतिथि के लिए

गोहन शब्द आया है।[१] जायसी ने 'पाहुन'[२] शब्द रखा है। पाहुन परदेसी की तरह होता है जो सबदिन नहीं रहता है, जल्द ही चला जाता है। सिंहल वासी रत्नसेन को पाहुन सदृश मानते हैं।

(१२) उपसंहार :—जायसी ने पारिवारिक संयुक्त प्रथा, परिवार के अंग, पुरुष सत्ताक परिवारों की चर्चा की है। तत्कालीन समाज में वंशपरम्परा पिता के अनुसार थी। पति-पत्नी का आपस में सामन्जस्य था राजन्यवर्ग में बहुपत्नीक प्रथा का भी प्रचलन था परन्तु पत्नियों के लिए एक ही पति का उल्लेख मिलता है। उसकी मृत्यु पर उनको सती होने की चर्चा है। परिवार का यह कर्त्तव्य होता था कि वह जन्म मृत्यु एवं अन्य उत्सवों आदि में भाग ले पिता ही परिवार का मालिक था। पति-पत्नी का रक्षक होता था। परिवार सम्बन्धियों रक्त सम्बन्धी तथा अन्य में दास-दासी की आख्या ही परिवार में पाहुन के आतिथ्य का तथा उसकी परदेश में निवास अवधि का उल्लेख है।

विवाह

(१) दो कुलों का सात्विक बन्धन—विवाह का हिन्दू संस्कारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत साहित्य में इसकी महत्ता का प्रतिपादन स्थान-स्थान पर हुआ है। जायसी ने विवाह को दो कुलों के बन्धन स्वरूप स्वीकार किया है। दूलह-दुल्हन की गाँठि जोरना,[३] दोनों गोत्रों का गोत्रोचार करना,[४] कन्त के द्वारा धनि का हाथ लेना[५] आदि आचार पारस्परिक मिलन के प्रतीक हैं।

(२) वैवाहिक आचार—जायसी के अनुसार आयोजित वैवाहिक आचार में आनन्दोत्सव और भोज का वर्णन उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने काव्य महरी बाइसी और चित्ररेखा में भी विवाह का जिक्र किया है। पद्मावत में उसकी सभी क्रियाओं का सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। वरोक, तिलक, मंगलाचार, लगन, नेवत, सोहाग, माडव, मानिक, दिया, घर-घर वदनवार, हाट-बाट का सजाव. रत्नसेन दूल्हे का शृंगार, शिष्टाचार में सहसकुँवरों का दूल्हे से विनय करना, विवाह पद्धति से अनुमोदित स्नान, पैरी (पनही) मौर, मुकुट, धारण करके लाल रथ पर सवार होकर द्वारचार तक जाना, दूल्हे का पौर कन्याओं द्वारा दर्शन, जनवासा, कन्या का हुलसना, नेहर से विलगाव का स्मरण करके मूर्च्छित होना, जेंवनार, पान, विवाहाचार, कंचनकलस, गठिबन्धन, पंडितों का वेदपाठ, चौक पूरना, गोत्र का

---

(१) (पाणिनि कालीन भारत, पृ० ११४ (२) पैनर हैं पाहुन परदेसी १२। ३।४५ (३) (गाँठि दुलह दुलहिन की जोरी (४) दुहुँ नाव होइ गोत उचारा (५) कंतलीन्ह दीहां धनिहाथा

उच्चारण, जैमाल डालना, धनिका हाथ लेना (पाणिग्रहण), सात भाँवरि, नैवछावरि-दाइज, श्वसुर का कठालिगन ; दोनों का मिलन (वर-वधू, सखियों का मजाक, कठ लागू (वर-वधू) आदि का यथास्थान वर्णन कवि ने बड़े चातुर्य के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें राजा के ऐश्वर्य और प्रजा के उल्लास का आभास मिलता है। वरीछ, वररक्षा या वाग्दान है जिसे पंडित या वडहरस् सम्पादित करते थे।[१]

वरयात्रा के समय अटारियों पर दूल्हा देखने की उत्कंठा से भरी स्त्रियों का जमावड़ा भारतवर्ष का एक बहुत पुराना दृश्य। जायसी अपनी पैनी दृष्टि से ऐसे दृश्यों को ओझल नहीं होने देते।[२]

कवि ने जेवनार के बाद ही विवाहचार की चर्चा की है। ग्रन्थि बन्धन भावरि एवं नेवछावरि का परिगणन भी हुआ है। कतिपय विद्वान ग्रन्थिबन्धन को कुलों का बन्धन नहीं मानते उसे केवल प्रतीक रूप में माना है। दो कुलों का बन्धन तो गोत्रोच्चार, शाखोच्चार से होता है। सात भाँवर वैदिकाचार है जिनमें शास्त्रीय चार भाँवरे ही हैं पाँचवी से सातवीं शिष्टाचार है। तीन भावर तक कन्या आगे वर पीछे रहता है। लाजाहोम एवं उपलारोहण भी वैदिकाचार के अन्तर्गत हैं। जिस कन्या की शादी होती वह होम नहीं करती है। इन्होंने वरीक को विवाह का अंग नहीं स्वीकार किया है शेष जैसे तिलक से लेकर सात फेरी तक सभी अंग हैं। जिनका मन्त्रों से विहित विधान है। शूद्रों के विवाह में मंत्रों का उच्चारण वर्जित है।[३]

जायसी ने 'गवना' शब्द संस्कृत के वधू द्विरागमन के समानार्थक रूप में रखा है। जायसी ने विधिपूर्वक विवाह का वर्णन किया जो कर्मकाण्ड से सम्मत है।

(३) वैवाहिक विधि-निषेध—पश्चिम का लड़का पूरब की लड़की का विवाह उत्तम माना जाता था। विवेच्यकाल में विवाह के समय जाति जनम और आऊ का विशेष ध्यान रखा जाता था। कुल की प्रतिष्ठा का अतिशय विशेष था। चित्ररेखा में भी उसके मानोरति का उच्चकुलीन होना बताया गया है। मीन-मेष का सयोग नहीं बल्कि कन्या तुला का विहित है। जायसी का नख-शिख वर्णन वधू का योग्यता के प्रदर्शनार्थ ही है। जायसी ने वर्णित विवाहयोग्य कन्याओं के गुणों का

(१) २५।१५ से लेकर सम्पूर्ण रत्नसेन पद्मावती विवाह खंड को पंक्तियाँ तथा चित्ररेखा एवं महरी याइसी के भी वैवाहिक प्रसंग(पृ० ८६ तया ११
(२) डा० मन्थावली, पृ० ८८ आचार्य शुक्ल
(३) पं० रामवदन शुक्ल प्रधानाचार्य श्री रा० दे० म० म० प्रभृति विद्वान।

वर्णन किया है परन्तु मनुस्मृति[१] शतपथब्राह्मण[२] आदि ग्रन्थों के उल्लिखित दुर्गुणों को बचाया है।

(४) उपसंहार—विवाह के आचारो का जायसी ने बडो कुशलता से दिग्दर्शन कराके तत्कालीन समाज में विवाह के अस्तित्व को द्योतित कराया है। आचार्य प्रवर श्री रामचन्द्र जी शुक्ल ने अपनी जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में लिखा है कि 'गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामसीता के विवाह का जितना विस्तृत वर्णन किया है उतना विस्तृत जायसी का नहीं है। गोस्वामी जी का रामचरितमानस लोकपक्ष प्रधान काव्य है और जायसी की पद्मावते मे व्यक्तिगत प्रेम साधना का पक्ष प्रधान है। अतः पद्मावत में लोक व्यवहार का जो इतना चित्रण मिलता है उसी को वस्तु समझना चाहिये जैसा पहले कह आए हैं इश्क की [मसनवियो के समान यह लोक पक्ष शून्य नहीं है।[३] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने तत्कालीन प्रचलित स्त्री लौकिक आचार-विचार को अपनी काव्य दृष्टि में रखने का सफल प्रयास किया है।

स्त्रियों की दशा

(१) कन्या—स्त्री के जीवन के अनेक क्षेत्रो का जायसी की साहित्य-तरंगिणी की तलहटियो से ज्ञात होता है। कन्या, बेटी, बारी, राजधानी, राजकुँवरि, तरुनी, दुलहिन, सुहागिन, रामा, गोरी, रानी, जोई, मेहरी, कामिनी, इस्तिरी, दारा, तिरिया, बीबी, तीवह, नारी, नागरि, माता, भगिनी, बाँझ तथा सौत आदि शब्दो मे उसके जीवन की कुछ झाँकी जायसी की भाषा के शब्दो में आई है। आयु के प्रथम भाग मे कन्या, बेटी, बारी, राजकुँवरि और राजधानी आदि सम्बोधनो से वह उच्च घरानों में पुकारी जाती थी। पतजलि और मनु ने कन्याओ के ऊपर विशेष विचार[४] किया है। तरुनी शब्द वयस्क स्त्री के लिए विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। विवाह काल में कन्या जो आगत यौवना होती थी उसे दुलहिन कहा जाता था। पाणिनिकाल में इसे ही वधू[५] कहा गया है।

(२) मेहरी—नव विवाहिता बधू को दुलहिन कहा जाता था जिसे पाणिनि ने सुमङ्गली कहा है। जायसी ने दुलहिन को ही ज्यो-ज्यो वह पुरानी होती जाती है उसी मेहरी, जोई, कामिनि, इस्तिरी और अन्त में जब वह बिल्कुल पुरानी हो जाती थी तब उसे नारी कहा है। राजाओं की स्त्री को रानी भी कहा गया है। नागरि

(१) मनुस्मृति ३।८।१०, ६, २ (२) १।२।५,१६ शत० प० ब्राह्मण (३) जायसी ग्रन्थावली (भूमिका), पृ० ८४ (४) मनुस्मृति ६। १७२ तथा पतजलि भाष्य ४। १। ११ १६ (५) पा० का० भा० १०२, पृ० डा० अग्रवाल।

शब्द चतुर स्त्री के लिए व्यवहृत है। विवाहिता स्त्री को बिवाही भी कहा गया है। कवि ने पद्मावत काव्य के 'रत्नसेन पद्मावती भेंट खड के १६ दोहों में पति-पत्नी के सम्बन्ध में भी लम्बी व्याख्या प्रस्तुत की है।

(३) माता—अच्छे शील गुण एव महापुरुष वाली माताओं की सन्तानों को समाज में आदर था। पद्मावती चपावती जैसी महासुरूप पाट परधानी के ओदर से औतार लेती हैं चित्ररेखा अति सलोनी रूपरेखा से जन्म लेती है। पुत्रोत्पत्ति से माताए धन्यवाद की पात्रा बना जाती हैं। रत्नसेन के जन्म पर उसकी माता को धन्य* कहा गया हैं। कन्याओं के नाम माताओं और पुत्रों के नाम पिता के नामानुसार रखे गए हैं। भगिनी शब्द भी स्त्री के लिए व्यवहृत है। स्त्रियों के घृणास्पद सम्बोधन हेतु बाँध शब्द भी चालू था। एक पति की दो पत्नियों के लिए 'सौत' शब्द व्यवहृत होता था। नागमती और पद्मावती आपस में सवति हैं।

(४) शिक्षा—जायसी ने अपनी नायिकाओं को पाँच वर्ष की अवस्था में ही सभी पुरानों वेदों के ज्ञान से पडित बना दिया है। डा॰ गौतम के अनुसार उस समय स्त्रियों के पढ़ने-लिखने की व्यवस्था नहीं थी फिर भी कवि ने ऐसा लिखा है यही नहीं वह पद्मावती की पडिताई से चहूखण्ड के राजाओं के नत-मस्तक करा दिया है। चित्ररेखा को भी पढ़ी-लिखी वर्णित किया गया है। प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा-क्षेत्र में सम्मान प्राप्त था परन्तु मध्ययुग में यह महत्व समाप्त हो गया था। कवि ने सम्भवत प्राचीन परम्परानुसार ही नायिकाओं को वेदों पुरानों का अध्ययन करा कर उसमे पारगत सिद्ध किया है। इतिहासकार मजूमदार ने शिक्षा-व्यवस्था का उल्लेख किया तथा पद्मावती को उच्चशिक्षा प्राप्त नायिका बताया है।[१] अत यह ज्ञात होता है कि राजन्यवर्ग में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध था।

(५) सती—मध्ययुगीन भारतीय समाज में सती-प्रथा का प्राबल्य था। विधवा का सरिपर अपने मृत पति के साथ अथवा उसके कुछ चिह्नों के साथ लेटना और जलना ही सती होना था। चित्ररेखा तो पति के पाट के साथ ही गाँठ जोर कर सती होना चाहती है परन्तु दैवात पति के दर्शन हो जाने से वह सीस बाँध कर चिता पर से उतर आती है परन्तु नागमती और पद्मावती तो सरि रचि करके दान आदि देने के बाद रत्नसेन की लाश के साथ जल-जाती है। यह मध्यकालीन इतिहास की अनुपमेय घटना है।

(६) क्रीड़ा, शरीर प्रसाधन—स्त्रियों की क्रीडाओं का कवि जल-विहार—

---

(१) डा॰ आर॰ सी॰ मजूमदार और डा॰ एच॰ सी॰ राय चौधरी ऐन एडवान्स हिस्ट्री आफ् इण्डिया पै॰, ८, पृ॰ ४००

पनिघट चौपड-काम केलि वसन्त आदि शब्दो के सहारे की है उसी तरह से नारी सौन्दर्य हेतु अनेक वस्त्र.भूषणों आदि की चर्चा की गई है जिनका विशेष विवेचन इसी अध्याय के क्रीडा-विनोद एव शरीर वाले खडो में दृष्टव्य है।

(७) समाज में स्थान—तत्कालीन समाज मे उसका (नारी का) अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं दिखाई पडता । वह परमुखा पेक्षी है । नायिकाएँ नायकों की भाँति प्रेमक्रीडा में भी स्वतन्त्र नही दिखाई गई हैं । पद्मावती अपने प्राण हथेली में लिए हुए विवश ही दृष्टिगोचर होती है । तत्कालीन वहु विवाह भी नारी के महत्व को कम करते हैं ।

उपसंहार—समकालीन नारी जीवन में पातिव्रत धर्म का महत्वपूर्ण स्थान था । मध्ययुगीन नारी जीवन पुरुषों की कृपा पर आश्रित था । पुरुषों की तुलना में प्रतिष्ठागत हीनता तथा विवशता भी थी । दाम्पत्य जीवन के बीच उसका पातिव्रत एव सतीत्व का आदर्श उल्लेखनीय है । इसी से उसे सती कहा जाता है । वह परलोक मे भी अपने पति से मिलने की आस्था रखती थी । नागमती और पद्मावती का सती होना इस बात का उदाहरण है । मध्यकालीन हिन्दू समाज मे और विशेष कर राजपूतो में सती तथा जोहर की प्रथाओ का प्रचलन था । भारतीय नारी पति की कृपादृष्टि मात्र पाने के लिए व्याकुल रहती है । नारी जीवन मे पति निष्ठा का प्राबल्य था । मुसलमानो को भी यह विश्वास रहता था कि आवश्यकता पडने पर भारतीय नारी सतीत्व का स्पष्टीकरण जोहर की ज्वाला मे करेगी । नागमती और पद्मावती ने ऐसा ही किया ।

आर्थिक दशा

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष कृषि, व्यापार, व्यवसाय और बहुमूल्य धातुओ का ऐश्वर्य सम्पन्न देश रहा है । अत: विवेच्य काल में सामान्यतः खाने-पीने की लोगो मे अधिक चिन्ता नहीं जान पडती है । फलतः कवि प्रवर जायसी ने आर्थिक स्थिति के सूक्ष्म वर्णनों की ओर ध्यान नही दिया है । अल्पांश मे व्यावहारिक जीवन के माध्यम से कुछ आर्थिक दृष्टिकोण का आभास होता है जो

जनसंख्या की सघनता—सिंहल मे ५६ कोटि कटक, सोलह सहस घोर, बाइस सहस सिंघली हस्ती, पदमकोटि रथ, चौबीस लाख छत्रपति हैं तथा राज मन्दिर

(१) सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड (पद्मावत)
(२) चित्तौड़ गढ़ वर्णन खण्ड तथा गोरा बादल युद्ध खंड (प)
(३) राघव चेतन दिल्ली गमन खंड (प)

में १६ सहस पद्मिनी रमणियाँ हैं। तथा पग-पग, ठाँव ठाँव पर जती जोगी है।[1] और चित्तौड में सोलह सहस कुवर जोगी (बाल, वृद्ध, वनिता, कोढ़ी, भोगी छोडकर) राजा की १६ सहसदासी, लाख-लाख पवरिया, द्वार की चौकसी पर दो लाख कुवर, राजा रत्नसेन को सिंघल से प्राप्त सहस डाडिया जो चार कहारों से उठाई जाती है, (इस तरह उसमें बैठने वाली रमणी को लेकर ५००० लोग) ४ लाख पिटारी में सामान चले जिनको ले चलने वाले चार लाख मजदूर हैं, १००० तुरिपन्ह, १०० पक्ति मिघली हाथी है, ये भी चित्तौड में आई, रत्नसेन को छुड़ाने के लिए सोलह सौ चडोल, बत्तीस सहस्र घोड़े चले, सोलह सहेलियाँ इत्यादि[2] तथा दिल्ली में छत्तीस लाख तुर्क असवार, बीस हजार हस्ती तथा राव रक हैं।[3] इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि जनसंख्या सघन एव नगरों मे अधिक केन्द्रित है। सिंघली नागरिकों का रहन-सहन उच्चस्तरीय आभासित होता है। उनकी पवरियाँ ऊँची हैं। जो इन्द्रपुरी की समता करती हैं। 'राउटक' सब अपने-अपने घर में सुखी हैं। सभी प्रसन्न मुद्रा में हैं। चन्दन के चौरे पर सोते हैं। सभी, संस्कृत के ज्ञाता हैं।[4] चित्तौडी बसगति (बस्ती) इन्द्रपुरी के तुल्य है। सभी 'राय-रंक' सभी के घर में उत्साह और सुख था।'' '' ऐसी शान्ति और उत्साह देखा मानों गढ़ गिरा हा नहीं था। विशेष अपने अध्यायों मे उल्लिखित है जिससे उस समाज का रहन-सहन ज्ञात होता है। इन सबसे ज्ञात होता है कि अभी भी जबकि विदेशी आक्रमण शुरू हो गये थे—उनका आधिपत्य दिल्ली में हो चुका था। लेकिन देशी नरेश अपने विलासिता एव ऐश्वर्य मय जीवन को ही बिता रहे थे। युद्ध के बीच राजा द्वारा अखारा का रचना तथा अलाउद्दीन के घेरा डालने के समय भी उसी के द्वारा बस्ती म कुमारों द्वारा गोंद और पासे से चौपड का खेल देखना, इसक साक्ष्य हैं। उनका जीवनस्तर उच्च था तथा वे इस उच्चता के इतने कायल हो चुके थे कि उन पर अलाउद्दीन जैसे खूँख्वार सुल्तान के आक्रमण का भी प्रभाव नहीं द्योतित होता है।

आय के साधन—जन सामान्य की आय के साधनों में। सोनारी, मसाजी, वैश्यागीरी नर्तकी, गायन, वादन, कारीगरी, मालीगीरी, कुम्हारी, लुहारी तथा बेपारी इत्यादि है। बीजानगर के गुणियों जिनमें नट, नाटक, पातुर, गायक, सगीतज्ञ सब सर्वोत्तम माने गये हैं। विश्वकर्मा को भवन निर्माण कला उच्चतम समझो गई है।

व्यावसायिक केन्द्रों की इकाई, हाट और नगर ही जान पड़ते हैं। चित्तौड के व्यापारी सिंहल गए, जहाँ का बाजार प्रबन्ध सर्वोत्तम जान पड़ता है। कनक हाट,

---

(१) सिंहल द्वीप व लोग खंड (पद्मावत) (२) चित्तौडगढ वर्णन खंड (प)। (३) (४।५।३) प की सभी पंक्तियाँ (४) सिंहल द्वीप वर्णन खंड

'सिंगार हाट, फुलवारी हाटो की चर्चा है जिनके लिए द्रष्टव्य है नगर वर्णन अध्याय। नरेशो के यहाँ सैन्यादि, नौकर, दासी, भृत्य, दूत-दूती, चेरी आदि के द्वारा प्रायः लोग सुखी थे। फिर भी दीन भिखारी ऋण लेते थे। और व्यापारी बनता ही व्यापारी के लिए बनजारा और नाइत शब्द आए हैं। वेवहरिया शब्द ऋणप्रदाता के लिए जो सूद के लिए दरवाजा घेरेगा। व्यापार के मार्ग में लुटेरे, करमार तथा चोरो का भी उल्लेख है।

व्यय—व्यापार मे वस्तुओ के क्रय-विक्रय में उत्सव मनाने,[1] आभूषण बनवाने,[2] इमारतो के निर्माण करवाने,[3] दुर्गों की मरम्मत करवाने, भेंट दान, मन्दिर आवास हर्म्य सैन्यादि कर्मचारियो के वेतनादि में जुआ, वेश्यागमन, तथा अकोरा (घूस) जो रत्नसेन को छुडाने के लिए पहरेदारों को दिया गया है, इत्यादि मे सबसे अधिक खर्च सैन्यादि प्रबन्ध तथा दुर्ग निर्माण एव सुरक्षा मे हैं।[4] मार्गों में केवल समुद्रपार जाने की चर्चा है।

द्रव्य—द्रव्य, धन-सम्पत्ति सम्बधी दीनार, टका, घाट, मोती, मणि-माणिक्य, सोना, रूपा, पारस, लक्ष्मी, नवौनिधि, इत्यादि शब्द आए हैं जो अरथ के द्योतक जान पडते हैं जिनके लिए पात्रों द्वारा प्रयास एव लोभ तथा कृपणता भी चर्चित है। पूँजी के लिए साँठि शब्द आया है।

अर्थ सम्बन्धी लोक दृष्टि—अर्थोपार्जन एव उसके सम्यक विभाजन पर आलोच्यकाव्य से विशेष प्रकाश नही पडता है। दारिद, भिखारी, लोभी, रक निर्धनी, कृपण को हेय दृष्टि से देखा गया है। उन्हे बाजारों को अमूल्य वस्तुएँ नहीं मिल पाती हैं।

शरीर रचना

सरीर (शरीर) के अग, क्या, चोला, गाता, घट, देव, तन, पिंजरा तथा पिण्ड इत्यादि पर्यायों का प्रयोग जायसी ने किया है। शरीर हँस जीव के वासस्थल स्वरूप हैं। अग दो स्थलों पर शरीर के अर्थ मे है। पदमावत में काया बिना जीव के नि सार है। वह एक पूँजी भी है। आखिरी कलाम मे काया पोसाक पहनने के रूप मे है। प्राण और अस के वासस्थल स्वरूप घट है। अखरावट मे तन का निर्माण

---

(१) बसन्त खंड तथा ४३।११।१३ प (२) (२६ तथा २७ खंड) की पक्तियाँ (३) (चित्तौड़गढ़ तथा सिंहलगढ़) प (४) (३२।१२) प तथा (३४।२३) प और (४०।२२) प की सभी पक्तियाँ।

अकोरा रत्नसेन बन्धनमोक्ष खंड प ११क सबों के लिए चित्तौड गढ़ वर्णन खंड तथा सिंहलद्वीप वर्णन खंड द्रष्टव्य।

माता के रजःकण और पिता के वीर्यकण से माना गया है। इस तरह माता और पिता के कण से ही हिन्दू और तुरुक उत्पन्न हुए। जीव के बसेरे के रूप में पिंजर शब्द प्रयुक्त है। पद्मावत में पिण्ड को क्षार से तथा अखरावट में मिट्टी के लोंदे से कुम्हार के चाक पर निर्मित पात्र के रूप मे माना गया है। अखरावट में तो एक स्थल पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ही पिंड माना गया है। गुडिला और माडे शब्द शरीर के लिए ही आये हैं। शरीर में पाँच भूतों की कल्पना की गई है। बार (रन्ध्र) यह शरीर का वह फाटक है जिसमें से होकर मस्तिष्क में दोनों नाड़ियाँ प्रवेश करती हैं। पाँचवें विशुद्धि चक्र के बाद यह रन्ध्र आता है अग्रेजी में इसे मैगनम फोरेमिन कहते हैं। संस्कृत का यही ओज है। दसवंधा शब्द साम्प्रदायिकता मूलक है। नौ चक्र और दसवाँ गुप्त रन्ध्र जो कुण्डलिनी के मूलाधार चक्र से आरम्भ करके सुषुम्णा में होता हुआ ब्रह्म रन्ध्र तक गया है। इसे ही नौ इन्द्रियाँ और एक नाभि भी कहा जाता है। साँस और सुर की चर्चा है। निसाँस शब्द बिना साँस के लिए आया है। इन्द्री शब्द भी प्रयुक्त है।

शरीर की अवस्थायें :—गर्भ से बाहर आने पर शरीर की अवस्था, आइ, बालापन तरनि बएस, तरुनापा, जोवन, बिरिध का वर्णन हुआ है। आइ शब्द का प्रयोग जायसी और तुलसी का एक ही तरह का है। तरनि बएस मे जोग उचित नहीं है। जीवन को मदमत्त रूप मे देखा गया है। वृद्धावस्था में शरीर जर्जर हो जाता है। अवस्था का तात्पर्य कुछ स्थलों पर स्थिति विशेष से लिया गया है, जैसे—अवसान (होस-हवास), चेत-अचेत, अथजर, अरहर, आँधरि, औद-बौद, खीन, घुमरिहा, गहवर, चौधि टकटका टेकि, निआंधि, बकत, बिसम्भारा (बेसुध), बैकरारा, मतवारा, मुरछा तथा रुलि इत्यादि शब्दों के सहारे विभिन्न परिस्थितियों में मानव की चेतनता और अचेतनता का चित्रण किया गया है। घाव शब्द मात्र विरह की प्रगाढ़ता-स्वरूप ही प्रयुक्त है, साधारण जन-प्रचलित घाव-व्रण रूप में नहीं शरीर की रुग्णावस्था का भी वर्णन किया गया है, जिसमें रोगू, कुस्टि, मिरिगियावातू, सनिपातू, पीर, बिथा, कठा तथा हूक आदि हैं।

शरीर के अंग :—मुख—बदन, मुख और मुँह इसके पर्याय है। तत्कालीन समाज में बादशाहों के मुख[1] के नित्यप्रति दर्शन की चर्चा है। मानिनी नायिका मुख फेर कर अपना आक्रोश प्रगट करती है। चन्दवदन[2] ससिवदन, कवलमुख[3] उस काल में जनप्रिय थे।

---

(१) आंबद आत सयइ मुरा चाहा (१ । १६ । १)प नागमती मुरा फेरि रहेंउ (१५ । ६ । २) प (२) चन्दबदन और चन्द देहा (१२ । १ । १) प (३) कवल मुखसोहा (१ । ६ २) प

सिख—सिख, मुंड, सिर तथा सीस पर्याय मिले हैं। चित्तौर लौटते समय रत्नसेन को एक पाँच मुंह वाला राक्षस मिला। सिर नवाना अपने से बड़ो के प्रति सम्मान प्रगट करने का एक माध्यम था दृढ प्रेम पर बलि होने में सिर की शोभा थी। सीस पर कस्तूरी की तरह सुगन्धित केस उत्तम समझे जाते थे। देव मन्दिरों में प्रवेश करते समय सीस नवाने की प्रथा थी। सधवा के लिए सीस[५] उघारना अशुभ समझा जाता था समुद्र में बिछुडा हुआ रत्नसेन अपनी प्रेयसी पद्मावती को पाने के लिए सीस काटने की बात सोचता है।

मांग—माग बिना सेन्दुर के दिया की तरह, रात्रि मे दीपक को भाति मार्ग-द्रष्टा, स्वर्ण रेखा को तरह, बादलो में बिजली की तरह, रक्त मे सनी तलवार की तरह, नीले आकाश में सूर्य की किरणो के समान, गगा-यमुना मे सरस्वती की तरह, मोती की माला तथा बारह बानी सोने की तरह उल्लिखित है।

केस :—पतिरमण क्रिया मे माँग छूटने की विवेचना है। जटा, बारा खोपा, जूसरा, अलक, लट तथा बेनी आदि केस सम्बन्धी तात्पर्य परिलक्षित करने हेतु प्रयुक्त हुए हैं। प्रेमातिरेक में सिर पर जटा धारण करने से, 'जटवा बढाई जोगी होइ गइले बकरा' की कहावत चरितार्थ की गई। खोंपा (जडा) छूटने पर बालो की कालिमा से, तमाच्छादन की भावना आध्यात्मिक विचार धारा को प्रश्रय देती है। अलकें विषमरी हैं लट का उपमान चौगान का वल्ला तथा बेनी का नाग है। बाल की विशेषता उसके पतलेपन में है। केश शिर से पैर तक लम्बे तथा कस्तूरी की तरह सुगन्धित सर्वोत्कृष्ट समझे जाते थे। 'केस पकड कर मगवाना' तत्कालीन बादशाहों के प्रभुत्व का द्योतक है। अभिसार की अतिशयता एव वास्तविकता का चित्रण केसो के बिखराव से किया गया। सौतों की स्वभावजन्य ईर्ष्या 'केस ओनावो मे स्पष्ट की गई है।

मस्तक :—मस्तक के माँथ, लिलाट् और लिलारा पर्याय मिले हैं पद्मावती की सुषमा को देखकर के देवगण मा 'माय मु इधरे' स उसकी अनुपमता स्वीकार की गई है। पिता की आएसु 'सिर माथे लेना' श्रेष्ठ एव मान्य था। 'मु इ धरे लिलाट्' पराक्रम की स्वाकृति का द्योतक है।

कान—'कान' तथा 'स्त्रवन' शब्द प्रयुक्त है। "कान टूट जेहि अभरन का ले करब सो सोने लोगो में यह धारणा बलवती थी।"

नाक—"स्त्रवन की उपमा, "दो द्वीप", "सूर्य की चमक" तथा कचपची नक्षत्रों से उत्तम समझो जाती थी। 'नाक' के लिए 'नासिका' शब्द भी व्यवहृत है। 'तलवार की तरह बाकी' तथा 'सुगे के टोंट के समान' नासिका-आदर्श

---

(५) फलपों सास येगी निस्तरऊँ।

मानी जाती थी। 'अभराबट' में 'नासिका' को 'फुले सरोज' माना गया है। 'मदसी' नाइसी ने 'नाक' की दीप्ति पर विशेष जोर दिया गया है।

आँख—'आँखो, चख, दृगन, नेत्र, नैन, नयन, लोचन, लोयन, तथा संपुट आदि शब्द आँख के लिए प्रयुक्त हैं। 'नसमक्ष के लिए' हिए उघरी न आँखी' का प्रयोग हुआ है। कवि की धारणा है कि सिद्ध पलक नहिं लागै आँखी। अभिसार की चरमावस्था के परिपाक में आँखें गुलाल जैसी लाल ज्ञात होती हैं। खजन, मृग, मकरावात तथा मुँहजोर घोड़े की तरह नैन आदर्श माने जाते थे। स्थायी रूप मे, कौड़िया पक्षी की तरह एवं रेशमी वस्त्र स्वरूप भी नैन का प्रयोग किया गया है। अंजन लगाने पर ही नैन खजन सदृश होते हैं। पलक, पुतरी, बरूनी, भौंह, जोति, अंजन, कटाक्ष, काजल, आँसू, तथा नींद आदि भी आँख से सम्बन्धित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'प्रेम' की खुमारी मे पलक न मारना' उत्तम बताया गया है। बाण साध कर खड़ी दो सेनाओं के रूप मे बरौनियों को देखा गया है। जितने भी धनुषधारी हैं जैसे—राम, कृष्ण, शिव, इन्द्र तथा यम आदि को धनुषों से भौहों की उपमा देकर उनकी सर्वोत्तमता का वर्णन किया गया है। कटाक्ष जान लेने वाले हैं। चिन्ता में नींद नहीं आती। रस लेना आँखो का एक विशिष्ट कार्य है।

अधर—माणिक्य सदृश, सुरग, अमिअ रस भरे, बिम्बाफल सदृश, बन्धूक की तरह लाल तथा हीरे की तरह चमकने वाले अधर तत्कालीन समाज मे उत्कृष्ट माने जाते थे। रतिक्रीड़ा की स्वाभाविकता को 'अधर' अधर सों चाखन कीजे' से व्यक्त किया गया है।

दाँत—दंत और दसन दात के पर्याय मिले हैं। हीरे तथा विद्युत की तरह चमकते रहने वाले दांत सर्वोत्तम समझे जाते थे। बत्तीसी और मजीठी दांत के प्रसाधन स्वरूप व्यवहृत हैं। जीभ और रसना यही दो शब्द मिले हैं। रसमय अमृत वचनों से युक्त घातक और कोमल को मात करने वाली, वीणा और वंशी को चुनौती देने वाली, चारों वेद की ज्ञाता, अमरकोश, महाभारत, पिंगल, गीता सबमें सरस्वती की तरह, अर्थशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष से सबसे बढ़कर उसकी वाणी सुनकर श्रोता आहत होकर गिर पड़ता है ऐसी रसना पद्मावती के पास है।

कपोल—नारगी की तरह लाल एवं गोल कपोल, पराग एवं मरुये की टिकिया की तरह घुंघुची के मुँह की तरह तिल वाला कपोल, तिल अग्निबाण सदृश एवं उसी से 'ध्रुव' का उदय एवं अस्त भी निश्चित है। ऐसा कपोल आदर्श माना गया है।

मोंछ दाढ़ी—'जहाँ न भाड़ न मोंछ न दाढ़ी, इस वाक्य से गौरव द्योतित किया गया है। सिंघ के गहे की मोंछा एक दुःसाध्य कार्य समझा जाता था।

गींव—गीव गरे, गिम पर्याय हैं। क्रौचपखी, कज, नाल, मोरिनी, परेवा, लगाम खींचे गए घोड़ों की तरह, कुक्कुट के समान तथा मुक्तमाला से आवेष्टित गींवा सर्वोत्तम समझी जाती थी। 'अब जो फाँद परा गिय तब रोए का होय, से विवशता द्योतित की गई है। सिद्ध लोग प्राण की बिना परवाह किए 'खरग देखि के नावहिं गीवा।'

कठ—कोकिल बैन वाला कठ आदर्श माना जाता था। प्रेयसियों को 'कठ लाइ' करके भी मनाया जाता था। 'बचा, वाक्, बैना, सुर का भी सम्बन्ध कठ से है।' धज घोरैं सब करी सवारी, पद्मावती के अग-प्रत्यग का वर्णन किया गया है।

हिय—प्रेम की पीड़ा में 'हिय' पियर हो जाता है। कचन लड्डू स्वरूप कुच 'हिया थार' मे सजाए गए। 'हियँलाई' भी रति-क्रीड़ा की अवस्था है।

जिय—जिय के जीव, प्राण, तथा परान पर्याय व्यवहृत हैं। 'तन मन जीवन-जीव' का न्योछावर आदर्श माना जाता था। पद्मावति तू 'जीव पराना' से प्रेम की अनुपमता द्योतित होती है।

कुच—अस्तन, कुम्भस्थल तथा जीवन, कुच के पर्याय हैं। सोने के लड्डू सोने के कटोरे, सोने के बिम्ब फल, अमृत रस युक्त, केतकी पुष्प मे काटे में फसे भौंरे, अपनी तीक्ष्णता के कचुकी को फाड़ने वाले, निरकुश, किसी के हृदय से लगने हेतु हुलसने वाले, अग्निवाण, ऊँचे नीबू, नारंगी, दाडिम, द्राक्ष सदृश कुच तत्कालीन समाज में सर्वोत्कृष्ट समझे जाते थे। 'कुचन्ह' से तलवा सहलाने में प्रेम की अतिशयता दिखाई गई है। 'कुच' हुलसने से कसनी टूट जाती है। यह विवेचन स्वाभाविक है।

वक्षःस्थल—फुदन तथा मसिमुद्रा स्तन के अग्र भाग हेतु प्रयुक्त हैं। वायु तथा उर वक्षःस्थल हेतु रक्खे गए हैं।

कंध—कँध तथा काँधे शब्द भी व्यवहृत हैं। हाथ के लिए 'कर' शब्द भी प्रयुक्त है।

हाथ—'कर' जोरे विनती करने का एक शिष्टाचार था। आशीर्वाद मे दाहिना हाथ उठाने की प्रणाली थी।

बांह—बाह के भुजा, भुजदड तथा पहुँचा पर्याय हैं। पति द्वारा गही बाँह धनि सेजवा आनी' क रूप में रति क्रीड़ा का वर्णन किया गया है।

तारी—'स्वर्ण दण्डी तथा कदली स्तम्भ सदृश भुजा उत्तम समझी जाती थी। 'तारी मगाना'

हथौरी—समाधि की एक प्रक्रिया है। प्रातःकालीन सूर्य एव लाल कमल सदृश हथौरी आदर्श समझी जाती थी।

मूठी—सम्पूर्ण विश्व का प्राण पद्मावती की मूठी में बताकर कवि ने आध्यात्मिकता द्योतित की है। मूठी भर कर देना उचित समझा जाता था।

अजलि—अजलि और चुरू शब्द भी मिले हैं। अजलि में जल लेकर कन्या-दान देने की प्रथा थी।

अगुरी—रक्तिम तथा दीर्घ अगुरी श्रेष्ठ समझी जाती थी।

कलाई—कंगन पहनने की जगह कलाई परिरमण में टूट गई। 'गोदि' तथा 'कोरा' में किसी का बैठाना प्रेम का द्योतक है।

अन्त :—अंत, अन्तरपट, चित, बुधि, मति तथा मन शब्दों का प्रयोग हुआ है। "पुरुष न करहि नारि मति काँची" से स्त्री समुदाय की बुद्धि की अपरिपक्वता द्योतित की गई है।

नख :—नख-शिख खंड तथा राघव चैतन द्वारा वर्णित पद्मावती रूप चर्चा खड में नख सौन्दर्य की चर्चा सब अगों की तरह नहीं की गयी है। कवि केवल "वर्णत सिगार न जानेऊ, नख, सिख जैसे अभोग" कह कर मौन हो जाता है। स्त्री भेद खड में नख की चर्चा की गई है जिसका सम्बन्ध सम्भोग क्रीडा से होकर रह गया। अन्य अगों की भाँति नख का वर्णन स्वतन्त्र रूप से नहीं है। तत्कालीन समाज में "प्रवाल" से नख की उपमा प्रचलित थी।

रीरि :—रत्नसेन को समुद्र में पड़ी हुई महिरावण की हड्डियों के मध्य उसकी रीरि सुमेरु जैसी जान पड़ती है। सस्कृत में इसे "रीढ़क" भी कहा गया है। साधारणतः स्त्री के अग्र भाग का वर्णन ही प्रचलित है, पर जायसी ने मध्यकालीन शिल्पकला से "बैरिनि पीठ लीन्ह ओहि पाछे" की भावना को ग्रहण किया है।

पीठ :—ईश्वर की एकरूपता द्योतित करने में सबकी पीठि ओरि है माटी उत्सिंहासन है। अप्सराओं की पीठ उत्तम समझी जाती थी।

लक :—लंक का क्षीण होना, मुष्टि ग्राह्यता आदि गुण उत्तम समझे जाते थे। जायसी ने बर्रे[१], भृङ्गि तथा सिंह की तरह पतली कमर का वर्णन किया है। रोम रहित, शिराहीन, मटी, कान्ति सम्पन्न तथा शीतल जाँघे उत्तम मानी जाती हैं।

---

(१) हिन्दी साहित्य की भूमिका, स्त्री रूप वर्णन, डा॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी

जाँघ :—जायसी ने सुभर[1] तथा केले के खम्भे एवं एक दूसरे को स्पर्श करती हुई जाँघो का वर्णन किया है। वर्णित जाँघो से पुष्ट नितम्ब[2] उत्तम समझे जाते थे। पीढ़ा, प्रस्तर, पृथ्वी, पहाड़ आदि उपनाम नितम्बों के लिए व्यवहृत होते थे।

नाभि रोम :—मलयानिल से सुगन्धित तथा समुद्र भँवर सदृश[3] नाभि आदर्श की नाभि के ऊपर उठने वाली रोम राजि कवियो का प्रिय विषय रहा है। गोवर्धन[4] ने मृदुता श्यामता नाभिगामिता को वर्णनीय माना है। जायसी ने स्याम[5] भुअगिनि एव ऊर्ध्व गामिता मे केवल स्तन सामीप्य तक ही उत्तम बताया है।

कुरंगिनि खोजू :—डा० मनमोहन गौतम के अनुसार स्त्रियो के रोमावली होती ही नही। परन्तु जायसी ही नही बल्कि विद्यापति प्रभृति विद्वानों ने भी रोमावली का वर्णन किया है। डा० मनमोहन गौतम ने जायसी के गुह्याङ्क वर्णन को अश्लीलता की संज्ञा दी है। पर साहित्य मे तो गुह्य देश का विपुल तथा अश्वत्थ[6] के पत्ते सदृश होना उत्तम समझा जाता था। जायसी ने इसे हिरणी के खुर सदृश बताया है। इतना अवश्य है कि अन्य अगो की तरह इसके वर्णन की बहुलता नही है।

पेट :—पेट का कोई स्वतन्त्र वर्णन नही मिलता आँतो से हीन सुकुमार पेट उत्तम समझा जाता था। "दुखिया पेट लागि सब धावा" का साम्य "राज करन्ते राजा मरिगा ....आधा सेर पिसान ।।" से है

पैर, ठाठर, नस, पाँजर, नारी, चाम, त्वचा :—जायसी ने कोमल एव कमल सदृश पैर उत्तम बताया है। चरन, डग, पैग, पाय, इसके पर्याय हैं। ठाठर, नस, पाँजर, नारी, हाड आदि शब्दों का प्रयोग भी है। "हाड जराइ कीन्ह जसि काठा" मे कष्ट बताया गया है। इडा, पिंगल, सुखमना नाडियो का वर्णन सम्प्रदाय परक है। शरीर के चाम के लिए तचा-तुचा शब्द व्यवहृत हैं। "मासु तन सूखा" स विरह का दिग्दर्शन किया गया है। रकत, रुहिर और लोहू शब्द खून के लिए आए हैं। बल के पर्याय में बर तथा बूत, सती, सकती एवं जलाल हैं।

आदर्श शरीर—आदर्श शरीर मे, केस, कस्तूरी और नाग की तरह, यामिनि सदृश माँग, द्वितीया के चाँद से बढकर प्रकाशित ललाट, सभी धनुष धारियों के धनुष से बढ़कर धनुष सदृश भौ हैं, कमल को चुनौती देने वाले रतनारे नैन, बाण

---

(१) १ (१०।१८) प की सभी पंक्तियाँ (२) (१०।२०।२) प (३) (१०।२०)प की पंक्तियाँ (४) (१०।१६) प की सभी पंक्तियाँ (५) हजारी प्रसाद द्विवेदी की हिन्दी सा० भू०, (६) (१०।१६।३) प स्याम भुअगिनि रोमावली (७) (७) ह० प्र० द्विवेदी की हि० सा० की भूमिका, पृ० २७६

सम्पाने हुए दो विपक्षी सेनानियों के सदृश बरौनियाँ, खरग तथा कीट को मात करने वाली नासिका अमिय भुरगरम भरे अधर, चौक बैठे जनु हीरा सदृश दाँत चात्रिक तथा कोकिल को लज्जित करने वाली रसमिक्त रसना, नारगी सदृश तथा तिल सम्पन्न गाल, दो दीपक सदृश आभूषण सम्पन्न कान क्रौंच और करोत सदृश ग्रीवा सोने के लड्डू तथा सोने के कटोर सदृश कुच' पत्ते पर चन्दन व लेप सदृश पेट स्याम भुअगिनि सदृश रोमावली, अथारा के सदृश पीठ सिंह तथा बर्रे सदृश पतली कमर समुद्र भवर सदृश नाभि, कवल सदृश लाल एव कोमल पैर, स्वणदण्डी सदृश भुजा आवश्यक समझे जाते थे। केवल स्त्री शरीर के आदर्श अगों का ही वर्णन किया गया है।

वस्त्राभूषण

अभरन—सिन्धु घाटी की सभ्यता में ही हमे आभूषणो के चिह्न मिलने लगते हैं। चित्रों में स्त्रियों की लगोटी करधनी से बँधी दिखाई गई है। शिरोभूषण में पगडी के साथ फीते से बाल बाँधन की मूर्तियाँ मिली है। जायसी ने अपने काव्य में अभरन के बारह स्थलों की चर्चा 'बारह अभरन करै सो साजू' से की है। 'सोलह[१] सिंगार और बारह अभरन एक मुहावरा था।' मानस[२] मे भी ऐसी चर्चा है दान, कन्यादान, उपहार आदि आभूषणों को देने की प्रथा थी। सोने, चाँदी, ताँबे, मोती, पोती, नग, पन्न, मूंगा, हीरा, मिलवर आदि धातुएँ तथा हड्डियों से इनका निर्माण होता था। नवगिरिही एक विशेष आभूषण है।

शिरोभूषण—शिरोभूषण में, आदिकालीन पगडी और उष्णीष से विकसित होकर प्रस्तुत काल में छत्र, मुदुक, चवर, मोर तक पहुँचे। मुकुट और छत्र सम्राटों के शिर की शोभा वर्धक थे। विवाहोत्सव में 'मौर मुदुक सिर देहूँ' की चर्चा जायसी ने की है। बंदन तथा तिलक टीका माथ के शोभा वर्धक थे। सैनिकों का शिरोभूषण 'खोलि, (टोप) था।

कान के आभूषण—कुण्डल, झुम्मी[३], खूटी, खुटिला, मुद्रा, और वारी आदि कान के आभूषण विवेच्य काव्य मे वर्णित हैं। कुडल स्त्री-पुरुष दोनों के कान का आभूषण है। जोगी भी कुण्डल पहनते थे। झुम्मी कुकुरमुत्ते के आकार का कान के छेद में पहना जाने वाल आभूषण है। खूटी कान में पहनने की कील अथवा गोखुरू है। खुटिला इसमे बडा होना है। मुद्रा जोगियो का कर्ण आभूषण है। वारी सस्कृत वल्ली वाली है।

(१) नव सप्त साजे सुन्दर, सब मत्तकुंजरगामिनी (बालकाण्ड-३२२।१०)
(२) नव विरही की टिप्पणी टीका में द्रष्टव्य। (३) (१२।७) मह० कुण्डल की साम्प्रदायिक विवेचना संस्करण की टीका, टिप्पणी में द्रष्टव्य, पृ० ६०६

नासिका आभरण—ग्यारहवीं सदी से पूर्व भारतीय साहित्य मे नासिका आभूषण की चर्चा नही है और शिल्प तथा चित्रो मे भी दृष्टिगोचर नहीं होता। विल्हण कृत विक्रमाक देव चरित मे सर्वप्रथम 'नासमुक्ताफल'[१] का जिक्र है। धीरे-धीरे इसकी झलक मिलने लगती है। जायसी मे नाक के नाथ, बेसरि करनफूल (कनक फूल) तीन आभूषणो का प्रचलन ज्ञात होता है। 'नाथ' का पठान काल से पूर्व उल्लेख नहीं मिलता। भारतीय साहित्य मे भी इसका अंकन नही है। जायसी के 'नाथ' शब्द का प्रयोग 'नथ'[२] के प्रचलन के आरम्भ काल का ही है। विवेच्य काल से पूर्व बेसरि की भी चर्चा भारतीय साहित्य एव सस्कृति में नहीं मिलती। टीकाकार ने करनफूल को कनकफूल माना है।

कंठाभरण—हार, सिकरी, कँठसिरी, हमुली तथा टोडर आदि कठाभरण है। राजा, रानी, दास, दासी, देवी और देवता आदि सबके लिए व्यवहृत 'हार' एक सामान्य आभूषण था। उच्च वर्ग मे मोती (मुकुताहलमाला) की माला का प्रचलन था। सिकरी भी गले का आभूषण है। कँठसिरी गले से लगा हुआ अभरन है। संस्कृत की असलिका ही हसुली है। 'टोडर' सामने छाती पर लम्बा लटकने वाला कई लडों का बडा हार है। इसे सस्कृत में दोपहार कहते है। इसका प्रयोग 'कादम्बरी' मे भी है। नेषध के टीकाकार ने इसे दुडुमक' का पर्याय माना है।

हाथ का आभूषण—कगन जो हाथ का आभूषण है इसे रमणियाँ एव बैरागी दोनो पहनते हैं। हथोडा[३] हाथ का कडा है। 'टाड' हाथ का मडन है। रतिक्रीडा में वलय (शीशे की चूडी) का चूर होना वांछनीय था। बाजू को बाहू तथा भुजबन्द भी कहा जाता है। 'सुलेमा केरि अँगूठी' कई रत्नो से बनी हुई और ईश्वर महिमा के वाचक मत्रो से उत्कीर्ण जादू भरी अँगूठी थी जिनसे जिन उसके वश में रहते थे। भाव यह कि नगो से निर्मित अँगूठी के आधार पर कुछ चमत्कारिक बात भी हुआ करती थी। महरी बाइसी मे इसके लिए 'मुंदरी' शब्द आया है। मानस मे भी 'मुद्रिका' शब्द ही अँगूठी के लिए प्रयुक्त है। चक्र कुश से निर्मित अँगूठी के आकार का जोगियों का आभूषण है इसे पावित्री भी कहते हैं।

कटि के मंडन—कटि मडन करधनी है। इसका दिग्दर्शन सिन्धुघाटी में ही हो जाता है। उस समय स्त्रियाँ करधनी से बधी लगोटी पहनती थी। कटि मड के

(१) पृ० रा० सा० का० सा० अ० डा० पाडेय, पृ० १५८ (२) पृ० १६ पर दी गई टीका की टिप्पणी द्रष्टव्य। (३) (२।१३।३) प हथौड़ा का निर्माण चांदी की गुल्ली ढालकर किया जाता है। सं० हस्तपाटक, हत्थ पाटअ हथवड़ा हथौड़ा।

पर्याय में कटिणवे,घा'द भी प्रचलित था। घंटि और क्षुद्रघंटि भी कटि के आभूषण थे। मेखला जोगियों की करधनी थी।

पैर के आभूषण—अनवट बिछिया, पायल तथा चूरा पैर के आभूषणस्वरूप व्यवहृत हैं। सम्भवतः ये सब आभूषण विवाह के बाद धारण किए जाते हैं। चूरा हाथ तथा पैर दोनों का आभूषण है।

वस्त्र—प्रागैतिहासिक युग मे ज्ञात होता है कि लोग प्रायः शुरू में नग्न ही रहा करते थे। वेश-भूषा की पहली सामग्री जिसमे धोती चादर, लंगोटी और पगड़ी[1] है, हमें सिन्धु-घाटी (३५०० ई० पू० से १५०० ई० पू०) में मिलती है। जायसी ने कापर-कागा चीर तथा चिरकुट[2] शब्दो को वस्त्र के पर्यायस्वरूप रक्खा है। पहिराव और भेष शब्द भी प्रयुक्त है।

चीर :—चीर, साड़ी, ओढ़नी और वस्त्र तीन अर्थों में व्यवहृत है। सोलहवीं शती में वस्त्रों की बारीकी पर विशेष ध्यान दिया जाता था—अबेरवाँ (बहता पानी) शबनम (रात की ओस) इस तरह के महीन वस्त्रों की सूची मे मकरी के तार ताहि कर चीरू' भी है। आइन की सूची मे चीर संज्ञक वस्त्र का उल्लेख सोने के काम वाले कपड़ों स है। जायसी ने भी 'मोति लागि औ झापे सोने' लिखा है। सिंघल के लाल चीरों को जो बहुत बढ़िया छपाई के होते थे 'सुरंग चीर' कहे जाते थे। चदन के रंग वाले वस्त्र की संज्ञा 'चन्दन चीर' थी। रेशमी वस्त्र जो नेगस्वरूप शादी में दिया जाता था उसे 'चिकवा चीर' (चीकट नामक रेशमी वस्त्र) कहते थे। जायसी द्वारा उल्लिखित 'मेघौना' वस्त्र को वर्णरत्नाकर में मेघ वर्ण नामक वस्त्र कहा गया है। विवेच्य काव्य में कुसुम्भी[3] चीर की चर्चा भी आई है।

सारी :—६४२-३२० ई० पू० से साड़ी का पता चलता है। एड़ी तक साड़ी पहनने वाली मूर्तियां मिली हैं। यह स्त्रियों की पोशाक थी। ई० पू० दूसरी शती तक सकच्छ साड़ी पहनने की प्रथा हो गई थी। जायसी ने छपी हुई सारी, गुजरात, बंगाल की राजधानी पडुआ की छपी साड़ी, झिलमिल-मलमल की तरह मुलायम कपड़ा बांसपौर ढाँके की महीन तजेब जिसका थान बांसकी पोंगली में आ जाता था, पैमचा नामक रेशमी वस्त्र, जिस पर कमल के फूल्ले छपे रहते थे, डोरिया नामक सूती कपड़ा बीदरी वस्त्र जो विलायत से आते थे आदि की साड़ियो तथा परिधानों का वर्णन, और आँख उठाकर देखा नहीं जा सकता था, किया है। सारी उल्लेख चित्ररेखा में भी है।

---

(१) प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, डा०.मोतीचन्द्र। (२) (२६।२।७) प, अजधी का फटा पुराना वस्त्र। (३) (२७। ३६) प की सभी पंक्तियां।

धोती :—धोती का उल्लेख सिन्धुघाटी से ही मिलने लगता है और आज तक वह किसी न किसी रूप में विद्यमान भी है। जायसी ने कनक पत्र की धोती का उल्लेख किया है। सौंट शब्द धोती का पर्याय है। धोती ब्राह्मण की पोशाक है।

चोला, चोली, पटौरा, फरिया, तथा फुंदिया—

तारामण्डर को वर्ण रत्नाकर मे तारामडल कहा गया है। जायसी ने इसका प्रयोग तारा-बूटी की छपाई वाले वस्त्र के लहगे के रूप मे किया है। अतीत का 'घंघरा' ही जायसी द्वारा प्रयुक्त चोला है। चोली का स्पष्ट ज्ञान गुप्त युग से होता है उस समय चोली के साथ छोटी चुनरी भी पहनी जाती थी। जायसी ने चन्दनी वस्त्र से बनी चोली का उल्लेख विवाह मे वरपक्ष की ओर से कन्या के लिए भेजा जाने वाला रेशमी लहगा 'पहरि पटौरा' कहा जाता था। यह अवधी का चालू शब्द है। जैन और राजस्थानी चित्रों में ऐसे लहगे भी मिले हैं जो सामने की ओर सिले नहीं हैं इसे ही 'फारी' कहते हैं। जायसी द्वारा ही यह शब्द नही प्रयुक्त है बल्कि सूर सागर मे भी इसका उल्लेख है। इसे प्रायः लडकियाँ अथवा नई उम्र की रमणियाँ ही पहनती थी। इसका अर्थ ओढनी भी माना गया है। वैदिक साहित्य मे लगोटी अथवा तहमतनुमा वस्त्र को 'नीवि' कहा गया है, परन्तु आज कल इसका अर्थ पेटीकोट में पडने वाली डोरी अथवा इजारबन्द तक ही सीमित हो गया है। फुदियाँ 'लगी हुई नीवी बन्ध का उल्लेख भी जायसी ने किया है।

कंचुक—कचुक के लिए वैदिक साहित्य मे 'प्रतिधि' (स्तनपट्ट) और 'अत्क' (पूरे शरीर का लम्बा कचुक) का वर्णन मिलता है। यह कभी-कभी केवल स्त्रियो का तथा कभी-कभी सैनिको एवं सम्राटो का पहनावा भी रहा है। कनिष्क का कचुक उसकी मूर्ति मे घुटने तक है। धीरे-धीरे यह वस्त्र केवल स्त्रियों का तथा सम्पूर्ण शरीर नहीं वरन् मात्र 'स्तन' का वस्त्र ही बन कर रह गया है। वर्तमान काल मे इसे 'बाडी' कहा जाता है। जायसी ने भी कचुक का केवल कुच-वस्त्र स्वरूप ही व्यवहृत किया है जिससे ज्ञात होता है कि इनके समय तक इसकी परिधि केवल कुचग्रह तक ही रह गई थी।

आंचर :—स्त्रियों के पहनावे में आचर का भी अस्तित्व है। 'अचल ढारना' नवोढा की कामुकता का द्योतक है। कुचो को कसने मे सहायक वस्त्रस्वरूप कसनी[१] है। इसके लिए पृथ्वीचन्द चरित मे 'ताक सीनिया' शब्द आया है। यही स्त्री समाज का पहनावा है। स्त्रियो के सर्वोत्तम आभूषण के रूप में लज्जा' को माना जाता है।

---

(१), (४० । ६) प, (२६ । ६ । ४) प इसे चोली] अथवा आंगी भी कहा जाता है—चोली बन्द टूटे अर्थात् कसनी बन्द टूटे।

घूंघट :—'घूंघट' से ही लज्जाशीलता आंकी जाती है। प्रायः यह नवेलियों ही का सूचक है।

चादर :—१५०० ई० पू० से लेकर 'चादर' का आज तक अस्तित्व विद्यमान है। ऊनी-सूती-रेशमी तथा मिश्रित एवं स्त्री-पुरुष के भेद वाले भी चादर होते हैं अखरावट में 'चादर' के ओट का वर्णन है।

कंथा :—भिक्षुओं अथवा योगियों के वस्त्रों की लम्बी आख्या जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य एवं वेदों में मिलती है। वल्कल, कुश चीर, कथा, चिरकुट उनमें महत्वपूर्ण है।

दगल :—दगल मोटे वस्त्र का बना हुआ रुईदार 'अंगरखा' है। आइने अकबरी में इसे गदर कहा है। चित्रावली में इसके लिए 'लाल दगल' शब्द आया है।

खीरोदक—संस्कृत के क्षीरोदक ही से खीरोदक की उत्पत्ति जान पड़ती है।

नेत-पाट :—इसका वर्णन हर्ष चरित एवं वर्णरत्नाकर में भी है। नेत और पाट रेशमी वस्त्र हैं। राज्यश्री के विवाह में 'नेत' (एक रेशमी वस्त्र) का वर्णन है। जायसी ने भी इसकी इसी अर्थ मे चर्चा की है। पाट-पाट नामक रेशमी वस्त्र में 'झोपें' झूलने का उल्लेख जायसी ने किया है।

जराऊ :—वैदिक साहित्य से ही वस्त्रों पर की गई कारचोबी का पता चलने लगता है। जायसी का 'जराऊ और 'कनकपत्र' इसी अर्थ की ओर संकेत करते हैं।

फेंट :—फेंट अवधी का चालू शब्द है। इसे टेंट अथवा फांड भी कहा जाता है। पैसे को खोंसने की जगह के रूप में इस शब्द का प्रयोग जायसी ने किया है।

पैरी पांवरि :—६४२-३२० ई० पू० मे जूते के पहनने का प्रचलन था। बौद्ध भिक्षु उपदेश सुनते समय जूते चप्पल नहीं पहन सकते थे। जायसी ने पदत्रान के अर्थ में 'पैरी और पाँवरि'[1] अवधी के प्रचलित दो शब्दों का प्रयोग किया है। विवाह में पादुका, जो जोगी का पदत्रान है, को उतार कर पैरी (जूता, पनही) पहनने का उल्लेख है।

शरीर प्रसाधन :—सिंगार[2] का पहला साधन दरपन है। केवरा, चतुरसम, चोवा, मैना, बुक्का, हरदी, चन्दन, अंजन, ईगुर, सेंदुर, मसि, कारिख, तेल, फुलाएल मेंहदी, केसरि, कपूर, कस्तूरी, कुहकुह, रंग, मेढ़ आदि का विवेच्य काल में शृङ्गारिक एवं सुगन्धित पदार्थ स्वरूप प्रयोग हुआ है। चतुरसम का प्रयोग जायसी ने दो अर्थो-

(१) (२६ । २ । ८) प पांवरिहनहु छत्रसिरतानहु। (२) (८ । १ । ३) प के सिंगार दरपन कर लीन्हा।

पूर्व के वर्णरत्नाकर में चतुःसम के रूप मे हुआ है। वर्णरत्नाकर से भी दो शताब्दी पहले हेमचन्द्र ने इसका उल्लेख किया है। राजशेखर जो इससे भी पूर्व हैं उन्होंने भी इसको व्यवहृत किया है। 'वीथी खोची चतुरसम चौके चारु पुराइ' तुलसी से भी प्राप्त है। चन्दन और[२] चौवे के लेप विलासिता के प्रतीक थे। 'बुक्का'[३] का आविष्कार यादवराज सिंघण ने किया था। यह अभ्रक का चूर्ण है। 'बसन्त खंड मे होलीं खेलने के प्रसंग में व्यवहृत है। 'हरदि उतार चढाइव रगू' का पद्मावती के सिंगार में वर्णन हुआ है। ईंगुर[४] तथा सेंदुर सुहाग के चिन्ह माने जाते थे। आरिखतेल मुँह की सफाई करने के पदार्थ स्वरूप प्रयुक्त हैं। 'जानहुँ मेंहदी रची' अच्छा समझा जाता था। कपूर के नौ प्रकारों मे चीनिया और भीवसेन की चर्चा की गई है। अगर कस्तूर घेना तथा कपूर से 'मन्दिर सुवास रहे भरपूरी' का उल्लेख है। शरीर की शुद्धि के लिए मजन भी आवश्यक था।

पद्मावती सोलह सिंगार तथा बारह अभरन धारण करती है—(१) शौच, (२) उबटन, (३) स्नान, (४) केशबन्धन, (५) अगराग, (६) अजन, (७) जावक (८) दंतरजन, (९) ताम्बूल, (१०) वसन, (११) भूषण, (१२) सुगन्ध, (१३) पुष्पहार, (१४) कुंकुम, (१५) भालतिलक, (१६) चिबुक विन्दु यही सोलह सिंगार ही जायसी ने इंगित किए हैं।

उपसंहार :—इस काल मे शरीर की उत्तमता नख से सिख 'सर्वांग सुन्दर होने में है। तन, मुख, हाथ, अनुपमेय हों, अगुर, हथोरी, लाल हो, कुच अधर तथा जघो मे उभाड लालिमा तथा भारीपन हो, कमर पतली, नैन बाके, भौह धनुष सदृश, दाँत चमकीले तथा पंक्ति पद्ध हो इसी में सौन्दर्य-प्रतिष्ठित था। वीर को अपनी मोछो पर गर्व था। सिर नवाना प्रताप का सूचक था। सिर झुका कर प्रणाम करना वांछनीय था। अगों की मोड मुडक टूटना फूटना रति केलि मे उल्लेखनीय है। शरीर प्रसाधन स्वरूप मजन, अजन, तेल, कारिख ईंगुर, सेंदुर, मेहदी, रग आदि सुगन्धित एवं सृङ्गारिक पदार्थ आये हैं। चीर चदनौटा, मेघौना, दीपक, सारी, कचुकी, चोला चोली, परोटा, आचर, घूंघट, नीवी, फुंदिया, चादर आदि स्त्रियो के वस्त्र तथा धोती और कथा ब्राह्मण एवं जोगी के वस्त्र हैं। आभूषणो मे छत्र, मुकुट, चवर, कगना, अँगूठी, बाहूँ, वलय, टाड, अनवट, बिछिया, पायल, चूरा, कंठसिरी, हार, खटि, मेखल, कुन्डल, मुद्रा, करनफूल, नथ, वेसरि आदि का वर्णन हुआ है।

(१) चन्दन अगर, कस्तूरी, केसरि से निर्मित सुगन्धित। टिप्पणी टीका में द्रष्टव्य (२) का मूलहु एहिं चन्दन चोवा। (१२। ५। ३) प (३) सिन्दुर बुक्का होइ धमारी (२०। ७। ६) प (४) साजि मांगि पुनि सेन्दूरसारा (२७। ६। २) प

कंचुक, धोती, सारी, चीर, चादर, कथा, पैरी, पावरि का उल्लेख हमे जायसी के पूर्व भी मिलता है। नाथ बेसरि जायसी काल की देन है। करधनी पूर्व से ही व्यवहृत हो रही थी। हड़ावरि, कापरि रूड; माल शिव का वेष था।

खान-पान तथा सुगन्धित पदार्थ

विवेच्य काल को, जायसी द्वारा भोजन सम्बन्धी एक लम्बी आख्या प्रस्तुत की गई है, जिसमे अनेक युक्तियों से बनाए हुए व्यजनो, मिठाइयो तथा तरकारियों की सूची है। 'यह भद्दी परम्परा जायसी के पहले से चली आ रही थी। सूरदास जी ने भी इसका अनुसरण किया है।'[1] सिंहलगढ़ मे बारातियों के स्वागतार्थ जेवनार में केवल शाकाहारी भोजन की चर्चा है तथा रत्नसेन द्वारा अलाउद्दीन के लिए तैयार कराए गए भोजन मे तत्कालीन रसोईघर की सर्वांगपूर्ण विवेचना की गई है। कवि द्वारा वर्णित रसोईघर की विशेषता से शाकाहारी तथा मांसाहारी का वर्गभेद नहीं ज्ञात होता, परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि बारात के प्रसङ्ग में चूंकि केवल हिन्दू थे अतः मांस की चर्चा ही नहीं की गई जिससे आभास मिलता है कि तत्कालीन समाज में हिन्दू मांसभक्षी नही होते थे। दूसरी तरह अलाउद्दीन जो कि मुसलमान है उसके हेतु तैयार होने वाली भोजन सामग्री की रसोई में अनेक तरह के मांस रींधे गए जिससे मुसलमानों की मास प्रियता लक्षित होती है। जायसी द्वारा जेवनार[2] के लिए आहार[3], खान[4] तथा चारा[5] शब्द व्यवहृत है। जनप्रसिद्ध बावन प्रकार[6] के जेवनारों की चर्चा भी जायसी ने की है परन्तु उनकी सूची अज्ञात है। इसी तरह लोकप्रचलित सहस सवाद[7] सत्तर सवाद[8] का उल्लेख भी है पर वे कौन-कौन हैं उनके विषय मे कवि मौन है। कौर[9] शब्द ग्रास के पर्याय स्वरूप है।

अन्न—अन्न[10] का आहार मे सर्वोत्कृष्ट स्थान है। तपः साधना में अन्न त्याग की चर्चा है। गेहूँ का जिक्र 'देखत गोहूँ कर हिय फाटा' जैसे आध्यात्मिक अर्थ में की गई है गेहूँ के आटे से सोहारा, पूरी, लुचुई बनाई गई है। चावल[11] का भी

(१) जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ८७, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (२) होइ लाग जेवनहार सुसारा (२६।६।१) प (३) (४८।१) चित्ररेखा, लोर आहार (१०।१६।२) प (४) ताकरइहइ सौं ग्याना ११५।६ प (५) दीन्ह लुहुँ चारा ५।१।७ प (६) पुनि बावन परकारणे आए ।२६।१०।४ प (७) सहस सवाद पाव जो खाई ४४।३।५ प (८) (४७।४) आ० क० (९। जहाँ कवल तहँ होय न खांटे ४५।१२।४ प (१०) कीन्हेसि अन्न भुगुति :तेहि पाई ।१।३।१ प (११) सीझहिं चाउर बरनि न जाहीं ।४४।३।१ प

विशद व्याख्या है । तातभात,[१] भालर, भाड, लुचुई, पूरी, सोहारी, खंडारा, खडोई, सधान, मोरडा, जाउरि, पछियाउरि, दूध, दही इत्यादि बारात मे परसे गए तथा अलाउद्दीन हेतु तैयार होने वाले जेवनार की रसोई में 'छागर (बकरा), मेंढा, हरिन रोभ, लगुना, चीतर, गौन, भाक, खरगोश, तीतर, बटेर, लवा, सारस, कुज, मोर, कबूतर, पाण्डुक, खेहा, गुडरू, उसरवगेरी, हारिल, चरज, वनमुर्गी, जलमुर्गी, चकवा-चकवी, केवा, पिदे, नकटा, लेदा, सोन, सिलारें, और पढिन, रोहू, सेवा, सिलथ, टेंगनी, मोय, सिगी, मोगरी, नरिया, भोथ, बाद, बागुर चरखी चेल्हवा और पर्यासी आदि पक्षी-जानवर तथा मछलिया पकडकर मगाई गई । इनके द्वारा मिश्रित भोजन का निर्माण विधि जायसी ने दी है ।[२]

गेहूँ तब पीसे जब पहिलेहि धोए' । मक्खन से भी अधिक मुलायम हाथ मे चूर हो जाने वाली .पूरिया जो मुंह मे डालते ही गल जाती थी बनी । लुचुई पूरी तथा सोहारी से धी चूने की चर्चा जायसी ने की है । उनकी प्रशंसा मे जेंवत नाहि[३] अघाइ कोई हिय बरुजाइ सिरात' ऐसी उक्ति जायसी ने की है ।

सुगध युक्त अनेको प्रकार के सीझहिं चाउर' । राजभोग रानी काजर *झिनवा रडुवा दाउदखानी कपूरकान्त लेंजुरि रितुसारी मधुकर ढिहुला जीरासारी* घृतकादो कुवरविलास रामरास सगुनी बेगरी पढिनी गडइन जडहन बडहन ससार-तिलक खडचिला राजह स ह सामौटी रूपमंजरी केतकी तथा बकौरी आदि चावलों का नाम देकर जायसी ने बारह सहस बरन अस' कह कर चावलो की अनेकता द्योतित की है । इनको रत्नसेन ने अलाउद्दीन के स्वागतार्थ बनवाना ।[४] चावलों की विशेष जानकारी के लिए टिप्पणी द्रष्टव्य[५] है । कटवा वटवाँ मे अनेक सुगन्धित पदार्थ मिलाकर उन्हे घी से बघारा गया । उनमे ऊमर से केसरि का छिडकाव भी हुआ । सेधा नमक कदमूल की गाँठें काटकर माँस की हड्डियों में छोडी गई । सोवाँ सौफ धनिया का छिडकाव हुआ । बडे-बडे सरागो से छागर भून कर रक्खे गए जायसी की धारणा है कि-जो अस जेंवन जेवें उठे सिघ असगू जि ।[६]

मास के भूजि समोसा घिय मह काढे तथा लौंग मिर्च मिलाकर भूना गया । मास पीस कर आम तथा माटा में भर कर तैयार करने की विधि का उल्लेख भी है । नारगी अनार तुरंज जभीरा तरबूज बालमखीरा कटहल बडहल नारियल अगूर खजूर छोहारे आदि फलों मे भी मास का मिश्रण कर सुस्वाद भोजन तैयार

(१) २६।१।११ प की सभी पक्तियां । (२) (४४। १।२) प की पक्तियां । (३) (४।४।३) प की सभी पक्तियां (४) (४४।४) प की सभी पक्तियां ।
(५) पृ० ७१६ की टीका टिप्पणी द्रष्टव्य (६) (४४।५) की सभी पक्तियां

किया गया फिर उन्हें सिरके में रखने का वर्णन है। जायसी ने कबाब की प्रशस्ति में कहा है कि वह जहाँ बने धनि सो रसोई। नहीं से मछली धोने की चर्चा है; कडुवेतेल में धी धनियाँ मिर्च आदि से उन्हें छोंका गया मछलियों के अंडे तले गए। मछलियों का मर्दा भी तैयार किया गया। इस तरह के मासयुक्त भोजन की प्रशस्ति में जायसी की उक्ति :—

थूड़ खाइ तो होई नव ओवर सौ मेहरी ले रूड[1] उल्लिखित है।

कुम्हड़ा के फारी लोवा परवती रेता चुक्क लाइ के रीबे माटा अरुई में रेहन बाँटा तोरई चिचिडा डिडमी परवर कुदरू करेला आदि सब्जियों की विधिवत तैयारी हुई। करेले को कडुई काटि के आदी और खटाई के सामञ्जस्य से बनाने का उल्लेख जायसी ने किया है।

बरा मुगौछी मुगौरी गुलरी इत्यादि भी घी के कराहों में बेना सोंठ डालकर खिरसा बनाया गया। कड़ी ठुमकौरी रिकवह आदि भी बनाए गये। लौनि ओगरी मिश्रित लहरी तैयार हुई। पाकानेठा गुलम्बा तथा अमचुर आदि भी व्यवहृत हैं। दूध दहिउ महिउ का जिक्र भी है। घुम्बक की कहाही में खोवा औटाने की विधि सवाद बाँधने के लिए जान पड़ती है। मोती लड्डू मोतीचूर मोरंडा (देना) मरकुरी पापर आउरि पहियाउरि से युक्त सीझा सब जेवनार के पश्चात् कवि पानी के महत्व पर विशेष बल देता है—जितने प्रकार की रसोई है सब भई अब पानी सों मानी। पानी हो मूल है। पानी के कई विशेषणों को प्रयुक्त किया गया है। दारू सुरा शराब एवं मद की चर्चा भी है।

सोने की पत्तलों माणिक्य से जड़ी थालियों रत्न जटित कटोरियो हीर लगे लोटो की चर्चा भी जेवनार के प्रसंग में हैं। भा जेंवनार फिरा खड़वानी अर्थात् भोजनोपरान्त शर्बत घुमाया गया तथा कुहुँ-कुहुँ रंग का अरगजा सब को दिया गया। उसके बाद पान बाँटने का उल्लेख और तब लाग बियाह चार सब होई।[2] सम्भवतः तत्कालीन समाज में भी भोजनोपरान्त ही विवाह करने की प्रथा का प्रचलन था।

उपसंहार—जायसी ने अपने समय के प्रचलित बावन प्रकार के भोजन जो सहस सवाद से मिश्रित थे उनकी चर्चा की है परन्तु बावन प्रकार तथा सहस सवाद की तालिका का उल्लेख नहीं हैं—सम्भवतः ऐसी धारणा जेवनार के विषय में जन प्रचलित थी। कवि ने उनकी निर्माण विधि तथा कवि ने कब किसे परसना चाहिए

(१) (४४।६।७) प की सभी पंक्तियां (२) (४४।८) प की सभी पंक्तियां।
(३) (२६।६) प की सभी पंक्तियां

इसका भी उल्लेख किया है। बारह तरह के मसाले तीन मेवे पाच तरह की चटनी और अचार चार तरह क मिठाइयाँ ग्यारह तरह के साग की चर्चा[1] की है। नशीली वस्तुओ मे दारू मोहरा शराब सुरा तथा मद की[2] गणना है। रत्नसेन की बारात के प्रसङ्ग में मास का जिक्र नही है परन्तु अलाउद्दीन के सन्दर्भ मे तैयार होने वाली भोजन सामग्री मे मास का ही साम्राज्य दिखाई पडता है जिससे ज्ञात होता है कि शायद मास सर्व-सामान्य का प्रिय भोजन नही था, यदि होता तो बारातियों को भी खाने के लिए परसा जाता। डा० गौतम के अनुसार सूफी मान्साहार के पक्षपाती नही होते। जायसी ने भी इसी को प्रश्रय दिया है।

क्रीड़ा-विनोद

क्रीड़ा :—क्रीडा के पर्याय स्वरूप जायसी की रचनाओ मे किरीडा, किरीरा, कुररें, केलि, कोड, कौकुत, खेल, दुहेला, छद, रग आदि शब्द व्यवहृत हैं। सतरज पासा, हिंडोर तथा चौगान का उल्लेख कवि ने किया है। पैंत, फील, बुन्द, पयादें, घोरा दे फरजी, मोहरा, रूख, दुकावा, चौदत आदि शब्दो से सतरंज खेल की एक विस्तृत व्याख्या की गई है। पासा खेलने की, सारि, कच्चे बारह, पक्केबारह, आठ-अठारह, सोलह-सतरह सतएढरें, ढारू ग्यारह, दुवा, नवनेह, दसो जाउँ, चौपर, तिरहेल, तिया आदि शब्दों के द्वारा विवेचना की है। पासा का खेल दो तरह का होता है सादा-चार व्यक्ति के खेलने वाला तथा रगबाजी जिसमें दो लोग खेलने वाले होते हैं—प्राय इसमे पति-पत्नी ही खेलते हैं। जायसी ने रगबाजी वाले खेल की चर्चा ही की हैं। सारि को गोट तथा सार (तत्व) के रूप में चर्चित किया गया है। सतए ढरें' चौपड मे अशुम माना जाता है - 'सत्ता सार न ऊपजे—वेश्या होय न राड' यह कहावत भी इसके लिए व्यक्त हैं परन्तु योगसाधना मे सत की निर्बलता और योग साधना मे काम केलि की सात (वृक्षारूढ़, लतावेष्टित, जघनोपरिगूढ़, तिलतदुल, क्षीण, नीवला, नाटिका) अवस्था से भी इसका अभिप्राय है। नवनेह का खेल में नवे दाव का प्रेम परन्तु योग साधना मे नवचक्र और भोग में नवोढ़ा का स्नेह है। दसों दाउ खेल में ६+२+२ का दाँव है तथा योग मे दस इन्द्रिय द्वार परन्तु भोग केलि मे—पाँच नखक्षत (अर्द्धचन्द्र मंडल, मयूरपद, शशप्लुत उत्पल पत्र) और पाँच दशन क्षत (तिलक, प्रवाल, बिंदुक, खडाभ्र, कोल) ये १० हैं—पद्मावती रत्नसेन को फटकारती है कि तू मुझसे दस दाँव अर्थात् नयन, कठ, कपोल, अधर, स्तन, मुख, ललाट, जघन, नाभि, कक्षा का घृष्ट चुम्बन करता है। चौपर खेल की सज्ञा के साथ

---

(१) (२६।११) प की सभी पक्तियां। द्रष्टव्य यही अध्याय। (२) पिछली टिप्पणी इसी अध्याय की पंक्तियाँ द्रष्टव्य।

जोग में चतुष्पट्ट तथा कामकेलि में—पद्मासन, नागरकरेणु, विदारित; स्कन्धपाद- नाम सुरत की चार अवस्थाएँ हैं। जायसी ने इन प्रसंगों (काम योग-खेल) की ओर इंगित किया है। मध्यकाल मे नवदम्पतियों के बीच पासा खेलने की एक सामान्य परम्परा थी। एक बार जुग बन्ध जाने के बाद यदि फूट जाय तो तीनो प्रसंगों में कष्ट कारक होता है। कोठा, वेंत, जुग आदि शब्दों[1] चौपड खेल के पारिभाषिक शब्द हैं।

हिंडोरा[2] सावन मास (पावस) का नेहर का खेल है। यह ससुराल में नहीं खेला जाता। मायके की स्वच्छन्दता को भी इसी के लिए दिखाया गया है—'भूलिलेहु नेहर जवलहूँ'—और नेहर की ममत्व भावना कत नेहर फिरि आउब कत ससुरे यह खेल[3], से प्रगट की गई है।

गोरा बादल युद्ध खड मे 'चौगान' नामक खेल से कवि ने रूपक बाँधा है। इस खेल मे 'हाल' (अंग्रेजी का गोल) चौगान (अंग्रेजी का पोलस्टिक) (जिसका तात्पर्य खेल का डंडा है) कूरी तथा गे द आदि शब्द व्यवहृत हैं।

जायसी ने सखियो सहित पद्मावती की जल-क्रीडा में कौमार्य अवस्था का स्वाभाविक उल्लास एव कन्याओं की पिता के सरक्षण मे सुलभ स्वतन्त्रता का दिग्दर्शन कराया है। 'जलविहार' तथा 'वनविहार' आदि से हार्दिक भावों एव शारीरिक व्यापारों का प्रत्यक्ष परिचय मिलता है—जो नायक-नायिका के लिए आकर्षक होते हैं। जायसी ने जलक्रीडा में ,खोरी—तथा 'वादिमेलि' (बाजी लगाकर) की चर्चा की है।

पद्मावत में रत्नसेनि और पद्मावती की 'कामकेलि' का सम्भोग सृङ्गार की रीति के अनुसार ही वर्णन हुआ है। कुछ पंक्तियाँ अश्लील अवश्य हैं। शारीरिक भोग विलास की विवेचना कवि ने विस्तारपूर्वक की है जिसमें भावात्मक प्रेम की अभि- व्यंजना भी है। केलि की प्रशस्ति 'किरिरा कामकेलि मनुहारी', 'कत करतोरू' चतुर- नारिचित अधिक चिहुँट, 'किरिय किहे पात घनिमोखू से की है। खेल के गेंद का प्रयोग नारी की.........के उपमान स्वरूप है।

मनोरंजन के साधन :—विरासा (विलास), विसरामू हर्ष, सुक्ख, भोग, आनन्द, आमोद, केलि, नींद, की अवस्था में कठपुतली की नाच, पातुर की नाच, वैसागमन, नाटक, गीत तथा बाजों का उल्लेख है।

सिंहलगढ़ की हाट में कहीं तमाशा लगा हुआ है। कोई पाखण्डी अपना उल्लू

---

(१) (२७। २३) प.की सभी पंक्तियां (२) (१६। २) प, चित्ररेखा

सीधा करने के लिए 'काठ नचावा'। यह 'गुलावो—सितावों' की नाच जो अवध में प्रचलित है वही जान पड़ती है। 'कइ सिंगार ठह बैठी बैसा' की बर्चा भी है जो मनुष्य को तभी तक लुभाती है जब तक उसके पास पूँजी रहती है नही तो 'सांठि नाठि उठि भए बटाऊ ना ना पहिचान न भेंट। रत्नसेन द्वारा युद्ध के दौरान में अखारा (नृत्य का समाज) रचा गया। इसी तरह के नर्तक समाज के अखारे की चर्चा चित्तौड गढ के वर्णन में भी है। 'नट-नाटक-पतुरिनि औ बाजा। आनि अखार सबे तह् साजा। 'जभ' पखाउज, आउझ इत्यादि बाजें सुन्दर स्वर मे बजने लगे और 'जस सिंगार मनमोहन पातरि नाचहिं पाँच—पातसाहि गढ़ छेंका राजा भूला नाच।' का उल्लेख है। इस नर्तक समाज ने पहले राग मिलाया और क्रमशः 'भैरव', 'मालकोस' मेघमलार, श्रीराग, दीपक राग, गाया। दीपक राग गाते ही 'उठा बर दिया। 'इस छत्रो राग तथा ३६ रागिनियो की प्रशस्ति मे जायसी ने' सबद दीँहि मानहु सर लागहिं' का उल्लेख किया है।

कला करने वाले नट, अभिनय, पातुर का नाच, और बाजे इन चारो के द्वारा मनोविनोद किया जाता था। पद्मावत मे कुछ खण्ड तथा अलाउद्दीन स्वागतार्थ मे अखारे का वर्णन है। अभिनेताओ की लच्छेदार वार्ता के लिए जायसी ने 'बैन करेई' शब्द प्रयुक्त किया है।

चेटक (जादू से मोहने वाला), पेखन (प्रेक्षण) तमाशा का उल्लेख भी सिंहल की हाटो में है। गीतो मे सुहाग और झूमक का वर्णन है। सुहाग कन्या पक्ष की बिवाह कालीन गीत है तथा झूमक वसन्तोत्सव का।

उत्सव तथा पर्व :—जायसी ने सयोगावस्था मे उत्सवके लिए षट् ऋतु का वर्णन किया है। उन्होने 'वसन्त' तथा 'फाग' का विशेष महत्व प्रतिपादित किया है। 'चैन वसन्तो होइ धमारी' तथा 'सेन्दुर बुक्का होई धमारी' व्यवहृत है। वसन्त को ही तेनहारू माना है 'यह वसन्त रुव कर तेवहारू। 'इसी उत्सव के समारोह में 'फाग खेल' 'दाहव होली' 'झएड गधि के पचम' गाने तथा 'होई फाग मिलि चाचरि जोरी' का वर्णन भी है। उत्सव मे भी नृत्य और गीत की चर्चा है। 'झुण्ड वाधि के यह एक प्रकार मडल नृत्य है जिसमे एक सखी बीच मे तथा शेष उसके चारों ओर गोलाई मे ताल देती हुई गाती और नाचती हैं।

नागमती के वियोग में 'देवारी' तेवहार का' सखिमाने तेवहार सव गाइ देवारी खेलि 'के रूप में वर्णन है, उसे कष्ट है' हो का खेलों कंत बिनु। जेहि घर पिउ सो 'मुनिवध पूजा अर्थात् सौभाग्यवती रमणिण' सप्ततियों की पूजा कर रही है मे (नागमती) करूँ कैसे।

वाद्य-उत्सव एवं विलासिता के—झाँझ, तूर भेरी, बसकारि, दुन्द, ढोल, दगवा, हुडुक, महुवर, तुक, सींग, सख, घट, मदर, बीन, नागासुर, तत, वितत, आउझ, पखाउझ, पिनाक, मजीरा, रबाब, उपङ्ग, चंग, जम, सुरमंडल, मृदंग, कुमाइच, अविरती आदि वाद्य यन्त्र उत्सव तथा मनोरजन में व्यवहृत हैं। झाँझ, ढोल, दुन्द, भेरी, मदेल, तुरही, सख, सींगी, डफली, बाँसुरी, महुवरि आदि बाजे सब सखियाँ पंचमगोत टोली बनाकर गाने लगीं तभी एक साथ बज उठे। तुक गले में लटका कर बास की खपलियों स बजाया गया। अलाउद्दीन की सेना से टूटे हुए किले की रात भर मरम्मत कराने के बाद प्रात. रत्नसेन ने अखारा रचा और उसमें जम, पखाउज, आउझ, सुरमण्डल, रबाब, बीणा, पिनाक, कुमाइच, अविरती, चग, उपङ्ग, नागासूर, सूर, बसी, हुडुक, डफ झाँझ, मजीरे, तत-वितत आदि बाजे सुन्दर, सुहावनी और गहगही आवाज में बजने लगे। टीकाकार ने जम को वाद्य विशेष तथा सभी वाद्य यन्त्रों की सज्ञा के रूप मे स्वीकार किया है। सभवत. आउज ढोल के आकार का ही बाजा है। रबाब सारगी सदृश, पिनाक शिव से प्रादुर्भूत, नागासुर मुँह से बजाया जाने वाला बाजा, ऐसा टीकाकार ने स्वीकार किया है। उपङ्ग केवल भारतवर्ष मे ही पाया जाता है। अमृतकुण्डली का प्रयोग सूर ने भी किया है। कुमाइच को वर्णरत्नाकर की २७ वीणाओं की सूची में कूर्म वीणा कहा गया है। चगे (बडी एव जडी) लखनी बाजों के द्वारा आज तक व्यवहृत है। महुवरि को वर्ण रत्नाकर मे सपेरे की बीन माना गया है परन्तु संगीतरत्नाकरानुसारेण यह सींग या हड्डी का बना शहनाई सदृश बाजा है। हुडुक कंधे मे लटका कर बजाया जाता था। तत-तांत वाले वितत बिना तांत वाले बाजे थे। कास्य के बने हुए तश्तरी के आकार का प्रचलित झाँझ बाजा है। मजीरा छोटी कटोरी के आकार का प्रचलित वाद्य। झाँझ और हुरुक महुरीवाइसी में भी चर्चित है। सख-घट तथा डवरू देवता क बाजे हैं। चवर सख और डवरू हाथ' शिव का वेष है। बीन और बसी उपमानस्वरूप भी व्यवहृत हैं। किंगरी और सींग जोगियो के भी बाजे हैं—जिससे वे भीख मागने तथा प्रेमगीत का गान करने का कार्य करते हैं।

युद्ध के वाद्य—वाद्य वीरों में वीर रस भरते हैं। पिछली पक्ति की सेना को भी वाद्य बजने ही पैर पड़ाकर चलना पडता है किंतु कहिं चला तबल देइगन कवि परम्परानुसार शाह और रत्नसेन की युद्ध में बडे नक्कारे पर जैसे ही डंडे पडे—'डड धाउभा इन्द्र सकाना'। रत्नसेन की ओर आइबजाद पैठ सब राजा। रत्नसेन के समाज में दड़ड़ी (वादक) बाजे बजाकर युद्ध के लिए प्रेरित कर रहे थे, बजहिं सींग सख और तूरा', दुन्द युद्ध का बडा नगारा है।

ऐश्वर्य सूचक वाद्य—दर निसान जिनके वाजा' नौवत जिनके दरवाजे पर नित्य बजती है । चौघडियाँ नौबत बजना राजत्व का द्योतक था । 'दान डाक वाजइ दरवारा' का भी उल्लेख हैं 'डाक' के लिए दगवा का प्रयोग भी जायसी ने किया है । 'दान डाक वजना' राजाओ की प्रशस्ति की पुरानी परम्परा है । जातकों मे भी इसकी चर्चा है ।

समय सूचक—राज प्रासादो मे समय की सूचना हेत्व थे । घरी-घरी पर समय सुचक बाजे बजते थे । तेहि पर बाजि राजघरियारू । एक पहर बीतने पर जोर से घरियार या 'गजर' बजता था और घरियारी (वादक) की ड्यूटी वदल जाती थी । सन्त जायसी ने परा जो डाँड जगत सब डाडा । का निश्चित माटी का माडा' से आयु की एक एक घरी घटने वाली सूचना दी है ।

मृत्यु के बाजे—मृत्यु के सूचक वाद्य स्वरूप 'तुरुही' का प्रयोग जायसी ने किया है । 'जसयारहु कहे बाजइ तूरा ।

उपसहार—नव दम्पत्ति के मनोविनोद मे विनोद पूर्ण वार्ता तथा पासा खेलना, शृङ्गारहाट मे पूँजीपतियों के वेश्यागमन, सैन्यक्रीडा में चौगान, शाही क्रीडा में शतरज, कुमारियो की जलक्रीडा तथा हिंडोर खेल, मनोरजन मे नृत्य, वाद, गीत तथा नाटक, इत्यादि का वर्णन है । इस उत्सव प्रधान देश में केवल वसन्त-फाग और देवारी की ही एक झलक मात्र मिलती है । रत्नसेन द्वारा युद्धकालीन तथा दूसरा अलाउद्दीन के स्वागतार्थ रचा गया । सीग, सख, तुरुही, तवल, दु'द युद्ध के, ३० बाजे उत्सव के, किंगरी सिगी जोगी, सघ घट, डँबरू देवता तथा देवालय के, निसान ऐश्वर्य के राजघरियारू समय के तथा तूरा मृत्यु के बाजे के रूप मे व्यवहृत है ।

'नगर-प्रासाद-गार्हस्थ्योपयोगी सामग्री'

सैन्धव सभ्यता से नगर [शिल्प] के दर्शन मिलने लगते हैं । नगर निर्माण मे भूमि शोधन, परिखा, प्राकार और द्वार का उल्लेख महत्वपूर्ण होता है । प्राचीन परम्पराओ मे दुर्ग और नगरो का सन्निवेश एक ही तरह का होता था । कौटिल्य[1] ने दुर्ग विधान या पुर सन्निवेश के लिए सर्वप्रथम परिखा के निर्माण की अनिवार्यता बताई है । नगर या गढ की सुरक्षा एव गुप्ति के लिए गहरी खाई और ऊँची चहारदिवारी या परकोटे का निर्माण आवश्यक समझा जाता था । जायसी द्वारा वर्णित नगर सिघल[2] की चर्चा में सर्व प्रथम अवराउ का दर्शन होता है, जिसमे आंव

(१) अर्थशास्त्र, कौटिल्य (२) सिंहल दीप वर्णन खंड पद्मावत (३) (२।४।५) प की सभी पंक्तियां (४) (२।६) प की सभी पक्तियां ।

कटहर, बड़हर खिरनी, जामु,नरिअर, मुरहुरी, महु, सजहजा, गुआसुपारी, अंरविसी तार, खजूरि की पादपावली जिनकी शाखाओं पर कुहुकुही, पाडुक, सारौ, सुवा, परेवा पपीहा, गुडरू, कोइल, मिगराज, गहरि, हरिल, मोर एव कागा आदि पक्षी अपनी-अपनी भाषा मे कलरव कर* रहे हैं। कुए, बावरी, बैठक, कुंड, मढ़-मडप आदि दृष्टिगोचर* होते है। जता-तपा रिखेस्वर सन्यासी, रामजन (राम के भक्त) मस-वासी (एक मास तक उपवास करने वाले) ब्रह्मचारी, दिगम्बरी, सरसुती, सिद्धेश्वर वियोगी, महेसुर (माहेश्वरशव जंगम, शाल सेवरा (श्वेतपट) खेवरा (क्षपणक), बानपरस्तो, सिध-साधक, अवधूत आदि का दर्शन दो बातो की ओर संकेत करता है—कि तत्कालीन नगर के बाहर तपस्वियों का आश्रम आदि हुआ करता था तथा तत्कालीन समाज में किसी भी नागरिक के हृदय मे किसी भी धर्म के प्रति अवमानना नहीं थी।

नगर के और समीप पहुँचने पर मानसरोदक तालाब जिसका जल अमृत तुल्य है, जिसकी सीढ़ियां लंका के पत्थरों से बनाई गई है, जिसमें हंसगामिनी कोकिला बैनी पनिहारिनें पानी भरने आती हैं का दर्शन होता है छोटे-बडे ताल और तथा-बरियो के साथ पुनः बगीचो का दर्शन होता है जिसमे नींबू, बादाम, अंजीर, सुरुंज, सदाफर, नारंग, किसमिस, सेव, दारिव, दाख, हरपारेवरी, बैरा, तून, कमरख, निउजी, करोंदा, चिरौंजी, खसदराउ, छोहारा, खजहजा आदि मेवे फरे हुए हैं। फल की बाग के बाद नगर की परिधि से सलग्न ही फुलवारी है जिसमें केवरा, चपा, कुंद, चवेली गुलाल, कदम, कूजा, बकौरी, नागेसरि, सदवरग, सिगारहार, सेवती, सोनजरद, रूपमजरी, मालती, जाही-जूही, वक चुन, सुदरसन, बोलसिरी, करना, बेला आदि फूल-फूले हैं। इस तरह की उल्लिखित प्रकृति की सुरम्य क्रीडा-स्थली की गोद में अपने वैभव में अगड़ाई लेता हुआ सिंघल नगर का दर्शन होता है जहां का बादशाह गंधर्वसेन है जिसके पास छप्पन कोटि सेवा सोरह सहस घोर, सात सहस, हस्ती, एव अमुपति, गजपति, नरपति, भुअपति जैसे चार मुख्य नगर रक्षक है। वह रावन को भी मात करने वाला प्रतापी छत्रपति है।

नगर—सिंघल नगर के द्वार ऊंचे हैं। रक्षा की दृष्टि से इनकी ऊंचाई महत्वपूर्ण है। सभी सभासद एव गुणी तथा पंडित जिनकी भाषा 'संस्किरत' है बैसन सभाओं में चदन के खंभों से 'ओंठघि' (टेककर) कर बैठे हैं। नगर कि मार्ग भी सुन्दर एव व्यवस्थित हैं। सिंघल की हाट जो नवोनिधि परिपूर्ण हैं। कनकहाट सिंगारहाट जिनमें वेश्यायें अपने सिंगार करके बैठी हैं बेल तमासे हो रहे हैं।—एवं फुलवारी हाट का भी वर्णन है। मध्यकालीन उल्लेखों में चौरासी हाटों[1] का वर्णन भी

---

(१) वि सं॰ १४७८, मुनि जिन विजय जी द्वारा प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ पृथ्वीचन्द चरित्र, पृ॰ १२६

मिलता है। जायसी ने केवल तीन हाटो की चर्चा की है। यह तत्कालीन बाजारों के प्रबन्ध कौशल का द्योतक है।

गढ़—हाटो के बाद जायसी ने गढ का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र[1] के अनुसार दुर्ग के चारो ओर तीन खाइयो का बनना अनिवार्य है। जायसी ने प्राकार और परिखा शब्द का प्रयोग न करके खोह की चर्चा की है। ज्यादा से ज्यादा खाई की गहराई का पद्रह फीट नौ इन्च होने का उल्लेख प्राचीन श्रोतो से मिलता है परन्तु जायसी ने सिघल गढ की खाई की गहराई सप्त पतारन्ह से द्योतित की है जो अतिशयोक्ति की सीमा का स्पर्श करती जान पड़ती है।

गढ़द्वार—प्राचीन श्रोतो[2] से नगरो या दुर्गों के प्रधान चार द्वारों की पुष्टि होती है। असुपति-गजपति नरपति भुजपति इन चार शब्दो का जायसी द्वारा प्रयोग भी इन्ही चार द्वारो के रक्षक अधिकारो का द्योतन कराता है। गढ मे नौ द्वारों और नव मजिलो का वर्णन साम्प्रदायिक अभिप्रायपरक भी हैं। मध्यकालीन स्थापत्य के अनुसार कचन कोट का निर्माण हैं। खाई के बाद कोट (प्राकार) का महत्व है। कौसीसा (कपिशीर्षक) अत्यन्त प्राचीन पारिभाषिक शब्द है जिसे जायसी ने कोट के ऊपर बने कगूरो के लिए व्यवहृत किया है। यहां पर कवि ने कोट की ऊँचाई सूर्य और चन्द्र के रथ चूर होने से की है इसीलिए य दोनो गढ के ऊपर से नहीं चलते। प्राचीन साक्ष्यो से भी परकोटो की ऊँचाई का ज्ञान बारह हाथ से चौबीस हाथ[3] तक होता है।[4]

सुरक्षा—गढ की सुरक्षा हेतु हीरे से निर्मित नवो द्वारो पर एक-एक सहस्र पदातिसैनिको की व्यवस्था है। जायसी ने पाच कोटवारो की भँवरी का उल्लेख किया है जो शक मध्यकालीन हिन्दू शासन से आरम्भ हुआ था और सत्रहवीं सदी तक चलता रहा। इन पाँचो मे कोट्टपाल—काजी-दीवान-वख्शी और तलार होते थे। जायसी का अभिप्राय इसी तरह का है।

मध्यकालीन शिल्पकला मे राजद्वारो के दोनो ओर सिंह बनने की प्रथा का प्रचलन था। कोणार्क के सूर्य देउल के नाट्य मन्दिर की सीढ़ी के दोनो ओर सिंह कुंजर अभिप्राय बना है। इसी तरह जायसी ने पवरियो पर सिंहों का जिक्र किया है। पहाडी दुर्गों मे चट्टानो को काटकर ही सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। नवो द्वारो में

(१) कौटिल्य का अर्थशास्त्र (२) नगर स्यचतुसु द्वारेसु जानक १।२६२। (३) जातक-आट्ठारस हत्थप्राकार (४) राखलदास वन्द्योपाध्याय, उड़ीसा भाग २, फलक, पृ० १।

वध्र के किवाड़ों का उल्लेख है । गढ़ पर चढ़ने के लिए जायसी ने चार पदावों का जिक्र किया है जो साम्प्रदायिक (नासूत-मलकूत- जबरूत-लाहूत (हश्रोक) भी हैं ।[१]

नव पंवरियों के बाद दसवें द्वार (मुख्यद्वार) की चर्चा है । जहां राजघरियार बजता है । इस समय सूचक वाद्य के माध्यम से सूफी सन्त जायसी ने संसार की निःसारता और समय की चाल का द्योतन[२] कराया है । कवि ने गढ़ के भीतर नीर-खीर दो नदियों कल्पतरुसदृश कचनविरिख की चर्चा की है जो मात्र राजा की उपभोग्य सामग्री है । गढ़ पर सुरक्षा की दृष्टि से (असुपति गजपति-नरपति-भुअपति) रक्षा अधिकारियों के आवास की व्यवस्था भी है ।

गढ़ का आभ्यन्तर भाग— खाई और प्राकार की परिधि पार करने के बाद राजदुमारु जहाँ सेत-पीत-धुमैले लाल-काले मेघ वर्णी कछुवे की पीठ को अपने भार से तोड़ने वाले पर्वतों का उखाड़ फेंकने वाले बली-सिंहली हाथी बंधे हैं, का दर्शन होता है । रजवार तुरगों की चर्चा हाथी के बाद है । इनमे नीले समद कुमेत हिनाई (हांसुल) मुश्की (भवर) कियाह हरे कुलग तथा महुए क रग वाले घोड़े हैं । गर्रे कोकाह बोलाह और तुषारा टर्रे की चर्चा की है ।[३]

राजसभा—इन दोनों सेनाओं के पहरे के बाद राज-सभा का आलोक मिलता है जो इन्द्र सभा सदृश है । जो फूली हुई फूलवारी के समान है । जहाँ मुकुट बन्ध राजा बैठे हैं जिनके यहाँ नित निसान बना करता है । पान कपूर मेद आदि सुगन्ध भी वहाँ प्रसारित हो रही है । इन सबों के मध्य में राजा गन्धर्व सेन के सिंहासन का उल्लेख है जो एक राजसभा के नियमों उपनियमों की पुष्टि करता है ।

राजमन्दिर—प्राचीन स्रोतों से ज्ञात होता है कि राजकुल का संस्थान अति विस्तीर्ण होता था । इसके आरम्भिक भाग राजद्वार से ही बाहरी सार्वजनिक सवारियों का निषेध हो जाता था । यहीं पर (राजद्वार के पहले) द्वीपान्तरों से आए हुए दूत मण्डल अपनी-छावनी लगाते थे । बड़े पहरे की योजना भी यहीं से होती थी । मुगलकालीन संस्कृति में इसे 'उर्दू-बाजार' कहा गया है । राजकुलीन संस्थानों की सात-कक्षाओं का परिचय मिलता है ।[४] जायसी में भी 'सात खण्ड' के धौराहर का उल्लेख किया है । गुप्तकालीन भारत में तीन खण्डे तथा बाद में सात खण्डे महल के के लिए 'कैलास' शब्द व्यवहृत होता था जिसे जायसी ने 'कविलासू'[५] कहा है । यह

(१) रामपूजन तिवारी-सूफीमत साधना और साहित्य, पृ० ३३० (२) (२।१८) प की सभी पंक्तियां (३) (२।१६) प की सभी पंक्तियां (४) (२।२१।२२) प की सभी पंक्तियां । (५) कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, परिशिष्ट, २ (६) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, टीका, पृ० ५७,

राजकुल के अन्तर्गत धवलगृह का वह भाग हैं जहाँ की राजा-रानी सोते थे। इसे चित्तर सारी और शयन कक्ष भी कहते थे। जायसी कालीन स्थापत्य की विशेषता थी इनकी (कविलासकी) छतो और दीवारो पर सोने के पानी को पुताई भी करते थे। दिल्ली के लाल किले के मुगलो के ख्वाबगाहो की छते और दीवारें इस बात की पुष्टि करती हैं। जायसी कविलासू के निर्माण विधि में हीरे की ईंट कपूर के गिलावे चित्रकारी एवं मणि-माणिक्य के खम्भों की चर्चा की है जिनका निर्माणकौशल सात बैकुन्ठो से[1] भी बढ़ कर है।

रनिवासू—भारतीय राजकुलों की परम्परा मे राजकुमारी के लिए राजकुल के अन्तर्गत या उससे कुछ हट कर विशेष आवासो का प्रबन्ध किया जाता था। जिन्हें 'कुमार भवन' कहते थे और युवति राज कन्याओ के लिए जो विशेष आवास होते थे उन्हे कुमारी अन्तः पुर या कन्यान्तःपुर कहा जाता था। अन्तःपुर को 'रनिवासू' कहा गया है। आदर्श राजा के अन्त.पुर मे सोरह सहस रानियों का उल्लेख भी मिला है। विवेच्य काल के कवि जायसी ने भी राजा गन्धर्वसेन के रनिवास में सोलह सहस्र बत्तिस लक्षणो से सम्पन्न पद्मिनी रानियो का वर्णन किया है जिनकी पाट प्रधान-महिषी रानी चम्पावती है।[2]

इस गढ की चर्चा सातों समुद्रो को पार करने के पश्चात् पुनः इसी तरह की गई हैं जो रत्नसेन को उसी तरह दिखाई पडती है जैसे समुद्र पार करने पर रामादल को लका।

चित्तौड़गढ़—सिंघल गढ की तरह चित्तौड गढ़ भी है। इसमे केवल सात पवारियाँ है जबकि सिंघल में नौ हैं। इसकी सात पवरियों और सात खडों को पार करके ही कोई दुर्ग के मध्य तक पहुँच सकता है। पवरियों में पहाडी प्रस्तरो को उकेरकर चित्र भी उरेहे गए हैं।[3] सिंघल के किवारे तो वज्र के थे परन्तु इसके कनक के हैं। इस गढ के सातों पंवरियों पर घरियाऌ बजता है। जबकि सिंघल के मात्र दसवें द्वार पर ही।

चित्तौड में अलकारण की सूचना सात पवरियो के सात रगों से ज्ञात होती है। जायसी की रगो की कल्पना ईरानी कथानकों की जान पडती है। सुरक्षा एवं शिल्प-सौन्दर्य की दृष्टि से दुर्ग के मध्य तक पहुँचने के लिए भीतर ही भीतर सीढ़ियों, पर सौ चक्कर काटने पड़ते हैं अनुमेय है। एक-एक खड के अन्त मे पलंग जैसी

---

(१) (२।२४) प की सभी पंक्तियाँ (२) (२।२५) प की सभी पंक्तियां (३) (सिंहल की पखेड) (४) (४५।१) प की सभी पंक्तियाँ।

चौड़ी पीढ़ियों, चन्दन, वृक्षों, अमृत सदृश जलकुण्डों में वे अनार और अंगूर की बगीचियों का उल्लेख तत्कालीन दुर्ग विधान की गरिमा का सूचक है ।[1]

दुर्ग इतना ऊंचा था कि उस पर चढ़ कर देखने से संपूर्ण 'वसगिति' (वस्ती) दिखाई पड़ती थी । सिंघलगढ़ के समान ही इसकी भी परिधि के आस-पास ताल-तलावरि-बगीचे, कुएँ, बावड़ियों, मठों, मडपों की सुन्दर व्यवस्था है ।[2]

रनिवास का महल—पद्मावती के महल का शिल्प सौंदर्य भी पारम्परिक ही है । हर्षचरित और कादम्बरी दोनों में प्रासाद के ऊपरी भाग पर चढ़ने हेतु प्रासाद सोपानों की चर्चा है । वातायनों, गवाक्षों, भवनदीर्घिका, देवाट्ह, क्रीड़ा, पर्वतक, प्रमदवन, लतागृह, संगीतशाला, स्नान एवं व्यायाम की स्थली का जिक्र भी प्रासाद शिल्प के सौंदर्य के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं । विवेच्य काल में जायसी ने भी पद्मावती के मन्दिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों का वर्णन किया है । उनके मन्दिर के चारों तरफ फूली एवं सुगन्धित पुरइनि से व्याप्त सरोवर का उल्लेख है । कादम्बरी के अन्तःपुर के पहरे में सावधान स्त्रियों का वर्णन है परन्तु जायसी ने दो लाख कुंवरों के पहरे में जिक्र किया है । जो नया प्रयोग जान पड़ता है । प्राचीन शास्त्रों से तो बुड्ढों नपुंसकों अथवा स्त्रियों का प्रवेश ही अन्तःपुर में माना गया है इनसे इतर का प्रवेश निषेध था । गढ़े हुए शार्दूलों का चित्रण भी है । सभी तरह के चित्रों को उरेहा गया है जो प्राचीन शिल्प सौन्दर्य की धरोहर जान पड़ती हैं ।[3]

आंगन—संस्कृत साहित्य में भी अन्तःपुर के मुख्य भाग स्वरूप आंगन की आख्या मिलती है । जायसी द्वारा उल्लिखित आंगन में मन्दिल की छाँह सी जा सकती है । कवि ने महल के जिस भाग की चर्चा की है वह बसन्त मन्दिर या बासन्ती कक्ष या वहाँ की सब सजावट फुलवारी के ढङ्ग की थी और सब फूल-फल पत्ती आदि सोने के ही बने थे । इन्हीं की ओर जायसी का संकेत है । रनिवास में सखियों सहेलियों का वर्णन भी महत्वपूर्ण है । सिंघल की तरह ही सोलह सौ दासियों का वर्णन है पर इनमें ८४ मुख्य हैं जो ब्याह के स्वागतार्थ थीं ।

झरोखे—महलों के विशिष्ट कमरों या समारयान में ऊपर छत के पास पालकी नुमा जालीदार गोखें बनी रहती थीं जिनमें बैठकर रानियां आस्थान मडप में नीचे की सब बात देख सकती थीं । प्राचीनकाल में इसको संज्ञा शिबिका थी । इनकी जालियों के कटाव भिन्न-भिन्न तरह के होते थे । एक ऐसा कटाव था जिसमें जाली के नक्शे में वृक्ष या झाड़ की आकृति डालकर सम्पूर्ण जाली बनाई जाती थी ।

(१) (४२ । २) प की सभी पंक्तियां (२) (४५ । ३) प की सभी पंक्तियां ।
(३) (४५ । ४) प की सभी पंक्तियां

अहमदाबाद की सीदी सैय्यद मस्जिद मे लगी हुई उसी तरह के शिल्प की झाडीदार का नमूना है। इसी तरह के पद्मावती के महल के झरोखो[3] की चर्चा जायसी ने की है जिससे शाह ने पद्मावती के पारस रूप की परछाई को शीशे में देखी।

नगर मे जो अनेक तरह के भवन या निवास स्थान होते हैं उनके जायसी के अनुसार इस तरह हैं —राजसभा, मन्दिर, धौराहर, सुखवासी, कविलासू, बैठक, पवरि, घर, अवास, खोरिन्ह सोवनार, चौरा, चौपार, गच (फर्श) ओबरी आदि जिनका अध्ययन इसी अध्ययन के प्रसगानुकूल हो चुका है। विवाह के प्रसग मे भी घर चूने और ईंट से सजाए गये उनमे पुतरियो का चित्र बनाया गया। बन्दनवार इत्यादि से उसे सजाने की प्रक्रिया सम्पन्न की गई है। सुखवासी नामक घर में गलसुई चँदोवा-बिछाड, गेंडुवा, पलंग आदि की भी चर्चा है। शयनकक्ष की सज्ञा 'ओबरि'[1] भी जायसी द्वारा षट्ऋतु वर्णन खड में व्यवहृत है।

उपसंहार—जायसी द्वारा वर्णित नगर एव दुर्ग की निर्माण शैली परम्परागत है। केवल दो नगरो (सिंघल-चित्तौड़) का विवेचन है जो आपस में बहुत कुछ साम्य रखता है। सिंघल नगर की परिधि के पहले ही १४।१६ तरह के फलो के अम्बराउ की पाद-पावलियो पर १३-१४ प्रकार के चिड़ियों के कलरव, कुओ-बावलियो, मठो, मान-सरोदक, ताल-तलावरि एव पुन: २३-२४ तरह के मेवे की बगीची २४-२५ तरह के पुष्पो की फुलवारी का क्रमश: जिक्र है। नगर मे पवरियो-सेनानियो, घरो, मन्दिरों, सभाओ एव उनके निवासियो की चर्चा है। सिंघलगढ की कनक, सिंगार एवं फुलवारी हाटकी व्याख्या है सिंघलगढ़ के निर्माण कौशल मे खोह, परकोटे, कौसीसा पाचकोखार नवो द्वार के बाद दसवें द्वार, राजपरियारू, नीर-खीर नदी, चार गढमती, राजदुआरू वहाँ का पहरा, राजसभा, मन्दिर, कविलास, रनिवास आदि का क्रमागत चित्रण श्लाघनीय है।

चित्तौड की भी प्राय: इसी तरह की व्याख्या है। रनिवासू का विवेचन कुछ अधिक है। जायसी के उल्लेखो से ग्रामीण सभ्यता पर प्रकाश नहीं पड़ता।

गार्हस्थ्योपयोगी-सामग्री

गृहस्थोपयोगी सामग्री के लिए प्राचीन शब्द 'शयनासन' था। शयन के काम में आने वाले खाट, पलङ्ग और आसन के लिए पीढ़े चौके आदि मिलाकर शयनासन

(१) (४५। ५२) प (२) (४५। १६। ३) प तथा डा० अग्रवाल द्वारा टिप्पणी, पृ० ७५२ (३) (२६। ५। ५) प ओबरि जूड़ तहां सोवनारा।

कहलाते थे। पाली भाषा में सेनासन तथा गवई बोली में खाट खटोला भी इसे कहा जाता है।[1]

सेज :—गृहोपकरण में कविलास में शयनागार उसमें सुखवासी और वहाँ सेज का विधान मध्यकालीन राजमहलों में मिलता है। राजा-रानी या पति-पत्नी की सेज (शैय्या) सुखवासी में रहती थी। वर्णरत्नाकर में इस स्थान को चित्रशाली भी कहा गया है। सेज के साढ़े तीन हाथ लम्बी और अढ़ाई हाथ चौड़ी होने का साक्ष्य मिलता है।[2]

चन्दोआ :—रात में सेज के ऊपर लाल चंदोवे के तानने का जिक्र है। माघ तथा अब्बास खाँ[3] से भी इस बात की पुष्टि होती है। जायसी ने रत्नसेन के लिए सुखवासी में लाल बिछावन, लाल दगला, लाल रथ, लाल छत्र, लाल चंदोवे का उल्लेख किया है। नेत नामक रेशमी वस्त्र के बने हुए गोंच तकिए एवं गेंडुए का वर्णन भी है। कवि ने गलसुई (चपटी छोटी तकिया) को भी पलंग के ऊपर बताया है। और सुपेती मोटे कपड़े की रुई भरी रजाई जो सर्दी में ओढ़ी जाती है। इसकी लम्बी आख्या टीकाकार ने अपनी टिप्पणी में दी है।

जायसी ने महरी बाइसी आखिरी कलाम और अखरावट एवं चित्र रेखा आदि काव्यों में भी खाटे, बेनसट, खटोला, तखत, पाटी और बेना शब्द का प्रयोग किया है जो उपमान सरीखे ही है उनका गाहस्थ्योपयोगी वस्तु स्वरूप प्रयोग नहीं ज्ञात होता है।

दीपक :—देव ने दीपक स्वरूप मुहम्मद की रचना करके जगत के अन्धकार को दूर करने के लिए भेजा। स्त्रियों के सौन्दर्य एवं उनकी माँग को ज्योतिस्वरूप भी दीपक का प्रयोग किया है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह में मणि और माणिक्य के दीपों का मंडप में जगमगाने का उल्लेख है।

दरपन भी गृहोपकरणों में ही है परन्तु उल्लेख शृंगारिक पदार्थों के अध्ययन में हो चुका है।

भाड़ा शब्द पात्र के लिए व्यवहृत है भोजन के क्रिया-कलाप से सम्बन्धित पात्रों की सूची लम्बी है और थार एवं कलसन्ह का प्रयोग विवाहादि प्रसंगों एवं उपमानों में हुआ है। टीकाकार ने 'रोगवारि' शब्द की टिप्पणी में कलस अर्थ दिया है। सुराही शब्द का प्रयोग उपमान में ही है। गगरी शब्द महरीबाइसी और अखरावट

(१) पाणिनि अष्टाध्यायी—६।२।२१ (२) ६७।१।२५ की सभी पंक्तियाँ एवं पृ० ३३६ की टिप्पणी (३) माघ, ५।२१ तथा अब्बास खाँ शारीरत शेरसाही—टिप्पणी, प० ११६ वा० अग्रवाल।

रथ—वाहनों में सामाजिक दृष्टि से रथ का विशिष्ट स्थान था। विवाह में दूल्हे रत्नसेन के लिए सुवर्ण मण्डित एवं लाल वस्त्र से आवेष्टित रथ[1] का आयोजन पारम्परिक ही है। वसन्त उत्सव । शिवमण्डप तक जाने के लिए यह युवतियों की सवारी है।[2] इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि यह सर्वसाधारण की सवारी नहीं थी। इसके अलंकरण की प्रथा परंपरागत है। सूर्य और चन्द्र के रथ[3] पर चढ़ कर घूमने की जिक्र है। शाह की सेना में भी रथ तोपों की गाडी के लिए आया है जिन्हें हाथी खींचते थे। पद्मावती की विदाई में चेटियों के लिए सहस डांडी (पालकी) शब्द व्यवहृत है।

हाथी—हाथी का भारतीय संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है। यह गणेश का अवतार माना जाता है। पर विज्ञान के इस युग की दौड़-धूप में अब इसका अस्तित्व घटता-सा जा रहा है। पुरानी परम्पराओं के भक्त रईसों के विवाह एवं उत्सव आदि में ही इसका प्रचलन रह गया है। मध्यकालीन ताम्र एवं शिलालेखों में गजपति का उल्लेख यह[4] सूचित करता है कि उस समय हाथियों के अधीश्वर भी हुआ करते थे जायसी ने भी गजपति का उल्लेख सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड में किया है। दरवाजों के पहरों पर भी इनसे कार्य लिया जाता था।[5] शाह की सेना में बीस हजार[6] हाथी गंधव सेन की छप्पन कोटि सेना में सात सह सिंघली हस्ती[7] का जिक्र है। गुप्तकालीन घुड़सवार सेना की आंशिक सफलता ने ही पूर्ण सफलता के लिए हाथियों की इतनी विशाल सेना के निर्माण की भावना का उदय मध्यकाल में किया। हाथी फौलादी दीवार कहे गये हैं। इनसे दीवाल तोडने में साहाय्य लिया जाता था। परन्तु हानि भी होती थी जब इनके दांत उखाड लिए जाते थे सूंड काट लिए जाते थे उस समय ये वीभत्सता का ताण्डव नृत्य करते हुए दोनों (पक्षी-विपक्षी) दलों का संहार करने में संकोच नहीं करते थे। इनका द्वार पर झूमना एवं इनकी संख्या ऐश्वर्य का द्योतक है। इसके मद की प्रशंसा भी की[8] गई है। ये रथ भी खींचते थे।[9]

साज—चडोल (होदा) लोहे की मूल पखरें (कवच) अम्बारी सिरी

---

(१) औ राता रथ सोने क साजा, (२७७।३।२) प (२) रथन्ह चढ़ी सरूप-सोहाई ।२०।७।१ प। (३) नित गढ़ बांचि चलैं ससि सूरु। नाहिं त बाझ जिहोइ रथा चूरू ।। (२।१७।१ प

(४) भोजकृत युक्त कल्पतरु (अश्वपरीश्लो १८२, पृ० २६) (५) मानसोल्लास (४।६६६) (६) नष्टलप्त्व अश्वचिकित्सक (२।१) (७) शालिभद्र (२।२।५) प ४३ (३२।१२।३) प (८) पृथ्वीराज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २१२ डा० सूर्यनारायण पाण्डेय (९) (४१।१८।७) प

(सामने मस्तक की झूल) सूड (सूडो का पहनावा) कडे (पैर का पहनावा) सोने की बगरी (दातो का आभूषण) चवर झलने वाले एवं झल्लेत आदि सुसज्जित हाथियों का उल्लेख है।[1]

(५) घोर :—सुरक्षा साधन तथा वाहन मे घोरो का उपयोग हुआ है। युद्ध-स्थल—शान शौकत, लागडाट मे भी इससे कार्य लिया गया है। गन्धपसेन की सैन्य व्यवस्था मे सोरह सहस घोर का उल्लेख है। असुपती शब्द भी उल्लिखित है। राज-द्वार पर घोडो की प्रथा थी जो ऐश्वर्य का परिचायक है।

प्रकार-रग :—जायसी ने कई प्रकार के घोडो की चर्चा की है। जैसे—केकानी[2]—ये केकान देश के घोडे थे। 'कल्पतरु'[3] 'मानसोल्लास'[4] 'अश्व चिकित्सक'[5] वाहुवलिरास[6] आदि ग्रन्थो मे कोकण देश के घोडो और भेडो की ख्याति का उल्लेख किया है।[7] बोलन दर के दक्खिन बलूचिस्तान के उत्तर-पूर्व मस्तुङ्ग और कलात के इलाको को घेरे हुए ब्राहुओ का यह प्राचीन देश अब भी अच्छी नस्ल के घोडो के लिए प्रसिद्ध है।[8]

ताजी :—ये अरब देश के घोडे हैं। अरबो का प्रसिद्ध नाम ताजिक था। भारत मे यह नाम आठवी शती से चला। शाहनामा[9] युक्तिकल्पतरु[10] मानसोल्लास[11] बीसलदेवरासो[12] कीर्तिलता[13] वर्णरत्नाकर[14] पृथ्वीचन्द्र[15] चरित्र आदि ग्रन्थो में 'ताजी' का उल्लेख किसी न किसी रूप में मिलता है। मकरान[16] की राजधानी तीज से आने वाले घोडे भी ताजी कहलाए।

---

(१) (४१।२६) प की सभी पंक्तियां।
(२) (४१।८।१) प (३) भोजकृत युक्त कल्पतरु (अश्वपरी० श्लोक १८२) प० २६) (४) मानसोल्लास (४।६६६) (५) नकुल कृत अश्वचिकित्सक (२।२) (६) शालिभद्रशूरिकृत वाहुवलिरास, १२वीं शती। (७) वाटर्स य्यूआन चुआङ० २।६२।२० (८) फूशे वाल्हीकि तक्षशिला नामक फ्रेन्च पुस्तक, भाग २, प० २२६-२७ (यह सब जानकारी टीका टिप्पणी के प० ६११ (६) शाहनामे में ताजी अश्व का उल्लेख है—दसवीं शती) (१०) भोजकृत युक्ति कल्पतरू मे ताजिका तुषारा आदि का उल्लेख है ग्यारहवीं शती) (११) (सोमेश्वरकृत मानसोल्लास मे ताजी है ४।६६६) (१२) डा० माता-प्रसाद जी द्वारा सम्पादित वीसलदेव रासो छन्द २१ में तेजीय तुरीय के कारण का उल्लेख है। (१३) कीर्तिलता में विद्यापति ने तेजी ताजी को भिन्न माना है, पृ० ८४-८८) (१४) वर्णरत्नाकर, पृ० (१५) ३१०३ पृथ्वीचन्द्र चरित्र,पृ० १३७ (१६) अबरूनी, अनुवाद, प० १।२०८

हुरमुजी और खुरमुजी —फारस की खाड़ी में बन्दर अब्बास के पास हुरमुज नामक छोटा द्वीप है। यहीं मीनाव नदी के किनारे बन्दरगाह भी है। याकूती के अनुसार भारत का सारा व्यापार सिमट करके हुरमिजियों के हाथ आया था। मार्कोपोलो[१] ने लिखा है यह स्थान घोड़ों के व्यापार का केन्द्र था। चौदहवीं से सोलहवीं शती तक यह व्यापार का प्रधान स्थान बना रहा। खुरमुजी-ईरान की खाड़ी के उपरले सिरे के घोड़े थे। इस स्थान के घोड़ों का नाम खुरमुजी पड़ गया।[२]

तुर्की और इराकी :—आइने अकबरी से अकबर की घुड़साल के ईराकी (ईराक देश के घोड़े और तुर्की (तुरकी या रूमदेश से आने वाले घोड़े) का प्रकाश पड़ता है।

बुलाकी भोथार तुषार :—बुलाकी और मोथार भी घोड़ों की जातियाँ थीं। जिनका प्रयोग जायसी ने किया है।

तुष र देश के घोड़े। कुषाण और गुप्तकाल में यहाँ से आने वाले घोड़े 'तुषार' कहलाए। मध्य एशिया में शकों के कबीले और इनके निवास स्थान की संज्ञा 'तुषार' थी।

इसके बाद जायसी द्वारा प्रयुक्त घोड़ों, की संज्ञा रंगों के आधार पर है। जैसे—काले, कुम्मैत (जिसका रंग उन्नाब, ताजी खजूर की तरह होता था, यह गर्मी सर्दी सह सकता था), कियाह इसे भी कुम्मैत ही माना गया है। लीले, सनेवी (सोहे के रंग का), संग (दूध की तरह श्वेत रंग का घोड़ा) सग के दो भेद हैं, नुकरा सब्ज पुज और सुर्ख भेद हैं। कुरंग (जिसकी रोमावली स्याह चमड़ी सुर्ख हो), बोर। सुर्ख रंग का उपभेद है,) समद और गोहररंग के घोड़ों में समद उत्तम है (यह उल्लेख शालिहोत्र के पृष्ठ छत्तीस पर है), कैवी (विचित्ररंग का घोड़ा), अगज (सफेद सिरवाला घोड़ा), अबलक (दोरंगा घोड़ा), अबरस (कुम्मैत की तरह) चीराज (पीले रोयें का घोड़ा), चौंधर (लाल घोड़ा), चाल (सुर्ख रंग का), पंचकल्यान (मुख सफेद वाला घोड़ा,) जरदा (पीला घोड़ा), मुशकी (स्याह रंग का)[४] मुन्धारे आदि रंग के घोड़ों हंसपट्ट का उल्लेख जायसी ने किया है।

साज—पाखरे (कवच), बाग (लगाम), सार (घोड़े की फौलादी कवचें जिन

(१) (यूलमार्कोपोलो १। ८३-४) (२) गिब्स, इब्नबतूता, प० ४३८। एवं डा० अग्रवाल की टिप्पणी, पृ० ६३५-३७ (३) टीका की टिप्पणी पृ०५५ डा० अग्रवाल (४) जायसी द्वारा प्रयुक्त रंगीन घोड़ों की जानकारी के लिए डा० वा० दे० शरण अग्रवाल की पं० सं० टीका, पृष्ठ ६३० से ६३७ तक द्रष्टव्य। (५) हंसापट्ट चित्ररेखा में है।

ऊपर सोने का पानी ढला होता था), जराऊ जीन आदि का प्रयोग जायसी ने अपने काव्यों में किया है।

जलीय वाहन—महरी बाइसी, आखिरी कलाम, अखरावट, चित्ररेखा, एवं पद्मावत मे जायसी ने नाव,[1] बेरा,[2] बोहित[3] तथा तरेंडा आदि जलीय वाहनों का उल्लेख किया है। वोहित की उत्पत्ति वोविस्थ से है। तरेंडा छोटी डोंगी है। डाड से नाव चलाई जाती है। खेवक और कड़हारु[4] चालाक हैं। 'खेवा'[5] एक बार पार उतारने को कहते हैं। 'पुलेसरात'[6] का अखरावट में साम्प्रदायिक अभिप्राय मे प्रयोग है। सेतुबन्ध[7] को उपमान मे रक्खा है।

आकाशीयवाहन—पद्मावती की विदाई के समय तथा शाह के चित्तौड गढ प्रवेश[8] काल मे *'बेवान' शब्द व्यवहृत है। शाह के* 'बेवान' की गति मनसे तेज तथा ऊंचाई आकाश से अधिक है।

भारवाही पशु ऊंट खच्चर—भारवाही पशुओं से आने जाने या माल ढोने का तथा कभी-कभी सवारी का भी कार्य लिया जाता है। जायसी ने ऊँट और खच्चर का भी शाह की सेना के तैयारी के समय जिक्र किया है।[9]

उपसंहार—कवि ने 'रथ' डांडी, घोडे, हाथी, नाव, वोहित, बेवान आदि सवारियो की चर्चा अपने काव्यों मे की है। रथो के अलकरण, विशेष गणमान्य लोगों की सवारी तथा सेना मे महत्व प्रदर्शित किया है। यह सर्व साधारण की सवारी नही थीं। घोडों के नौ प्रकार, एवं हेर-फेर के साथ बत्तीस रगीन घोडों की चर्चा की गई है। कैकानी, ताजी और तुखारा घोडे विशेष वर्णनीय हैं। इनकी साज-सज्जा का जिक्र भी है। हाथियों के अस्तित्व उनके भी अलकरण तथा सेना मे उनका स्थान विशेष उल्लेखनीय है। नाव आदि जलीय वाहनो की चर्चा भी की गई है। बेवाना आकाशीय-वाहन ही ऊँट और खच्चर का प्रयोग भारवाही पशु सरीखे ही है।

---

(१) आपनि नाउ चढ़ै जो देई—२१।४।२ प (२) तुम्ह पिय परी भँवर अति बेरा—५३।६।१ प। (३) बोहित भरे चला लै रानी ३३।१।३ प तथा बोहित (४) बोहित भरे चला ले रानी, ३३।१।१।प तथा बोहित खंड प (५) (जेहि रे ना० करिआ औ खेवक बेगि पाव सो तीर—१।१६ प (६) जा कहं अइस होइ कड़हारा। तुरत वेगि सो पावइ पारा।१।१८।६ प (७) (नासिक पुलस-रात पथ चला ६।२ अख०) (८) सेतबंध जहं राघौबांधा—३३।७।४ प (९) (क) समदि लोग धनि चढ़ी बेवाना ३२।११।२ प (७) हस्ति घोर दर परिगह जांवत बेसराऊँट जहं-तहं लीन्ह पलानी कटक सरह घर छूटि।४१।७ प

जायसी कालीन स्त्री पुरुष नाम

ज्योतिषानुसार—कवि तत्कालीन समाज के हिन्दू-मुसलमान एवं इन दोनों से सम्बन्धित देवी-देवता ऐतिहासिक पुरुष आदि के नामों का प्रयोग अपने काव्यों में किया है। जायसी ने हिन्दू परम्परागत नामकरण संस्कार की मान्यता दी है। पद्मावती के नामकरण की विधि जायसी ने इस तरह बतायी है :—'छठी रात के बीत जाने पर सभी पंडित आए और 'काढ़ि पुरान जनम अरथाए' यथा घरी, पल, राशि-नक्षत्र योग का विचार करके नाम रखा-कन्या राशि में (उत्तरा फाल्गुनी के तीन चरण—हस्तके चार चरण-चित्रा के दो चरण होते हैं उनके आद्य अक्षरों में उत्तराफाल्गुनी के तीसरे चरण का अक्षर 'प' है जिसके अनुसार पद्मावती नाम रखा) पैदा होने के कारण जन्म नक्षत्रानुसार पद्मावती नाम रखा।[१] पण्डित लोग भविष्य की बातों का उल्लेख (इसका पतिरत्नसेन भूला हुआ आयेगा जो जम्बू द्वीप का निवासी होगा और शादी करके ले जाएगा) करते हुए 'जन्मपत्री'[२] लिख कर दिया।

रत्नसेन के नाम में भी ज्योतिषी, सामुद्रिक और गुनीय पंडितों के आगमन का उल्लेख है। रत्नसेन का नाम (चित्रा के तीसरे चरण में जन्म होने 'र' के अनुसार रत्नसेन) रखकर और भविष्य कह कर (यह बालक सिंहलगढ़ जाकर रूप की पारस पद्मावती से जोगी के वेष में शादी (करेगा।) चले गए। इन दो उदाहरणों में ज्ञात होता है कि विवेच्यकाल में ज्योतिषियों की मान्यता थी और नामकरण संस्कार का भी महत्व था।[३]

माता तथा पिता के नामानुसार—पद्मावती और रत्नसेन के नामों पर विचार करने से एक बात का ज्ञान और होता है कि इन दोनों का नाम क्रमशः माता तथा पिता के नामों (चम्पावती-चित्रसेन) जैसा ही है अतः पैतृक नामान्त रखने की परम्परा सी जान पड़ती है। चित्ररेखा-रूपरेखा की लड़की है। यह भी इसी तरह का नाम है।

अभिप्रायपरक—पद्मावती और रत्नसेन के नामों में कवि ने कई अभिप्रायों की कल्पना की है। पद्मावती को रूपकीपारस, विश्वव्यापिनी ज्योति, शिव लोक की मणि, पूर्ण कला सम्पन्न चन्द्रमा का अवतार एवं रत्नसेन को उसका भक्त, सूर्य, रत्नों का खजाना, देदीप्यमान माणरूप रखा है।

---

(१) कन्या रासि उदै जगकिया पदुमावति नाउं जस दिया।।३।४ प (२) अही जन्मपत्री सो लिखी।३।८।१ प (३) (६।१) प की सभी पंक्तियां

सेनान्त नाम—जायसी ने चित्रसेन[1] गन्ध्रपसेन[2] रत्नसेन[3] नागसेन के नाम जिनके अन्त में 'सेन' हो। सेनान्त नामो का उल्लेख पाणिनि के अनुसार अष्टाध्यायी वैदिककाल के तैत्तिरीय तथा पतञ्जनि के अनुसार क्रमशः करिषेण, हरिषेण तथा ऋषिषेण एव भीवसेन उग्रसेन की आस्था मिलती है। पाणिनि काल से ही 'सेनान्त' नामो का काफी प्रचलन था। देवपाल नाम भी पालान्त नाम की परम्परा का है परन्तु शायद इसका जायसी काल मे कुछ लोपण होता जा रहा था।

वति और मती अन्त वाले नाम—पभावति, चपावति, मपनावति (सिंहावति का विकृतरूप सिंहासन-बत्तीसी की पाँचवी पुतली की कथा से सम्बन्धित) मुगुधावति (सन्देशरासक तैतालीस मिरगावति, पेमावति, नागमती, यशोमती (गोरा-बादल की मा जसौवे) सुरसती (रत्नसेन की माँ) मधुमालति। मझन कृत मधुमालति कथा) मैनावति आदि नामो से निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रियो के नाम के अन्त में वती-मती अथवा 'ती' का आना तत्कालीन समाज को प्रिय था। दुरुपदी[4], पिंगला, ऊखा[5], दमनहि[6] (दमयन्ती) नामो का उल्लेख भी है। चित्ररेखा[7] काव्य की नायिका पद्मावती की तरह चित्ररेखा ही है।

इनि्प्रत्ययान्त नाम—तत्कालीन समाज की निम्नलगींय स्त्री नाम में 'इनि' प्रत्ययान्त नामो का विवरण मिला है। कवि ने देवपाल की दूती का नाम 'कुमुदिनि[8] बादशाह की दूती वियोगिनि[9] (जो एक पातुर थी वियोगिनि बनकर पद्मावती के पास गई) पद्मावती की धाइ 'पुरइनि[7]' का जिक्र किया है।

तत्कालीन अन्य नाम चन्द्रभानु—बेनी[10], मुहम्मद,[11] गोरा-बादल-[12] हीरामणि[13] आदि नामो की चर्चा है। बेनी के नाम के बाद 'दुबे' शब्द जातीय सूचना देता है। मुहम्मद कवि का नाम हैं जिसके आगे-पीछे उपाधि एव स्थान सूचक शब्द

---

(१) चित्रसेन चितडा गढ़राजा ।६।१।१ प (२) गन्धपसेन सुगन्ध नरेसू २।२।१ प (३) नेहिकुलरतनसेनि उजिआरा ।६।१।२ प (४) ये शब्द जायसी ग्रन्थावली के प्रथम संस्करण की भूमिका अंश के पृ० २ पर जायसी नागमती नगसेनहि तथा कंवलसेन पद्मावति जाएव का उल्लेख है। (५) पानी भरहिं जैसे दुरुपदी २।१६।१ प (६) ऊखालागि अनिरुधवर बाधां २३।१७।७ प (७) जस नल तपत दामनहि पुछा ३४।२१।७ प (८) कुमुदिनि तूं बैरी नहि घाई ।४८।१४।१ प (९) (४६।२।२) प (१०) पुरइवि धाइ सुनव दिन घाई ४।१४।१ प (११) माउपिता कर बेनी दुबे ४८।४।६ प (१२) (१।२१ ।६ प महरीबाइसी की हर तेरहवी पंक्ति मे तथा और भी कई जगह। (१३) गोरा बादिल ५०।१।१ प (१४) धनि सो नाउ हीरामनि राखा ७।६।३ प

सगे हैं। मलिक उपाधि, जायसी स्थान सूचक। महरी बाइसी की हर ११ वीं पंक्ति में मुहम्मद शब्द आया है। उच्चकुलीन नामों में गोरवादल रनसैनिक प्रधान सहायक हैं। हीरामनि सुग्गे का नाम है।

पौराणिक नाम—रावन,[१] नल,[२] भोज,[३] विक्रम,[४] हमीर,[५] भभीखन,[६] राघौचेतनि,[७] सवन,[८] दसरथ,[९] अर्जुन,[१०] वररुचि[११] सहदेव,[१२] दंगवे,[१३] जलन्धर,[१४] अवरूक,[१५] (अक्रूर), भरथ,[१६] कान्हहि,[१७] बलवीर, बियास, कंस, राजकुंवर, कुंवरमनोहर, भीव, भागीरथ, सुरसर लिधउरदेव (एक कल्पित राजा) सुदेवच्छ, जाज जगदेउ, महिरावन, गोपीचन्द करन, सहसराबाहु, सिधदेउ, चित्ररेखा, कल्यानसिंह, पीतमकुंवर आदि नामों की भाइया में रावन-नल-भोज-विक्रम का प्रयोग अधिक मात्रा में है।

मुसलमानों के नाम—अमीर हमजा, सुलेमा, बुरहान, अलहलाद, दानियल, ख्वाजाखिज, हाजो (शेख इनके नाम के अन्त में लगता था) अमरफ महदी का उल्लेख है शेष नाम धर्म अध्याय में द्रष्टव्य है।

ऐतिहासिक नाम—नौसेरवाँ प्रसिद्ध ईरानी सम्राट ५३१/५७६ बड़ा न्यायी था। इसिकन्दर कुजलकरा (फारसी में जुलकरा का अर्थ दो सींगों वाला होता है। थीव्स नगर देवता अयन का वाहन मेष था चौथी शती ई० पू० में सिकन्दर दर्शन करने गया पुजारियों ने उसे अमनपुत्र कहा तभी से उसके मस्तक पर सींग अलङ्करण चला) 'फरऊ' ईमद्य का बादशाह, 'शदाद' जो खुदाई का दावा किया था 'बाबर' (हुमायूं का पिता), शेरशाह (शेर खाँ) सरजा (अलाउद्दीन का प्रधान

---

(१) लंका सुना जो रावन राजू २। २। २ प तथा आगे भी कई स्थलों पर एव १०।१३ मह० तथा ५५। ६ आ० क० (२) जल नल दमन दामनहिं पूंछा ३४। २१। ७ प (३) भोज भोज जस माने ९। १ प तथा आगे भी। (४) हौं सा भोज बिक्रम उपराहीं ४३। ३। २प (५) हौं रन थंभौर नाहँ हमीरू ४१। ३। ३ प (६) छांडी लंक भभीखनलेऊ ३२। ११। ५ प (७) (७) राघौचेतन कीन्ह पयानू १२। ४। ३ प तथा आगे भी (८) तथा (९)

सुरतन मरवन कैसुई मौं कांवरिहारहिं लागि।

तुम बिनु पानि न पावै दसरथ लावै आगि। ३१। ३ प

(१०) भौंह जितेउ अर्जुन धनुधारी ३६। १०। ४प (११) हारे वररुचि भोज ८। ६प (१२) कवि बियास पंडित सहदेव ३७। १। १प (१३) दंगवे पर-गाहा ३१। २। २प (१४) लै तपसवाँ जलंधम जोगी १०। १ ६प (१५) मा अकरूर अलोपी १०। १। ७प (१७) भरथ बिछोह पिंगलाअहि ४८। १२प

सहायक), अलाउद्दीन (दिल्ली का सुल्तान मलिक जहाँगीर आदि ऐतिहासिक नाम व्यवहृत हैं।

उपसंहार—जायसी काव्यों में 'सेनान्त', 'वती-मती' अन्त, 'इनि' अन्त तथा माल अन्त वाले नाम क्रमश बहुचर्चित हैं। ऐतिहासिक पुरुषों के नामों मे मुगलकालीन (बाबर) भारतीय सम्राट (विक्रम-भोज) विदेशी बादशाह सहाद नौ सेरवाँ) का उल्लेख किया है।

अभाव—पद्मावत जैसे महाकाव्य एवं जायसी की अन्य रचनाओ मे नामो की कमी का तथ्य कुछ खटकता है। खान-पान और पेड़-पौधों की पारम्परिक एवं विस्तृत नामावली का उल्लेख करने वाला कवि सोरह सहस पद्मिनी रानियो में किसी का भी नाम नही देता है।

उपसंहार—विवेच्य काव्यो मे सामाजिक रचना, हिन्दू और तुर्कों से गठित है। हिन्दूजातियो मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य' शूद्र इत्यादि हैं। मुसलमानों के शेख, सैयद, मियाँ आदि का उल्लेख है। अन्य जन-जातियो मे नाऊबारी भाट, डोम, हेला व्याध, कोहार, लोहार, तेली, धोबी, बगाली, भूँज, मांझी, पाखडी, चोर ठाढ़ी इत्यादि चर्चित हैं। विदेशी जातियो मे खसिया, मगर, हब्शी, रूमी, फिरगी आदि व्यवहृत हैं। हिन्दू मुसलमान के मेल की भावना का आभास बादशाह भोज खण्ड से होता है जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में धीरे-धीरे हिन्दू मुसलमान का सम्पक मधुर हो रहा था। लडाइयाँ जो होती थी, राजनैतिक थीं। उनका सम्पर्क सर्व-साधारण से नहीं रहता था। उल्लिखित परिवार में सयुक्त प्रथा का प्रचलन है। परिवार के अग पुरुषसत्ताक परिवार का विवेचन भी हुआ है। वश परम्परा, पिता के अनुसार है। दाम्पत्य प्रेम मधुर है। राजन्य वर्गों मे बहु पत्नीक प्रथा तो थी लेकिन बहु भर्तृता नहीं। परिवार के सम्बन्धो मे पाहुन तथा परदेशी भी समादृत हैं। आदर्श शरीर मे आँख, कान, नाक, मुँह, भौंह, बरौनी आदि सभी को उपमानों से व्यक्त किया गया है जिनके अलकरण मे सोलह शृङ्गार बारह अभरन की कल्पना हैं। नथ तथा बेसरि इस युग की देन है। शाकाहारी और मासाहारी दो तरह के खान-पान व्यवहृत हैं। तुरक बादशाह को भोजनोपरान्त पगडी गले में डाल कर सत्कार व्यक्त किया गया है जो हिन्दू तुरुक के समन्वय का प्रतीक है। शतरज चौपड, वसन्त (फाग) जल के नर्तन, गायन-वादन, क्रीडा विनोद मे उल्लिखित हैं। नगर वर्णन मे चित्तौड़ की चर्चा, सिंघल से मिलती-जुलती है जिनकी ऊँची पवरियाँ गढ़ की सुरक्षा खाई द्वारा, द्वारो से रक्षक विशेष उल्लेखनीय हैं। विश्वकर्मा की निर्माण विधि सराहनीय हैं। ४-५ प्रकार के वाहनों का उल्लेख है।[१]

---

(१) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय ३, सम्पूर्ण उपसंहार के लिए द्रष्टव्य

अध्याय ४

राजनैतिक दशा

राज

जिस तन्त्र में राजा अधिपति हो उसे राज्य कहते हैं। राज्य का परिलक्षण ऐतरेय ब्राह्मण मे भी हो चुका है। आलोच्य काल मे राज (राज्य) है। राज्य को परमराज की संज्ञा भी दी गई है। सुल्तान अलाउद्दीन ने राज के लिए;'देश' को व्यवहृत किया है। राज्य का स्वामी राजा होता था। मध्यकाल में भारतीय वसुन्धरा का कुछ भाग मुसलमानो के हाथ मे चला गया जिसका मालिक शाह पात साह और सुल्तान कहलाता था। सुल्तान ने हिन्दू राजा को देव कहा है। हिन्दू राघवचेतन ने सुल्तान को 'बडराजा' कहा है। कवि ने स्तुतिखण्ड मे ईश्वर को इसी संज्ञा से विभूषित किया है।

राज्यों के नाम—पन्द्रहवी शताब्दी का भारत जहाँ हिन्दू राज्य शक्तियों के उत्कर्ष का द्योतक है वहाँ दीर्घ काल से चले आए हुए अनेक हिन्दू राज्यों का पुंज बना हुआ है। जायसी द्वारा रचित ग्रन्थों से इसकी पुष्टि हो जाती है। इनमें सब मिला कर ऐतिहासिक राज्यों तथा राजधानियो के नाम इस प्रकार हैं :—दिल्ली, चित्तौड़, उड़ीसा, कुम्भलनेर, चन्देरी, ग्वालियर, नरवर, द्वार समुद्र, मारवाड़, मालवा, पुष्पावती, कामावती, चन्द्रपुर, सिहद, गिरिनार, खुरासान, हरेऊ, गोर बंगाला, रूम-साम, काश्मीर, ठट्ठा, मुल्तान, बीदर, देवगिरि, उदैगिरि, रणथमोर, जूनागढ़, चंपानेर, कालिन्जर, अजैगिरि। इनमे बहुत से छोटे-मोटे राज्य और काल है जिनका उल्लेख अलाउद्दीन की सेना के कूच के आतंक को द्योतित करने के रूप में हुआ है।[1] इन सबका विवेचन अध्याय दो में द्रष्टव्य है। यहाँ पर केवल मुख्य तीन राज्यों का वर्णन किया गया है—दिल्ली, चित्तौड़ तथा सिंघल।

(क) दिल्ली—दिल्ली का इतिहास महाभारत से मिलने लगता है। पांडवों ने खाण्डव वन का दहन करके इन्द्रप्रस्थ नाम से इसे सर्वप्रथम बसाया था। भारतीय संस्कृति में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसन्धान खोजों से अब तक अट्ठारह दिल्ली की खोज हुई है—

---

(१) (४२। १०) प की सभी पंक्तियाँ

हिन्दू काल की तीन दिल्ली

(१) पाण्डवों की दिल्ली	इन्द्रप्रस्थ
(२) अनगपाल की दिल्ली	अनगपुर अथवा अङ्गपुर
(३) राय पिथौरा की दिल्ली	महरौली

मुस्लिम काल की बारह दिल्ली

(१) गुलामा बादशाहों की दिल्ली	राय पिथौरा-महरौली
(२) कैकवाद दिल्ली	किलोखड़ी या नया शहर
(३) अलाउद्दीन की दिल्ली	सीरी
(४) गयासुद्दीन तुगलक की दिल्ली	तुगलकाबाद
(५) मोहम्मद आदिलशाह की दिल्ली	जहाँपनाह
(६) फिरोजशाह तुगलक की दिल्ली	फिरोजाबाद
(७) खिज्र खाँ की दिल्ली	खिजराबाद
(८) मुबारक शाह की दिल्ली	मुबारकाबाद
(९) हुमायूँ की दिल्ली	दीपनाह
(१०) शेरशाह शूरी की दिल्ली	शेरगढ़
(११) सलीमशाह शूरी की दिल्ली	सलीमगढ़
(१२) शाहजहाँ की दिल्ली	शाहजहाँबाद अथवा दिल्ली ?

ब्रिटिश काल की दिल्ली

(१) अंग्रेजो की सिविल लाइन्स

(२) नई दिल्ली

स्वराज काल की दिल्ली

(१) अंग्रेजो की बसाई नई दिल्ली ।[1]

इतिहासकारों ने दिल्ली शब्द की उत्पत्ति में कन्नौज के सेनाधिकारी द्वारा अपने राज 'डेलू' के नाम पर बसाए गए शहर दिल्ली से माना है । जायसी ने इसे 'ढल्ली'[2] रूप मे व्यवहृत किया है । कवि के समय दिल्ली में शेरशाह शासक था परन्तु जिस समय की घटना का पद्मावत में उल्लेख हैं उस समय वहाँ का अधीश्वर सुल्तान अलाउद्दीन था । इसका समय १३०३ ई० है । इसकी दिल्ली को 'सीरी' कहा गया है जिसे अलाउद्दीन ने दिल्ली से नौ मील पूर्व बसाया था । सम्प्रति यहाँ शाहपुर गाँव बसा है । तत्कालीन राजनीति मे सीरी को नई दिल्ली तथा पृथ्वीराज की दिल्ली

(१) दिल्ली की खोज—व्रजकृष्ण चांदीवाला—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (२) सेर साहि ढिल्ली सुलतान (१ । ३ । १) प ३

को पुरानी दिल्ली कहा जाता था। तैमूर और इब्नबतूता ने भी सीरी की चर्चा की है।[1]

जायसी कालीन दिल्ली में शेरशाह की दिल्ली है जिसे शेरगढ़ के नाम से अभिहित किया है। शेरगढ़ के किले को शेरशाह ने इन्द्रप्रस्थ के खण्डहरों में बनवाया था। जो मुसलमानों की दिल्ली में १० वीं है। शेरशाह ने छोटा किला गवर्नर के लिए तथा बड़ा जन सुरक्षा हेतुवर्ष निर्मित करवाया था।[2]

१. (ख) चित्तौड़ :—दिल्ली अधीश्वर अलाउद्दीन और चित्तौड़ नरेश रत्न॰ सेन के राज्यों का संघर्ष ही इस काव्य का केन्द्र बिन्दु है। सुल्तान ने और जितने राज्यों अथवा किलो को अपने अधीन किया उसके विषय में कवि मौन है। जायसी ने केवल उनकी गणना की है कि इतने राज्य शाह अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण की रणयात्रा के प्रयाण काल में साथ थे।[3] जिससे ज्ञात होता है कि वे उसकी सत्ता स्वीकार करते थे। चित्तौड़ शब्द तत्कालीन भाषा में 'चितउर'[4] था। यह वीरों की भूमि है। इस दुर्ग के गौरव को दिल्ली सुल्तान भी मानता था। सुल्तान ने यहाँ के राजा को जो पत्र भेजा है उसमे समानता का सम्बोधन है जिससे आभास मिलता है कि चित्तौड़ के शौर्य का प्रभाव शाह पर भी था।[5] सुल्तान के दूत 'सरजा' से उत्तर भेजते हुए चित्तौड़ नरेश कहता है 'जिसे कल आना हो वह आज ही आ जाए' यह चित्तौड़ की शाह के लिए चुनौती है। यह गढ़ हिन्दुओं की आन-बान का प्रमुख स्थान है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज मे इसके प्रति श्रद्धा और सम्मान का स्थान था। गन्धर्वसेन के दरबारी भाट राजा रत्नसेन के परिचय को बतलाते हुए कहता है—'जम्बूद्वीप में चित्तौड़ नाम का एक बड़ा देश है वहाँ के राजा चित्रसेन का यह बेटा है।[6] अला-उद्दीन ने रणथम्भौर के बाद यहाँ पर आक्रमण किया था।

१. (ग) सिंहल :—जायसी ने अपने काव्य में लंका और सिंहल को कुछ स्थलों पर एक तथा कुछ पर अलग माना है। डा० सूर्य नारायण पांडेय ने लंका और सिंहल को अपने शोधों के आधार पर एक ही माना है।[7] रमेश प्रसाद शर्मा ने भी

(१) दिल्ली की खोज—मजकृष्ण चांदीवाला (२) दिल्ली की खोज—मजकृष्ण चांदीवाला (३) (४२। १०) प की सभी पंक्तियां जिनमें इन राज्यों के नाम आए हैं। (४) चित्रसेन चितउर गढ़ राजा ३। १। १ प। (५) पत्र दीन्हे ले राजहि किरिया लिखी अनेग। ४०। २२ प (६) कालिहहोइ जेहि आवना सो चढ़ि आवे आज (४१। ५) प (७) पू० रा० रा० का मां० अध्ययन, पृ० ३८

अपने 'लंका के इतिहास' नामक पुस्तक में इसे एक ही मानते हुए कहा है कि 'अरब लोग इसे सरनद्वीप, पुराणों के आधार पर हिन्दू लोग लंका, वहाँ के निवासी राजा के नाम पर सिंहल तथा यूरोपियनों ने इसी का नाम अपभ्रंश सिंहल का सीलोन, माना है।[1] जायसी ने यहाँ के राजा का नाम गन्धपसेन दिया है। पद्मावती की जन्मस्थली यही है। गन्धपसेन चक्कवे सम्राट है, राज प्रबन्ध सर्वोत्तम है यही नहीं कवि ने इसकी दो खण्डो मे विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है।[2]

(२) **राजा** :—पाणिनि काल तक राजा के लिए ईश्वर, भूपति तथा अधिपति आदि शब्द प्रयुक्त होते थे।[3] परन्तु आलोच्यकाल में चक्कवे, छत्रपति, देवा नरपति नरिंद नरेसू नाह पहुमिपति भुअपति भुआरा राजा बडराजा राजेसुर राय पातसाहि सहि सुलतान तथा स्वामी इत्यादि शब्द व्यवहृत है।

चक्कवे, चक्रवर्ती सम्राट होता था। इसे चहुखन्ड के राजा शीश नवाते थे। छत्रपति राजा से छोटे होते थे। गन्धपसेन सभी छत्रपतियों का राजा था। मध्य-कालीन राजनीति में हिन्दू राजाओ के लिए 'देव' शब्द प्रचलित था। नांह शब्द स्वामी या राजा के लिए व्यवहृत होता था जो गर्वाक्ति एव अहम्मन्यता का द्योतक है। 'राय' तत्कालीन हिन्दू राजाओ का 'विरुद' था। इसका साक्ष्य तारीखए शेरशाही है। मुस्लिम सुल्तानों के लिए पादसाह, शाह एव सुल्तान शब्दो का प्रचलन था।

(३) **राजाओं का आचरण** :—यद्यपि भारतीय समाज का एक पत्नीव्रत ही आदर्श रहा है फिर राजा गणो मे बहुविवाह का प्रचलन था। तत्कालीन राजमहलो मे राजरानियों की सख्या की विशालता शौर्यका द्योतक थी। गन्धपसेन के रनिवास में १६००० रानियाँ थी।[4] बहु विवाह के कारण राजकीय वर्गों के रनिवास एव परिवारो मे सपत्नी कलह भी था जो नागमती और पद्मावती के विवाह खन्ड मे है[5] तत्कालीन हिन्दू राजाओं मे आत्मगौरव एव स्वाभिमान की भावना का प्राबल्य था। पद्मावत का नायक राजा रत्नसेन इसका उदाहरण है। हिन्दू नरेश मुस्लिम शक्तियों से सतत सघर्षरत थे। राजनैतिक असमर्थता एव विवशता की स्थिति मे ही वे सुल्तान का आधिपत्य स्वीकार करते थे। हिन्दू राजाओं में नीतिकौशल्य का अभाव था। पद्मावत में उल्लिखित अलाउद्दीन जब पराक्रम से उद्देश्य सिद्धि नहीं कर पाया तो

---

(१) रमेश प्रसाद शर्मा—लंका का० इ० प० १, ३ (२) (२। २० तथा सम्पूर्ण खण्ड एवं सिंहल द्वीप खण्ड की सभी पंक्तियां। (३) पा० का० मा० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (४) सोरहसहस पदुमिनी रानी, एक ते एक सरूप बखानी (२। २५। २) प (५) नागमती पद्मावती विवद खण्ड

विश्वासघात से उसे पूरा करना चाहा है, परन्तु अपने साथ गोरा और बादल के परामर्श की अपेक्षा विश्वासघात न करना उत्तम समझा है। परिणाम स्वरूप बन्धन में आना पड़ा है।[1]

(४) सुल्तानों का आचरण :—विवेच्य काल मुस्लिम सत्ता का युग है। कवि स्वयं मुसलमान है अतः रचना के आरम्भ में ही मुसलमान शाह की प्रशस्ति की है। आलोच्ययुग में शेरशाह सूरी एवं अलाउद्दीन का वर्णन है। अलाउद्दीन रूप लिप्सु एवं कूटनीतिज्ञ बादशाह था। पद्मावत में उसका आचरण हिन्दुओं के प्रति उदार तो है लेकिन अल्प मात्रा में, ज्यादा अनुदार ही है। क्योंकि रत्नसेन जैसे विश्वासी हिन्दू नरेश को इसने बन्दी बनाकर कारागार की कठोर यातनाओं से उसे प्रताड़ित करवाया है। शेरशाह की प्रशस्ति कवि ने शुरू में ही एक कुशल नायक एवं न्यायकर्त्ता शासक के रूप में की है। उसके द्वारा झरोखे दर्शन का जिक्र भी कवि ने किया है जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में झरोखा-दर्शन की प्रथा का प्रचलन भी था।

(५) अन्तःराज्य सम्बन्ध :—जायसीकालीन राज्यों के पारस्परिक व्यवहारों से स्पष्ट हो जाता है कि उनके अन्दर वैषम्य के साथ ही साम्य भी था। जहाँ एक ओर वे आपस में लड़ते रहते थे वहीं विदेशी आक्रमण की घटित से लोहा लेने के लिए वे आपस में 'चितउर' हिन्दुन करमाता 'की प्रतिज्ञा करके जान की बाजी लगाकर रणक्षेत्र में रणोन्मत्त सैनिक वीर सिपाही के रूप में भी खड़े हो जाते हैं। पारस्परिक व्यवहार कटुता का दिग्दर्शन भी रायदेवपाल और राजा रत्नसेन की लड़ाई से होता है। मुसलमानों ने तो आतंक फैलाया ही था अतः असमानता और असहिष्णुता व्याप्त थी। एक के बाद किले और राजधानियाँ शाह के आधीन होती जा रही थीं। जो शक्तिशाली है वही राज्यों का स्वामित्व ग्रहण कर सकता है यही पारस्परिक सम्बन्धों की युगनीति थी।

(६) राज्यों की अस्थिरता :—किसी भी बादशाह की महत्त्वाकांक्षा अन्य-राज्यों के बिगड़ने का कारण होती है। सम्प्रति चाउ एन लाई का विस्तार 'हिन्द-चीन' के वैषम्य का कारण है। राजपूत अपनी स्वाभिमानता तथा आपसी फूट के कारण मुसलमानी बादशाहों की साम्राज्य विस्तार एवं धार्मिक प्रसार आदि की महत्त्वाकांक्षा के समक्ष अपने राज्य की सुरक्षा न कर सके। आये दिन वे सुल्तान की सत्ता स्वीकार करते चले जाते थे लेकिन अवसर आने पर विद्रोह भी कर बैठते थे। अतः यह युग राज्यों की अस्थिरता का काल था।

(१) राजा बादशाह मेल खण्ड (२) रत्नसेन देवपाल युद्ध खण्ड १

हिन्दू शासन व्यवस्था

शासन का सर्वोच्च अधिकारी

राजा :—राजतांत्रिक प्रणाली में सर्वोच्च अधिकारी होता है। वह अपनी स्वेच्छा से शासन-कार्य चलाता है। राजा रत्नसेन की स्वेच्छाचारिता गोरा बादल की परामर्श के विरुद्ध अलाउद्दीन का स्वागत करना है। राजा की शक्ति का द्योतन 'रजाएसु' 'आन सोटिअन्ह फेरी' पत्र (फरमान) पाती आदि शब्दों से होता है।

मंत्री —शासन-व्यवस्था को सम्यक संचालनार्थ राजा को मन्त्रियों के परामर्श की आवश्यकता पड़ती है तथा जब राज्य सकटकालीन स्थिति मे हो तो मन्त्रियों का महत्व और भी बढ जाता है। मन्त्री लोग राजा की अनुपस्थिति में शासन की व्यवस्था को भी सभालते हैं। कादम्बरी का शुकनास, पृथ्वीराज रासौ का कयमास, चन्द्रगुप्त मौर्य का आर्य चाणक्य, मगधराज का अजातशत्रु, वत्सराज उदयन का यौगन्धरायण, अशोक के रामगुप्त, अवन्तिराज पालक के आचार्य पिशुन इत्यादि उदाहरण हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे मन्त्रियों के लिए 'आर्य ब्राह्मण' शब्द आया है। जायसी ने 'मन्त्री' शब्द का ही व्यवहार किया है। गन्धर्वसेन मन्त्री खण्ड मे इनकी चर्चा आती है। 'राय' जो मन्त्री बोले सोई से ज्ञात होता है कि मन्त्रियों की सख्या अधिक है। इनकी परिषद् भी हुआ करती थी। मन्त्री लोग राजा का प्रतिनिधित्व भी करते थे।

(२) न्यायपंडित :—न्याय-पडितों का महत्व 'गन्धर्वसेन मन्त्री' खण्ड में मन्त्रियों से उच्च जान पड़ता है। जोगियों के गढ़ पर चढ़ आने की सूचना पाकर राजा सवप्रथम 'पूँछे पास पडित जो पढे। भाव यह कि न्याय पडितों का तत्कालीन शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान था। इनसे राय लेने से यह भी आशय निकलता है कि उस युग के राजा धर्म-शास्त्र सम्मत प्रणाली का अनुगमन करते थे।

(३) मंत्रणा देना :—राजा न्याय पडितों एव मन्त्रियों से राय लेता है। *मन्त्री लोग चोरों को सिद्ध की सजा देते हैं तथा सूली की आज्ञा का प्रतिवाद करते हैं* परन्तु राजा पडितों के परामर्श के अनुसार सूली ही देना उत्तम समझता है। इसमे *राजा की स्वच्छन्दता एव शास्त्रज्ञों का महत्व द्योतित होता है।*

(४) पाट-परधानी :—परधानी *(पट्ट प्रधान) राजमहलों की सहस्त्रों रानियों* के मध्य एक पाट पर धानी का उल्लेख कवि ने किया है। गन्धर्वसेन की चपावति, चित्रसेन की सुरसती, रत्नसेन की पद्मावती और नागमती, चन्द्रभानु की रूपरेखा आदि रानियाँ पाटपरधान के पद पर अभिषिक्त थीं। इनके मस्तक पर बन्धन किया जाता था। राजा के लिए पाच शिखा प्रधान, रानी के लिए तीन शिखा, सेनापति और

युवराज के लिए एक शिक्षा के पट्टबन्धनों का उल्लेख वराहमिहिर ने किया है।[1] सोलह सहस रानी 'तिन्ह ऊपर चंपावति रानी'[2] से ज्ञात होता है कि और रानी इसके नियन्त्रण में रहती थीं। सभी अन्य रानियाँ इसे 'करें जोहारू' का वर्णन भी कवि ने किया है। पाणिनि ने इसे महिषी या पट्टमहादेवी की संज्ञा दी है।

राजकुमार :—जायसी ने अपने काव्य में कुवर तथा राजकुवर शब्द का प्रयोग किया है। बालक राजा या राजा का पुत्र यही अर्थ इन शब्दों का होता है। सभी राजपुत्रों मे पाट महादेवी के पुत्र को राजकुमार या राजपुत्र कहा जाता था। कवि ने जोगियों से लड़ने के लिए कुवरो को तैयार होने के लिए कहा है तथा दूसरे स्थल पर राजा रत्नसेन की वैवाहिक योग्यता सिद्ध करने के लिए कुवर बतीसो लक्खना का प्रयोग किया है। अतः ज्ञात होता है कि इनका भी राज्य में महत्व था और शासन व्यवस्था मे राजा के बाद इन्हीं का स्थान था।

राजसभा :—मन्त्रिपरिषद् के अतिरिक्त बड़ी सभा जो परामर्श हेतु बुलाई जाती थी उसे 'राजसभा' के रूप मे जायसी ने प्रयुक्त किया है। इसके वर्णन मे कवि ने इन्द्रसभा का साम्य उत्प्रेक्षा के सहारे किया है जो फुलवारी की तरह है, जिसमें मटुकबन्ध राजा (पार) सिंहासन पर बैठे हैं, जिनके यहाँ नित नौबत बजती है सभा सुगन्धित पदार्थों से सुगन्धित है इन सब के मध्य मे राजा गन्धर्वसेन इन्द्रासन के समान अपने राजासन पर सज्जित है।

सभासद् :—सभा की सदस्यता का अंकन भी जायसी ने किया है। जिनके दरवाजे पर नित्य नौबत बजती है, जो मटुकबन्ध हैं, रूपवंत हैं तथा जो छत्र धारण करते हैं ऐसे ही लोग सभासद, के सामन्त महासामन्त, माण्डलिक, महामांडलिक नृप महाराजा आदि होते थे। परन्तु कवि ने यहाँ पर गन्धर्वसेन की राजसभा का वर्णन अतिशयता से किया है जिसके सदस्य मटुकधारी छत्रपति ही थे।

पंडित, गुणी, ज्योतिषी बड़द्रस :—पंडित का स्थान राजदरबारों मे महत्वपूर्ण था। पद्मावती की जन्म घड़ी में पंडितो को आस्था है। वे पुरानों (पुरान ज्योतिष ग्रन्थ) से निकाल कर कन्या को सभी लक्षणों से सम्पन्न बताते हैं तथा आशीष देकर वापस चले जाते हैं। उनके पढ़ए बरिस मे पढ़ने की भी चर्चा है। विवाहों में भी पंडितों का मुख्य स्थान है। वे 'वेद मर्नाहि' ऐसी चर्चा है। चित्ररेखा में इन्हें बड़-दरस कहा गया। तथा उन्हीं के विश्वास पर राजा चन्द्रभानु अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी कन्या चित्ररेखा को किसी 'अजाव राजकुंवर के हाथों में सौंपने को उद्यत है। अतः ज्ञात होता है कि राजकुलों में इनका स्थान विश्वसनीय एवं बड़े य था।

(१) नागमती पद्मावती विवाह खण्ड (२) बृहत्संहिता वराहमिहिर

राय-राने शूर वीर :—गोरा और बादल राय थे जो रत्नसेन की रक्षा का पूरा ध्यान रखते थे जैसे एक 'अंगरक्षक रखता है परन्तु ये अंगरक्षक न थे। ये अद्वितीय शूर थे जो अपनी नवोढ़ा का तिरस्कार कर अपनी शूरता के प्रदर्शनार्थ रणस्थली का वरण करना उचित समझे हैं।

चार अधिकारी गढ़पति-अश्वपति-गजपति एवं नरपति भी हुआ करते थे। इनका स्थान सम्भवतः सैन्य व्यवस्था के दृष्टिकोण से था। राज्यकार्य में भी ये अपना स्थान रखते थे। सिंहली हस्तियों एवं रजवार तुरङ्गों का पहरा दरवाजों पर है। राजदुवार के नव दरवाजों के बाद दसवें दरवाजे पर जो मुख्य दरवाजा है उस पर आधुनिक 'गेट-कीपर' की भाँति परियाह की व्यवस्था है।

दूत—शासन में दूतों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। शाह के चढ़ाई की सूचना राजा रत्नसेन को दूत ही आकर देते हैं इसके बाद दूतों ने ही सन्देशवाहक का कार्य करते हुए युद्ध की तैयारी हेतु रत्नसेन को सूचना सभी हिन्दू नरेशों तक पहुँचाते हैं। इनके लिए जायसी ने परेवा, बसीठ एवं सीटि आदि शब्दों का भी प्रयोग अपने काव्य में किया।

दूती—दूती दूत की अर्धांगिनी नहीं अपितु राजा के लक्ष्य सिद्धि का माध्यम है। इसी के माध्यम से वह अपने विपक्षी राजा को अपने अनुकूल अथवा अधीन करता था। रायदेवपाल की दूती वामन जाति की कमोदिनि नामक थी जो अपने को चैनी दूबे की लड़की बताकर पद्मावती से प्रेम जताना चाहती है। राजा गन्धर्वसेन अपनी लड़की पद्मावती की चौकसी हेतु 'दूती' को रखता है।

शासन के कार्य

सुरक्षा—अफगानी और तैमूरलंग के आक्रमणों के अनन्तर राजा का प्रमुख कर्त्तव्य सुरक्षा बनाए रखना ज्ञात होता है। राजा की देवी उत्पत्ति के समर्थक भी प्रजा रक्षा को प्रधानता देते हैं। जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी' के द्वारा तुलसी ने भी इसकी पुष्टि की है। शासन में सुरक्षा के इस प्राबल्य की उत्पत्ति के कारण में डा० सूर्यनाराण पाण्डेय' ने बार-बार विदेशी आक्रमणों के परिणाम की सम्भावना की है।[१] जायसी ने सिंहलदीप नरेश गन्धर्वसेन की विशेषताओं में सर्वप्रथम छप्पन करोड़ सैनिक दल का संकेत किया है जिसमें सोलह हजार घोड़े और सात हजार सिंहली हस्ती भी थे। झाकने में असवयसाई, अवर्णनीय ऊँचाई और घेरा, सहस-सहस पाजियों से सम्पन्न वज्र के किंवाड़े वाले दरवाजे, पाँच कोटवार, नारगड़पती, रजवारतुरगा, आदि की योजना जहाँ गढ़ की सौन्दर्य कला

(१) पृथ्वीराज रासो का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २६४।

का मापकं वहीं सुरक्षा कार्य में भी महत्वपूर्ण है । गढ़ों की बुरजें सुरक्षा व्यवस्था में श्लाघनीय हैं । गन्धर्व सेन द्वारा पढ़े पंडितों से जोगियों के विषय शासन नीति पूछने पर 'मारहु सूली बेधि' का उत्तर सुरक्षा हेतार्थ ही है । दिल्ली सुलतान अलाउद्दीन के आक्रमण काल के रत्नसेन सैन्य-सज्जा सुरक्षा के लिए ही है । चित्तौडगढ़ की एक-एक पैंवरियों पर लाख-लाख रक्षकों की योजना उल्लेखनीय है । ढोली नगर में भी छत्तीस लाख ओरग हु असवार और बीस सहस हस्ती का प्रबन्ध वर्णनीय है ।

धरम और न्याय—आदर्श शासन के लिए भारतीय जनपद काल में धर्म की ज्यादा उपेक्षा थी । उत्तम शासन में राजा की धार्मिकता भी वांछनीय थी । जायसी ने सिंहलदीप की आस्था म मढ़-मंडप, जपा तथा रिखेस्वर-सन्यासी-रामजन बसवासी-ब्रह्मचारी दिगम्बर-सरसुती सिद्ध जोगी उदास महेसुर जंगम जती सती सेवरा खेवरा बानपरस्ती निष साधक अवधूत का जिक्र किया है । जो धर्म निरपेक्ष एवं धर्म बाहुल्य राजा का संकेत करती है । कवि ने कुरान तथा पुरान दोनों से साहाय्य लिया है । जिससे आभासित होता है कि हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों धर्मों का प्रचलन था । हिन्दू नरेशों और सुल्तानों दोनों की यही धारणा रहती है कि प्रजा उनके राज को धरमराज समझे । जायसी ने हिन्दू राजाओं एवं सुल्तानों द्वारा और किसी भी तरह के जैसे राजसूय यज्ञ गढ़-मंडप आदि का निर्माण इत्यादि) धार्मिक कृत्य का जिक्र नहीं किया है जिनका सम्बन्ध तत्कालीन राजनीति से है ।

न्याय—जायसी द्वारा विवेच्यकाल में सूली का प्राबल्य था । राजा रत्नसेन द्वारा 'पद्मावती की भीख' का उत्तर सुनकर 'बसिठन्हु मन उपजी रीसा' क्योंकि जो पीसत घुनं आइह पीसा । अर्थात् कर्मचारियों में अपराधों के प्रति भय की भावना थी क्योंकि कभी-कभी अपराधी के साथ उसके निरपराधी प्रासंगिक लोग भी दंडित हो जाते थे ।

प्राणदण्ड—दंडों की प्रक्रिया में प्राणदंड, हत्या, सिंहलो हस्तियों से कुचलवाना, वज्र के गोटों की चोट नागफॉस (फाँसी) आदि का उल्लेखनीय वर्णन है । चोर कर्म के लिए अति कठोर दंड सूली (प्राणदंड) दंड दिया जाता था । जोगी भी चोरों की तरह 'सेंध' लगाकर आए हैं अतः पढ़े पंडितों ने सूली ही देने का निर्णय दिया । जन्मखंड में सुआ के प्राणदंड की बात भी उल्लेखनीय है ।

देश निकाला—प्राणदंड के अतिरिक्त 'देश निकाला' दंड भी तत्कालीन न्याय का गौरव है । राजा रत्नसेन ने राघोचेतन के असत्य कथन से क्रुद्ध होकर आज्ञा दी 'मारौं नाह निसारौं देसू' ।

बन्धन—दंड विधान के अन्तर्गत 'बन्धन' का भी स्थान था । लोहे की हथ-

कड़ी, बेड़ी, गर्दन में सांकरि, डालकर अपराधियों को कठघरे मे छोड़ दिया जाता था, जहाँ पानी की जगह आग और सिर पर मोगरी की चोट पड़ती थी । इससे भी बड़ी यातना के लिए उसे 'खनिगड ओबरि' मे ले जाया जाता था जहाँ आधा गाड़ दिया जाता था तथा सर्प-बिच्छू उसके पास छोड़े जाते थे । प्रतिदिन शरीर पर नौ निसान दागे जाते थे । डोम लोग बाका (टेढ़ेफल का चाकू) छुआते थे । इत्यादि दड के प्राविधान का वर्णन जायसी ने रत्नसेन के बन्धन में किया है जिससे ज्ञात होता है कि इनका प्रचलन भी उस समय था ।[1]

संत—अपराधी को दड से मुक्ति दिलाने मे 'सत' बात और 'साखी' की मान्यता का प्राधान्य जान पड़ता है । दसौंधी भाट के 'सत में कहौ पौरकिनराजा' तथा हीरामनि सुए की साखी[2] से राजा गन्धर्वसेन, राजा रत्नसेन को सूली से मुक्त कर अपनी कन्या पद्मावती का दान देता है । भाव यह कि दडनीति निर्धारण में साक्षी और शपथ का स्थान विशेष था ।

उपसंहार—राजतन्त्रीय शासन प्रणाली में राजा, न्यायविद् पडित, मत्रीगण, राजागण, बसीठ इत्यादि मुख्य हैं । न्याय का सर्वोच्च अधिकारी राजा ही है । 'पडित जो पढै' का स्थान मन्त्रियों के अधिक सम्माननीय था । सभा मे राजा के अतिरिक्त मुकुटबन्ध, राजा, शूर, सामन्त गुणीजन एव सभासद आदि हैं । मन्त्रियों की अपेक्षा शासन मे राजनीति निर्धारण में पंडितों का अधिकार अधिक है । शासन का मुख्य कार्य सुरक्षा धर्म, न्याय तथा अपराधियों के दड की व्यवस्था है ।

युद्ध

कवि जायसी ने युद्ध के प्रसंग मे रन,[1] साका,[2] (बड़ायुद्ध), हूल,[3] भारथ, लरोई संग्राम फेरू एकौझा ढोवा बाध-काध चकाबूह खरभर धरहरि खेत (रणस्थली) डड जोहर आदि शब्दों को विचारों के स्पष्टीकरण हेत्वर्थ प्रयुक्त किया है । युद्धोन्मत सेनानियों के मनोरजनार्थ चित्तौरगढ़ की पवरी पर रचित रङ्गशाला के लिए अखारा शब्द व्यवहृत है । राजा गन्धर्वसेन द्वारा पकड़वाए हुए योगियों से युद्ध करने से 'महा-भारत' होने की सूचना देकर दसौंधी भाट गन्धर्वनरेश को सचेत करता है भारत ऐसी प्रलयङ्कारी युद्ध की विभीषिका की सज्ञा थी जिसमे सभी विनष्ट हो जाता

---

(१) रत्नसेन बन्धन खड के सभी दोहे । (२, पहिले भएउ भांट सतमारी । पुनि बोला हीरामनि साखी । राजैगानिरचौमनमाना । बांधा रतन छोरि कै आना ।—२५।१४।१-२ पद्मावत ।

(१) धीरखेत रन (१।२२।४) प (२) विक्रम साका कीन्ह (६।१) प (३) परी हूल जोगिन्ह गढ छेंका २३।१।२ प।

था। अतः इस तरह की लड़ाई से सभी डरते थे। कौरव-पांडव का युद्ध इसी तरह का था। आन-बान पर जान देने वाले राजपूत केसरी रत्नसेन अलाउद्दीन के दूत सरजा से अपने को 'सकवन्धी'[1] अर्थात स्त्रियों से जौहर करवाकर युद्ध में लड़ते हुए प्राण देने की प्रतिज्ञा करने वाला राजा के सदृश बताता है जिसे कल आना हो वह आज ही आ जाय'[2] रत्नसेन की इस युक्ति से ज्ञात होता है कि ये युद्ध के वरण करने में कितने उत्साही-जिद्दी एवं दृढ़प्रतिज्ञ थे। सुल्तान की रणयात्रा की भयकरता में रणभेरी पर डंडे[3] की चोट से इन्द्र तक को भयभीत चर्चित किया गया है। युद्ध की तैयारी के लिए 'साजा' शब्द व्यवहृत है युद्ध के बीच 'अखारा' रचना रत्नसेन की निश्चिन्तता का द्योतक है।

बादल की माता जसोवै द्वारा युद्ध हेतु प्रण न करने की याचना की अवहलना नई-नवेली-नवोढ़ा-माग मे सेंदुर भरकर, भौंहें धनुष की तरह कजरारे कारे ताखे नैन आदि काम के साहाय्यों से वहू ने उसे रोकना चाहा परन्तु बादल चलत न तिरिया कर मुख दीसा। पति प्रेम पिपासु आर्त हृदया बहू के द्वारा फेटा पकड़ने पर बादल कहता है 'पुरुस गवहिं धनि फेंट न गहा।' अर्थात शूर-वीर के लिए ये सभी व्यवधान तत्कालीन समाज में कुछ भी नहीं कर पाते थे उनके लिए पहले वीर रस तब शृंगार का महत्व था।

चक्रव्यूह बांध-कोप आदि की भी चर्चा है। युद्ध में खरभरि और हौली (हमला) तथा हूल भी होती थी। धरहरि तथा मेने की भी चर्चा हुई है।

रत्नसेन और अलाउद्दीन गोरा-बादल तथा शाह की सेना एव रत्नसेन तथा देवपाल के युद्धों का जिक्र जायसी ने किया है। रतिक्रीड़ा को कवि ने अपने आप चातुर्य से संग्राम जैसे चर्चित किया है। जिसका अभिप्राय काम युद्ध एवं साधारण युद्ध दोनों से द्योतित होता है।

रणस्थली—युद्ध को तीर्थ स्थल माना जाता था। बारहवी सदी के व्यावहारिक जीवन में रणक्षेत्र की वीरता का अधिक महत्व था। उस समय यूरप, जापान और मिस्र में भी ऐसी भावना परिलक्षित होती है। भारतीय मतानुसार वीरगति को (युद्धस्थली में मृत्यु) साक्षात मोक्ष माना जाता था। तुलसी के केवट ने भरत की लराई में दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे की चर्चा की है। शुक्रनीति से भी इस भावना का समर्थन होता है। डा० श्यामनारायण पांडेय ने 'चित्तौर' को तीर्थराज घोषित किया है। कवि जायसी ने 'चित्तौर' को हिन्दुन कर माता द्योतित किया है। रण में जूझने वाले वीरों का स्वागत स्वर्ग में अप्सरायें करती हैं। मुसलमानी विचार के अनुसार युद्धस्थली में मरने वालों को बिहिश्त (स्वर्ग) होता है। इस तरह के लोक

सम्मत आदर्श को जायसी ने भी अपने काव्यों के युद्ध परक प्रसंगों में उल्लिखित किया है।

रण शूरता—युद्धक्षेत्र में पराक्रम के प्रदर्शन को राजपूत अपनी विशेषता समझते थे। जहाँ आन पर माँ-बहनों की जला-जला पावन होली इस बात का प्रतीक है। वे अपनी युद्धोन्मत्तता वीरता, शूरता, पराक्रम आदि की जिद्द मे माँ के वात्सल्य, नवागन्तुक नवेली वहू के लाड-प्यार एवं उसके सोलह श्रृंगारिक प्रक्रियाओ इत्यादि का तिरस्कार करने मे अपनी शान समझते थे। गोरा बादल का युद्ध यात्रा-कालीन प्रसग इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। उन दो वीरों का कथन पहले वीर रस बाद मे श्रृंगार को महत्व देना युद्ध के प्रति अतिशय मोह का द्योतक है। इन वीरो की रण शूरता कहीं-कहीं अतिशयता में परिवर्तित हो जाती थी जो उनके लिए हानिकारक हो जाती थी। वे आपस मे भी अपने शौर्य के प्रदर्शनार्थ लड जाते थे जैसे रायदेवपाल और रत्नसेन का युद्ध। सम्भवतः आन-मान की अवमानना एक ऐतिहासिक कारण (आपसी-संघर्ष) मुसलमानो की समता मे यह भी बना।

युद्ध की भयंकरता—कवि ने युद्धोन्मत्त सैनिक प्रयाण का वर्णन धूम धाम से किया है। ग्रन्थारम्भ मे ही शाह की सेना-प्रस्थान से परवत टूटि मिलहि होइ धूरी आकाश डालने लगता है। इन्द्र डर जाता है। मेरु भसमसे, समुद्र सूखे आदि घटनाएँ घटने लगती हैं। अलाउद्दीन के आक्रमण में भी आसमान घिरने लगा, धरती में समाव नहीं हो रहा है, सरग-पताल डोलने लगे, सात खंड पृथ्वी घट खंड हो गई। सूरज छिप गया दिन में ही रात हो गई।[1]

जायसी द्वारा चर्चित ये सभी वर्णन पारम्परिक ज्ञात होते हैं इसी तरह संस्कृत में भी वर्णन उपलब्ध होते हैं। जायसी की यह विप्लवकारी योजना मानव क्रिया-कलाप एवम् उसकी शक्ति की अतिशयता का द्योतक है। मानव के प्रयाण से सृष्टि मे खलबली मचना मानव शक्ति के प्रसार का परिचायक है।

(५) **युद्ध वर्णन**—पैनी दृष्टि सम्पन्न जायसी ने घमासान युद्ध की सभी प्रक्रियाओ का सूक्ष्मता के साथ उल्लेख किया है। हथियारों की चमक-दमक[2] उनकी झनकार, उनका हल्कापन-भारीपन,[3] उनकी विषाक्तता-तीक्ष्णता अमोघता, हाथियो का चिंघाड घोडो हाथियो की रेल-पेल आदि का उल्लेख कवि ने किया है। हाथी से हाथी का भिडना, पर्वत से पर्वत के टक्कर सदृश उल्लिखित है संग्राम की अपूर्वता द्योतित करने हेतु कवि ने 'ऐसा संग्राम कभी नहीं हुआ था'[4] का जिक्र किया है।

(१) (४१। २२) प की सभी पंक्तियां। (२) चमके बीज होइ उजियारा ४२। ३। ३ प (३) औ गोला ओलाजसभारी ४२। ३। ६प (४) भा संग्राम अस भा काउ ४२। ४। १५

रुधिर से सागर भर गए, मसुखाए जोगिनि, जमुकन्द, गीध-चील्ह, काग आदि खुशी में ब्याही की तैयारी कर रहे हैं, वे मांडव छवा रहे है, इत्यादि वर्णन भारतीय युद्ध वर्णन परम्पराप्रित ही हैं। सावन और भादों की वर्षा की झड़ी सदृश बाणों की बौछारें हैं।

युद्ध प्रक्रिया

घेरा—युद्ध करने के ढंगों में घेरा डाल कर युद्ध करना महत्वपूर्ण था। दुर्ग को दुश्मनी सेना चारो ओर से घेर लेती थी। सभी प्रकार के गमनागमन को अवरुद्ध कर देती थी जिससे त्रस्त होकर गढ़पति उनकी शर्तों को मानने के लिए बाध्य हो जाय। जो दुर्गपति घेरा जाता था वह भी अपनी सुरक्षा के लिए घेरा पड़ने के पूर्व ही इतनी सुविधाओं का आयोजन कर लेता था कि उसे जल्दी मात न होना पड़े। रत्नसेन द्वारा सुविधाओं के प्रबन्ध को कवि ने 'गढ़ तस सजा जो चाहिए सोई। बीस बरिस तक खांग न होई' से द्योतित किया है। उसकी प्रबन्ध कुशलता को साठ-बरिस तक कमी न पड़ने की बात से भी दिखाया गया है। अलाउद्दीन आठ बरिस घेरा डाले रहा परन्तु चित्तौड़ में किसी तरह की अभाव स्थिति का आभास नहीं हुआ। इस तरह चित्तौड़ की दृढ़ता को कवि ने दर्शाया है।

बाँध—जब घेरा डालने से सफलता नहीं मिलती थी तो दुश्मन वधान बांधते थे। जो दुर्ग की पंवरियों की ऊंचाई के बराबर होती थी। चित्तौड़गढ़ की पंवरियां गगन चुम्बी थीं। उनके बराबर बांध-बंधवाना शाह ने शुरू किया जिसमें सीढ़ियों आदि का भी उल्लेख है। अतः यह आभासित होता है कि तत्कालीन रण व्यवस्था में बाँध बांधने का भी महत्व था।

बाचा—जोशीले भाषण, वीर रस के गाने, एवं रणभेरी के नाद वीरों की नस-नस को फड़का कर देते हैं। सैनिकों को उत्साहित करने के लिए उनके बिरद का गान किया जाता था। इन उपायों से सैनिक तैश में आकर मदमस्त हो जाते थे। रत्नसेन ने चित्तौड़ आने के लिए 'हिन्दुन कर अस्थान' सतुरतुरुक, हठ कीए पयान सुपहु आइ तुम्हार बड़ाई, नाहि तो सब गो छाड़ि पराई क्योंकि मेड़ टूटने पर द्वार की रक्षा असम्भव है, का निर्देश किया है। फलतः सभी ने एक होकर कूच किया। और चित्तौड़ को हिन्दुओं की माता की उपाधि दी। तथा जैसे गाढ़े में भी माता से नाता नहीं छोड़ा जाता उसी तरह चित्तौड़ से भी नहीं छोड़ा जाना चाहिए। यह भावना सैनिकों में रत्नसेन के उपलिखित कथन के प्रभाव से आई। अतः इसका भी रण क्रिया में महत्व था।

मनोरंजन व्यवस्था—राजा रत्नसेन द्वारा घमासान युद्ध कालीन स्थिति में

'अखारा रचना इस बात का प्रतीक है कि तत्कालीन रण-पद्धति में मनोरंजन का भी अस्तित्व श्लाघनीय था। जायसी ने युद्ध की विभीषिका तथा गढ़ की दयनीय स्थिति में राजा की इस योजना को 'तबहूँ राजा हिए न हारा। राज पवरि पर रचा अखारा उल्लिखित किया है। जिससे रत्नसेन के अदम्य उत्साह एवं अडिग साहस का ज्ञान होता है। पातुरो की पूरी नर्तक मण्डली के साथ नाच होना दो लक्ष्यों से हो सकता है एक तो अपने सैनिकों को उत्साहित करना तथा दूसरा सुल्तान को हतप्रभकरना कि तुम्हारे आक्रमण का इस गढ़ पर अभी कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है।

युद्धोन्मत्त शूरों की विशेषताएँ—युद्ध के बावले दीवाने वीर अपनी युद्ध की आतुरता मे शृंगार का तिरस्कार तो करते ही हैं वात्सल्य को भी नगण्य समझना अपनी शान समझते हैं। गोरा बादल माँ जसौवे के वात्सल्य—नवेली के सोलह शृंगार की अवमानना से इस प्रमाण को पुष्ट करते हैं। जिससे रत्नसेन ने भी मां सुरसुती तथा प्रेयसी नागमती की अवहेलना योगी होते समय की हैं। जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजपूत क्षत्री अपनी प्रतिष्ठा में किसी भी प्रकार के व्यवधान को नहीं सहन करते थे।

'हौं बादिला सिंघ रनवादी'। युद्ध मे योद्धाओं की गर्जना उनकी विशेषता थी। वे अपने को सिंघ कहते थे जो छिपाए से नहीं छिपता। मौंह-सौंह अकेले झूझने मे वे अपना महत्व समझते थे। आकाश पातार तक युद्ध करने का हुलास उनकी युद्ध प्रियता का उदाहरण है।

जौहर—तोंवर, बैस, पवार, गहिलौत, खत्री, प्रभृति खत्री बीर राजपूत लड़ाकू सैनिक युद्धस्थल मे एकत्रित हो गए और ढाढी नामक रणभेरी वादक रणनाद निनादित करने लगा। तब क्षत्रियो ने दृढ़ निश्चय करके जीवन को नि सार समझ 'तजिकै जिवन' मरन को उत्तम समझा और 'मरन तव ताका'। राजा रत्नसेन कहता है अब कुछ भी नहीं सूझना है केवल मरना है + अवशेष है। इसको ही इतिहासकारो ने 'जौहर' की संज्ञा से अभिहित किया है।

यशलिप्सा—रण में शूरता-पराक्रम-शौर्य एव वीरता का द्योतन वे अपने कर्त्तव्य समझते थे। जिसके परिणामस्वरूप अपने नाम की कीर्ति को ससार मे चाहते थे। बादल कहता है जब मे घोर युद्ध करूँगा तभी हाल जगत मह होइ अर्थात् मेरा नाम, मेरा यश मेरी प्रसिद्धि ससार मे होगी।

स्वामिभक्ति—बादल की स्वामिभक्ति काव्य में स्पृहणीय है। वह अपनी

(१) गोरा-बादल युद्ध यात्रा खण्ड (पद्मावत)

अनूठी नायिका से कहता है 'गजगामिनि' यदि तू गौने आई है तो मेरा भी गमन वहाँ है जहाँ मेरा स्वामी हैं। जब तक राजा छूटता नहीं तब तक मुझे शृंगार नहीं अच्छा लगेगा। खाडे से जीतने वाले की भूमिदासी बनती है। मुट्ठी की शोभा तलवार से ही होती है। जहाँ आँड नहीं वहाँ मोंछ और दाढ़ी भी नहीं। मेरी मोंछ तभी रहेगी जब मैं प्राणों की बाजी लगा कर अपने स्वामी की रक्षा कर सकूँगा। उसके लिए इन्द्रासन भी हटा दूँगा। पुरुष बात का पक्का होता है। जोगी खंड में राजकुमारों का रत्नसेन के साथ जोगी बनकर युद्धस्थली में प्राणों की बाजी लगाकर उतरना उल्लेखनीय है। सुल्तानी सेना में भी सरजा आदि सरदार इसके उदाहरण हैं।

दूरदर्शिता—हिन्दू नरेश का उदार हृदय छद्म से हीन होता था। राजा रत्नसेन अलाउद्दीन पर विश्वास कर लेता है। प्रीतिभोज देता है। दूसरी ओर धोखे से सुल्तान ने राजा को बन्धन में कर लिया। इस तरह की धोखे वाली युद्ध पद्धति को दूरदर्शिता अथवा रणनीति की कुशलता कहा जाएगा तथा रत्नसेन की गोरा-बादल की चेतावनी पर भी सुल्तान के प्रति निश्चिन्तता अदूरदर्शिता तथा रणनीति दौर्बल्य ही है।

वीरों की नामावली—विवेच्य काव्यों में सुल्तान अलाउद्दीन और राजा रत्नसेन के युद्ध-प्रसंगों में दोनों पक्षों ने अनेक योद्धाओं के नाम आए हैं—सकबल्ली-विक्रम, हमीरू, अर्जुन, हनिवत, नौसेरखा, राघौ, इसकदर, राय, तोंवर, बैस, पवार गहिलौत, खत्री, पखवान, बघेल, अगरवार, चौहान, चंदेल, गहरवार, परिहार, मिलन हंस, कुंवर, मलइत, धनुकार, कुंवाहुल, जाज जगदेउ, उमरा-मीर, खुरासान हरेऊ, गौर, बगाले, रूम-शाम, मुल्तान, ठट्ठा, उदैगिरि, कुमायूं, खसिया, मगर आदि सातों दीप नवों खंड के वीर तथा जगी आदि का उल्लेख कवि जायसी ने किया है। राय और राने शब्द भी राजपूतों के लिए आए हैं। पहलवान, बरिवंड, जोधा, कांधा, सूर धानुक, बीर, बली, बरियार, माल, मल्ल, जुझारू, रनवादी आदि पर्याय शूर-वीरों के लिए प्रयुक्त हैं।

संक्षिप्त—जायसी ने वीरों की समस्त विशेषताएँ बादशाह चढ़ाई खंड, राजा बादशाह युद्धखंड, गोराबादल युद्धयात्रा खंड इत्यादि स्थलों पर बड़े विस्तार के साथ उल्लिखित किया है। दिल्ली सुल्तान की गरिमा के समक्ष रत्नसेन झुकता नहीं वरन् कहता है 'कान्हि होइ जो आवन चढ़ि आवै सो भाग'। शत्रु से भयभीत नहीं हुआ। अपयश नहीं प्राप्त करना चाहता, गृहिणी की रक्षा परम कर्त्तव्य समझता है। शनिगारि-श्रोवरि में भी गृहणी देना न स्वीकार करना, माता तथा स्त्री का युद्धो-

म्मसता मे अवमानना करना इत्यादि इन राजपूतों की विशेषताएँ हैं । इनसे इतिहास भरा पड़ा है । डा० बृजनाथ सिंह[1] ने भी इसको चर्चित किया है ।

सेना

सेना क पर्यायस्वरूप अनी, कटक, दर, दल, सेन, पौलाद (फौलाद) आदि शब्द व्यवहृत हैं । दर शब्द पैदल कटकदाई सेना के कूच के लिए प्रयुक्त है । परम्परानुसार जायसी ने भी चतुरंगिणी सेना का उल्लेख किया है । सिंघल द्वीप नरेश के पास छप्पन कोटि कटक दर है जिसमे सोलह सहसघोर, सात हजार सिंहली हाथी भी हैं । सुल्तान अलाउद्दीन की सेना मे हस्ति घोर, दर, रथ वेसरा (खच्चर) ऊँट का जिक्र है ।

रथ—'आगे रथ सेना भइ ठाढ़ी' से ज्ञात होता है कि रत्नसेन की सेना मे *अगली टुकडी रथ की थी जबकि सुल्तानी सेना में अगली टुकडी घुडसवारों की थी ।* शाह की सेना में रथों का प्रयोग तोपो के वाहन रूप मे हुआ है जिसे खीचने का काम हजारों हाथियो की पंक्तियाँ करती हैं फिर भी वे नहीं डोलती हैं । कवि ने उनकी विशेषता सोने मढे उनके चलने से ऊँच खाल वन वेहड होत बराबरी आउ" से द्योतित की है ।[2] रथ के घोडो के लिए 'रथवाह' शब्द प्रयुक्त है ।

असुदल—'*पैगह सुल्तानी' शाही घुडसवार सेना के लिए व्यवहृत है जिसमें* तेज और बाके के काण देश के घोडे, काले, कुम्मेत, लीले, सनेवी, खग, कुरग, बोर दुर, किंवी, अवलक, अवरस, अगज, शीराजी, चौधर, चाल, समद, रँग के ताजी, खुरभुजी, नुकरा, जरदा रंग के, अगरान, बोलसिरि, पंचकल्यान, सजाव, मुश्की, हुरमुजी, ईराकी, भोथार, सलोतरी, तुर्की, बुलाकी आदि घोडे चले ।

साज—इन घोडो को परवरें (कवच) बाग (लगाम) सार (घोड़े की फौलादी कवचें जिन पर सोने का पानी ढला होता है । जराऊ जीन, पलान आदि से सजाया गया था । डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने ढेआ, गजझाप, चौरासी और पारवर को हाथी तथा घोडा दोनों की साज माना है । सुल्तान की सेना में इतने तरह के घोडो की सख्या तुर्कों की अश्व प्रियता का आभास दिलाती हैं । कीर्त्तिलता के तुर्क भी इसके साक्ष्य हैं । नब्बे लाख असवारो को चर्चा जायसी ने की है उनकी आख्या में तत्कालीन प्रचलित सभी रग तथा सभी देश के प्रसिद्ध घोडो का उल्लेख है । रत्नसेन के घोडों में तुपारा का ही जिक्र विशेष है । घोडे इतने ऊँचे हैं कि सवार को सीढी लगाना पडता है । राज तुरगम इन्द्र तथा सूर्य के घोडो को भी नतमस्तक करने

(१) समाज के कुछ रूप, पृ० ६४, डा० बृजनाथ सिंह । (२) (४१।८) पद्मावत की सभी पंक्तियाँ

वाले हैं। उन घोड़ों के लिए जो रथ खींचने का काम करते थे रथवाह शब्द आया है।

गजदल—घुड़सवार सेना की आंशिक सफलता ने मध्यकाल में गज सेना को जन्म दिया। इन्हें फौलादी दीवार भी कहा जाता था। हाथियों से बड़ी से बड़ी दीवालों को तोड़ने का कार्य भी लिया जाता था। परन्तु दुर्भाग्यवश जब कभी इनके सूँड़ कट जाते थे, दांत टूट जाते थे तो वे अपना-पराया कुछ न समझ कर दोनों दलों के विघटन में संकोच नहीं करते थे। सुल्तानी सेना में लोहे की झूलों को पहने हुए, मेघ समूह के समान गर्जन करने वाले चांदों की दांत सदृश वाले, पृथ्वी को कंपा देने वाले, मतवाले जिनकी गन्ध से हाथी भाग जाते हैं, धरती पैंदी सहित उनके भार से धंस गई, भूकम्प आ गया, उनके पांव पड़ते ही पृथ्वी से पानी निकल पड़ा, संसार कांप उठा, कूर्म धस गया ऐसे मत्तगयन्द चल पड़े।[1] गजगामी मुख्य हाथी की सज्ञा थी। ये शाह की सेना में रथवाहक भी हैं। रत्नसेन की गजसेना में कवचों से सु-सज्जित सेत, पीत-राते-हरे, स्याम मदमाते गयन्दों की चर्चा है।

साज—हाथियों की साज-सज्जा में लोहे की झूलें, कवचें, अम्बारी-सिरो, सोने की वगरी, सोने की मंजूषा आदि का जिक्र है जिससे सिंहली हस्ती सजाए गए हैं।[2] हस्ती से हस्ती की लराई पर्वत से पर्वत के युद्ध की शोभा सदृश है।

पैदल—शाह की सेना में हाथी घोड़े के साथ पैदल सेना का भी उल्लेख है। सिंहलद्वीप के वर्णन में गढ़ के दरवाजे पर सहस-सहस पाजियों (पदातिसैनिक) का जिक्र है। सुल्तानी सेना में ऊँट खच्चर[3] का प्रयोग रसद सामग्री के वाहन स्वरूप हुआ है। अतः यह द्योतित होता है कि तत्कालीन सैन्य व्यवस्था में ऊट और खच्चर का भी स्थान था।

सख्या—जायसी ने गन्ध्रपसेन की सेना से छप्पन कोटि—जिसमें सोलह हजार घोड़े सात हजार सिंहली हाथी भी थे का जिक्र किया है।[4] तथा विषम गढ़ पवरी पर हजार-हजार पदाति सैनिक हैं।[5] रत्नसेन के मारने के लिए गन्ध्रपसेन ने चौबीस लाख छत्रपति, बाइस हजार सिंघली हाथी छोड़वाए थे।[6] अलाउद्दीन के

(१) (४१। ६) प की सभी पंक्तियाँ (२) (४१। २६) प की सभी पंक्तियां (३) (४१। ७) प की सभी पंक्तियां

(४) छप्पन कोटि कटक फर साजा—२।२।३ पदुमावत सोरह सहस घोर घोरमारा—२।२।४ प सात सहस हस्ती सिंहली—२।२।५ प (५) सहस-सहस तहं पैठे पाजी २।१७।प (६) चौबिस लाख छत्रपति साजे बाइस सहस सिंहली याले २४।३।४प

दिल्ली दरबार मे राघो चेतन ने छत्तीस लाख तुर्की सवार और बीस हजार हाथी को देखा।[1] परन्तु सेना के प्रयाण मे सुल्तानी गजसेना की सख्या जायसी ने एक लाख पचीस हजार[2] बताई है। नब्बे लाख[3] सवारो के साथ उसने रत्नसेन पर धावा बोला था। नर और हाथियो की एक हजार पक्तियाँ थी।[4] हाथियो की एक हजार पक्तियाँ तो तोपो को ही खीच रही थी।[5] कवि ने सुल्तानी सेना के लिए 'कटक असूझ अलावल शाही'[6] लिखा है। रत्नसेन के गढ की पवरियों पर नियुक्त सैनिको की सख्या एक-एक लाख बताई गई हैं।[7] दो लाख कुंवर द्वार की चौकसी पर थे। रत्नसेन की सेना की ओर कोई निश्चित सख्या कवि ने नही दी हैं। गोरावादल की युद्ध यात्रा खण्ड में सोलह सौ चण्डौल सोलह कुंवरि, तथा पद्मावती के निवास के साथ बत्तीस सौ घोडे लेकर चले।

प्रथम तराई युद्ध में ग्यारहसौ एक्यानवे बीस लाख घोडा, तीन हजार हाथी तथा अगणित पैदल सैनिक का जिक्र इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद[8] ने किया है। विग्र ने[9] दूसरे तराई युद्ध मे तीस हजार घोडा, तीन हजार हाथी और अगणित पैदल सैनिक बताया है। महाभारत की अठ्ठारह अक्षोहिणी सेना का वर्णन सर्वविदित है। अतः ज्ञात होता है कि सैनिक सगठन में सख्या शक्तिमत्ता का परिचायक थी जो विवेच्यकाल मे भी है। जायसी द्वारा उल्लिखित ये सख्याएँ मध्यकालीन राजनैतिक परिभाषाओ से सगृहीत जान पडती हैं।[9]

सैन्य अधिकारी—अतीत काल से ही सेना की अधिकारियो की सारिणी मिलने लगती है। जैसे महाबलाध्यक्ष, महासेनापति, महाबलाधिकृति आदि[10] जायसी द्वारा चर्चित सैन्य अधिकारियो में गढपति, गजपति, असुपति, नरपति[11] राय-राने,[12]

---

(१) छत्तीस लाख औरगन्ह असवारा बीस सहस हस्ती दरबारा—३८।१।१प (२) सवा लाख हस्ती जब चला—४१।६प (३) नब्बे लाख असवार सो चढ़ा—४१।१७।२प (४) (४१।१७।६प) (५) सहस हस्तिन्ह कै पांती। खांचहिं रथ डोलहि नहिं मांती ४१।१८।७प (६) (४२।७।१)प (१०) लख लख बैठि पंवरिया ४५। १प

(७) कुंवर लाख दुइ अंगोरे।४५।४।५ प (८) (५२।२) प की सभी पक्तियाँ (६) हिस्ट्री आव मैनुअल इण्डिया (१६२८ ई०) पृ० ११८-११६ (१०) फिरस्ता भाग १, पृ० १७५ (११) छप्पन कोटि कटक—११वीं-१२ शताब्दी मे कान्यकुब्ज का राज्य ३६ लाख गौड़, १८ लाख कामरूप और चोल ७२ लाख के लिए प्रसिद्ध थे। डा० अग्रवाल, टीका, पृ० २७७ (१२) स्टेट इन ऐन्सियण्ट इण्डिया, पृ० २६४, बेनी प्रसाद।

कुंवर,[1] भोगी (राजा से गुजारा पाने वाले सामन्त—जमींदार-मनसबदार इत्यादि) छत्रपति[2] पाजी,[3] कोटवार[4] मलदत[5] धनुकार[6] मीर-उमरा[7] सरदार मगर-खलिया[8] तथा परेवा[9] की चर्चा है। जिससे ज्ञात होता है कि राजा के पास अपनी कोई स्थिर सेना नहीं होती थी। वह आक्रमण काल में सभी अपने अधीनस्थ राजाओं से फरमान बुलाकर साहाय्य चाहता था। इन अधीनस्थ राजाओं को मासिक वेतन न देकर मनसबदारों अथवा जमींदारी प्रथा की तरह ही गुजारा दिया करता था। शाहीसेना के कूच व समय गढ़पति के काँपने का जिक्र है जिससे ज्ञात होता है कि सेना की सत्ता गढ़ों के रूप में थी। गढ़ जीतने से ही वह प्रान्त विजित समझा जाता था। असुदल-गजदल-नरदल-गढ़दल के अधिकारियों को असुपति, गजपति, नरपति तथा गढ़पति कहा गया है।

सैन्य व्यवस्था—सजोऊ[10] शब्द युद्ध के साज-बाज एवं सैन्य-व्यवस्था के के लिए आया है। बारिगह[11] एवं सरवान्[12] सम्बूकनस का पर्याय है। बैरख[13] (झंडा) धजा[14]-ध्वज[15] आदि का जिक्र है। समारू[16] स्कन्धवार है जिसे छावनी कहते हैं। असगे[17] प्राचीर के लिए है। रतनसेन की सेना मे आगे रथसेना है तथा पीछे अचल धजा की टुकड़ी है जो पीछे भागने वाले सैनिकों को रोकने में सहायक है[18]। मुसलमानी सेना में आगे दौड़ती हुई घुड़ सवार सेना है तथा पाछिल सेना का विस्तार दस कोस तक है[19]। हाथी से हाथी, घुड़सवार से घुड़सवार, पैदल से पैदल

(१) गढ़ पर बसहिं धारिगढ़ पवी। असुपति, गजपति औ नरपवी। ३।२०।।५ (२) करत जो राय साहि कै सेवा। तिनकहुँ पुनि इरु आवपरेवा।। ४१।१६।१ प (३) होड संजोइल कुंवर जो भोगी २४।३।२प (४) चौबीसलाख छत्रपति साजे २४।३।३ प।५) सहस-सहस उठे तहं पाजी।२।१७।२ प (६) फिरहिं पाँच कोटवार सो भंवरी २।१७।२ प (७) (४१।२६ प (८) धनेमो धम रा-मीर बखाने।४१।१०।१ प (६) ४१ ४१।१०।७ प (१०) टिप्पणी ४, द्रष्टव्य— परेवा सन्देश वाहक होता था। जो फरमान को चारों तरफ घुमाता था। (११) (१०।१।७ प (१२) (चितउरसींह धारिगह तानी ४१।७।५ प (१३) उठि सारवान गगन लहि छाए।४१।७।६ प—शामियाना बड़ा परदा—स्टाइन० फा० कोश, पृ० ७२३। वर्णरत्नाकार में इसे सरमान कहा गया है। (१४) बैरख ढाल गगन गा छाई ४।।१७।५ प (१५) पाछे धजा मरन कै गाढ़ो (४१।१२।५) प (१६) पाछे अचल धजा सो गाढ़ो।(४१।२७।३ प (१७) कहाँ मोर सब कटक संघारू—३४।८।१ प (१८) मयहूँ घाटि असंगे पाई ४२।०।६ प (६) (४१।२७।१) प (१९) अगिनैपोरी आगे आई। पाछिल धाद्दु कोसदस्स ताई। ४२।१।२ प

सैनिक लड रहे हैं[१]। रत्नसेन के सभी साथी गढ युद्ध में दक्ष थे मैदानी मे नही अतः वे सब गढ़ के भीतर किले बन्दी करके लडने को तैयार हैं[२]।

घेरा—सैन्य व्यवस्था मे घेरा डालने की प्रक्रिया उल्लेखनीय है[३]। शाह के द्वारा डाले हुए घेरे की उपमा कवि ने ग्रहण से दी है। रत्नसेन भी बीस-बरिस[४] तक की व्यवस्था करके गढ सुरक्षित कर चुका है। चक्रव्यूह[५] का जिक्र मात्र रति-क्रीडा में ही है।

गढ़वाल की लडाकू जाति खसिया एव नेपाल की मगर गढ तोडने की प्रक्रिया में कुशल होते थे। सुल्तान ने चित्तौडगढ़ की दीवार को सुरग लगा करके उडाने की क्रिया को इन्हीं लोगों को सौंपा। गरगज बाधकर किले पर गोले तथा तोपों की वर्षा की गई। बाचा तथा मनोरजन का भी सैन्य-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान था।[६]

अस्त्र के लिए अत्र तथा हतियार (हथियार) शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आकुस कटारी, धनुक, करवारू, (तरवारू) हिरवानी, (तलवार का नाम) खरग, खाडें, बनावरि, सेल, सर, चक्र, कुत, कुताहल, ढाल, ओडन, (ढाल), भारा (भाला), नैजनी, पनच, बजर, गोला, तिरसूल, कोल्हु, गाजा, बाजा, बजरगोट, बान, पववान (सींके) अगिनबान, विषवान, सकतबान, कमान, कुच (बत्ती) नारी (तोप) तोप, तुपुक, गुरुज, सागि, डाडा, गजबेलि, नागफास, लेजिम, खदगी, जत्र, सांटो, तबल, (फरसा), बाका, (छुरा) इत्यादि अस्त्रो की चर्चा हुई है। करवारू शब्द आज की हिन्दी का करौली है। यही सस्कृत का करपालिका है। हेरात की निर्मित तलवार 'खरग हिरवानी' कही गई है। सेल शब्दकाव्य में पाँच बार आया है। यह एक तरह का बल्लम है। जिसे घुडसवार रखना था। कुत को अमरकोश में प्रास का पर्याय माना है। नेजा, वर्छा, साग-सेंठी सेलार आदि पाँच तरह के भालों का जिक्र आइने अकबरी मे भी हुआ है। नेजा को पैदल सैनिक नही रखता था। जायसी द्वारा प्रयुक्त कुन्त ही वर्छा है ऐसा जान पडता है। इसे पदाति सैनिक रखता था। कमान शब्द इस काल मे तोपो के लिए चालू था। तोपों के मारोपन से ऊँच-खान बराबर हो जाता था। कवि ने तोपों की विशेषता लगभग सत्ताइस पक्तियो मे बडे ही मनोरम ढग से उपमानों के सहारे चर्चित किया है। सैनिको की पोषाक मे कूडि (टोप) (बख्तर) जेवा (कवच) खोली (टोप) राग (राग का कवच) उल्लिखित है।

---

(१) औ हस्ती हस्तिन्ह कह पेलैं ४२।११६ प तथा हस्तिन्ह सौं हस्तिन्ह हठि गाजहिं ४२।२।१ प (२) (४२।६) प की सभी पक्तियां। (३) (४२।७) प की सभी पक्तिया (४) गढ़वरु साँचा जो चाहिअ सोई। बरिस बीस लगि खाग न होई।४१।१६।१ प (५) २७।४।१) प (६) द्रष्टव्य—युद्ध की पद्धति इसी अध्याय मे

रण वाद्य—युद्ध के प्रसग में अंविरती, आऊझ, उपग, कुमाइच, मृग, झंझ, झांझ, तन्त्र, तुरू, तूरा, नागसुर, पखाउज, पिनाक, विरंठ, भेरी, महुवरि, मजीरा, रबाब, सिंगी, सल्ल, मुरमडलहूरूक आदि बाजों को ठाढ़ी बजा रहे हैं ऐसी चर्चा आई है।[1] क्रीड़ा-विनोद नामक अध्याय में इनका जिक्र हो चुका है।

युद्ध का कारण—मूल कारण स्वरूप पद्मावती का रूप यौवन ही खास महता है। राजा रत्नसेन ने योगी बनकर सुरग से सिंहलगढ़ में घुसना चाहा।[3] अलाउद्दीन ने चित्तौडगढ़[4] का घेरा डाला है। गोरा बादल दिल्ली[5] पर चढ़ाई किए हैं, रत्नसेन ने देवपाल[6] पर आक्रमण किया है। इन सबों के मूल में नारी पद्मावती, सुन्दरी पद्मावती ही है।

संक्षिप्त—विवेच्य कालीन शूर युद्धोन्मत्त, दिखाई पड़ते हैं। युद्ध की कलाबाजी को जीवन से भी बढ़कर माना गया है। माँ के वात्सल्य प्रेयसी के प्रेम से भी प्रिय युद्ध को माना है। दुर्ग की रक्षा का महत्व मा की रक्षा के महत्व की तरह माना गया है। सैन्य सचालन मे सेना को बाटकर उसका सचालन किया गया है। असुदल, गजदल, रथदल तथा पैदल का जिक्र है। हिन्दुओं मे गजो के प्रति तथा मुसलमानों मे अश्वो के प्रति प्रेम परिलक्षित हुआ है। गजपति, असुपति, नरपति, गढ़पति आदि सैन्य अधिकारियो का उल्लेख है। राय-राने, मीर-उमरा-कुवर भोगी भी सैन्य अधिकारी रूप में ही चर्चित हैं। राजा की स्थाई सेना का ज्ञान नहीं होता। गरगज बाधना, सुरग लगाना, अलगें (प्राचीर बाटना, घेरा डालना, रथ अथवा अश्वसेना आगे करना सैन्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण हैं अखारे की योजना युद्ध काल मे स्पृहणीय है। सत और गाय की शपथ दिलाना उत्साहवर्धक है। बाजे सिपाहियो मे जोश पैदा करने वाले हैं। उनकी पोशाक ढाल-तोप एव हथियार है।

उपसंहार—मात्र राजतत्रीय शासन प्रणाली वर्णित है। विवेच्य ग्रन्थो मे बाबर, शेरशाह, अलाउद्दीन, गधर्वसेन, रत्नसेन आदि शासकों का उल्लेख है जिनमें रत्नसेन को टाड ने भीमसी तथा अबुलफजल ने रतनसी माना है। नीति निर्धारण मे न्यायविद् पण्डितों का मत्रियो से उच्च स्थान है। राजा का सर्वाधिकार सुरक्षित है। मुकुटबन्ध राजा, शूर, सामन्त, गुणीजन, सभासद, तथा बसीठ आदि उल्लिखित

---

(१) (४२। ३)प की सभी पंक्तियाँ - झांझ (८। १) मह० में भी प्रयुक्त हुआ है। (२) द्रष्टव्य इस शोध प्रबन्ध का क्रीड़ा-विनोद नामक अध्याय। (३) (योगी खण्ड) पद्मावत (४) बादशाह की चढाई खण्ड, पद्मावत (५) गोरा बादल युद्ध यात्रा खण्ड (पद्मावत) (६) रत्नसेन देवपाल युद्ध खण्ड—पद्मावत

हैं। सुरक्षा धर्म, न्याय, तथा अपराधो के अनुकूल दण्ड व्यवस्था शासक के मुख्य कार्य हैं। दण्ड व्यवस्था में सूली, बन्धन, कालकोठरी इत्यादि चर्चित हैं। युद्धो में स्वाभिमान तथा आन-बान का विशेष महत्व है वीरों द्वारा शृंगार से अधिक वीररस को प्रश्रय दिया गया है। युद्ध के लिए प्राणाहुति का स्वागत करना स्पृहणीय है। सैन्य व्यवस्था में अश्व दल, गजदल, रथ, एव पैदल हैं। जिनकी सख्यायें छप्पन करोड़, नब्बे लाख, छत्तीस लाख, चौबीस लाख, बाइस सहस, सोलह सहस, सात सहस, इत्यादि बताई गई हैं। सैन्य प्रबन्ध पर अधिक बल दिया जाता था। सेना के अधिकारियों मे छत्रपति, कोतवाल, भलइत, मीर-उमरा, रावकुवर, पाजी, तथा सरदार हैं। युद्धनीति में घेरा डालना, बाध बाधना तथा छलछद्म का सहारा लेना उल्लेखनीय है। २२, २३ प्रकार के युद्ध वाले बाजे भी व्यवहृत हैं।[1]

---

(१) प्रस्तुत शोध का अध्याय ४, सम्पूर्ण उपसंहार के लिए द्रष्टव्य

अध्याय ५

धर्म-दर्शन

धार्मिक सम्प्रदाय

जायसी ने आलोच्य काल के सम-सामयिक प्रचलित अनेक सम्प्रदायों का उल्लेख अपने काव्यों मे किया है। इस्लाम[1], सूफी[2], रामानन्द[3], रामानुज[4], नाथ[5], सहजयान[6], जैन[7], शैव[8], शाक्त[9], तान्त्रिक[10], सतनामी[11], उदासी[12], परमहंस[13] इत्यादि सम्प्रदायों एव पथों की चर्चा हुई है। सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड में तपा (तपस्वी)[14] का दर्शन होता है। तपस्वी प्राय सभी सम्प्रदायों मे होता है। यह सभी धर्मों की अनुष्ठानिक क्रिया है। शरीर, वचन, और मन के सयम शुद्धि और

---

(१) पातसाहि गढ़ चूरा चितउर भा इस्लाम। (५६। ४) पद्मावत (२) सम्पूर्ण रचना ही प्रेमाख्यान-काव्य। ईश्वर को पत्नी रूप में स्वीकार करने वाले सभी स्थल। (३) कोई रामजन कोई मसवासी—यह अर्धाली जायसी ग्रन्थावली में 'कोई रामजती कोई निरवासी' इस रूप में है। (४) रामानन्द रामानुज की ही शिष्य परम्परा मे हैं अत' रूपान्तर से रामानुज ही हुआ। चौरासी आसन बर जोगी। खट रस विदक चतुर सोभोगी। २७। २६। २ प—इस पक्ति मे कामशास्त्र के ८४ आसनों का तथा हठ योग के ८४ आसनों का श्लेषार्थ से वणन किया गया है। योग साधना दोहा संख्या २।१६ प से २।१७ प तक २२।६प से २२। १० प, ३६। १२ पआदि कई स्थलों पर। (६) मरै जो जान होई तन सूना २७।४।३प यह सहज यान की परिभाषा मे उल्लिखित है। (७) सेवरा सेवरा बानपरस्ती (२। ६) प (८) कोई महेसुर जंगम जती २।६।७ प, (९) कोई एक परखै देवी सती २।६।७ प १०. राघव चेतन द्वारा यक्षिणी को सिद्ध करना—राघौ करत जाखिनी पूजा चहत सो रूप देखावत दूजा। (३७।२।६)प। परन्तु इस तान्त्रिक परम्परा की अवमानना राघव चेतन देश निकाला आदेश से की है। कवि को मत्र तंत्र पर विश्वास नहीं था। (११) कोइ एक परखे देवी सती ३।६।८प (१२) कोई निरास पंथ बैठि बियोगी। २। ६। ६प (१३) सिव साधक अवधूत २। ६प (१४) जपा तपा सब आसनमारे २।६।३प

सदुपयोग का नाम ही तप है।[1] जपा[2] वे लोग हैं जो अपनी धार्मिक क्रियाओं में जप को अधिक महत्व देते हैं। रिखेश्वर[3] शब्द का अभिप्राय: ऋषिश्रेष्ठ है। चूँकि यह जनसमुदाय में प्रचलित था अतः युग प्रतिनिधि होने के नाते जायसी ने इस शब्द का अकन भी अपने काव्य मे किया लेकिन वैदिक विचारको के अनुसार अभी तक कोई ऋषि हुआ ही नही। ऋषि तो मन्त्रद्रष्टा होता है। उसे ईश्वर का साक्षात् दर्शन होता है। श्रेष्ठ तपस्वियो को हम आज भी ऋषि कह देते हैं जो गलत है। चूँकि कवि हिन्दू धार्मिक शब्दावली का प्रयोग अपने काव्य मे कर रहा था अतः यही शब्द कैसे छूटता। सन्यासी शैव और वैष्णव दोनो होता है।[4] रामजन तथा मसवासी[5] इन शब्दो की जगह जायसी ग्रन्थावली में रामजती और विसवासी शब्द मुद्रित हैं। रामजन और रामजती शब्द दोनो भगवान के भक्त के लिए प्रयुक्त हैं। परन्तु डा० अग्रवाल ने रामजन से रामानन्दी सम्प्रदाय साधु की ओर इंगित किया है। विसवासी शब्द जो डा० अग्रवाल ने मसवासी माना वह अर्थ साम्य नहीं रखता। विसवासी[6] रामानुजी वैष्णव साधु होता है जो ईश्वर में विश्वास रखता है। परन्तु मसवासी तो महीने भर उपवासकर्ता होता है। उस समय ये दोनो बातें थीं—जिनका शुक्ल जी तथा अग्रवाल साहब ने अपने-अपने संस्करण मे दो विभिन्न रूपो मे अकन किया है। उपवास करने का विधान सभी सम्प्रदायो में है। सरस्वती और देवी के उपासक शाक्त धर्मावलम्बी हैं। निरास साधकों को उदास पथी कहा जाता है। कतिपय विद्वान अवधूत मार्ग के संस्थापक 'परमहंस' जी को तथा कुछ स्वामी रामानन्द जी को मानते हैं। 'जारि आतमा भूत'[7] से पचाग्नि तापने वाले साधकों का सकेत है।

तत्कालीन धर्म प्राण जनता कई सम्प्रदायो की शरण में भगवद् आराधना में लगी थी। बौद्ध धर्म जो ह्रासोन्मुख हो चुका था—जादू टोना के आश्रय से जी रहा था जिसकी आचार भ्रष्टता से बौद्ध धर्मावलम्बी गोरखनाथ ने एक अलग मार्ग ही चलाया जो 'नाथ पथ' से चला। जिसके आदि नाथ 'शिव' है। तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों की एक लम्बी आस्था 'सर्वाङ्ग-योग-प्रदीपिका' सुन्दरदास ग्रन्थावली,

---

(१) सनातन धर्म प्रवेशिका, पृ० ३६ (२) टिप्पणी १४ (पिछले पृष्ठ ५२) (३) कोई रिखेश्वर कोई सन्यासी २।६।४५ (४) स्वामी रामानन्द जी पहले शैव सन्यासी थे बाद में स्वामी राघव के उपदेश से वैष्णव हुए। ये रामानुज शिष्य परम्परा की चौदहवीं पीढ़ी में थे। इनका शैव नाम 'राम-भारती' था। (वैष्णव धर्मरत्नाकर, पृ० ८४) (५) कोई रामानुज कोई मस-वासी—डा० अग्रवाल—कोई रामजती विसवासी, ना० प्र० (६) रक्षष्येतीति विश्वासः (रामानुज सम्प्रदाय)। (७) (२।६) ५

'कबीर ग्रन्थावली' तथा बीजक आदि ग्रन्थों से प्राप्त होती है जो इस तरह है—दर्शन, छः, नौ नाथ, दस सन्यासी, बारह जोगी, चौदह शेख, अट्ठारह ब्राह्मण, अट्ठारह जंगम चौबीस सेवड़ा, चौरासी सिद्ध, छानवे सम्प्रदाय इत्यादि इनमें से जायसी ने लगभग चौदह-पन्द्रह का उल्लेख किया है।

इस समय बौद्ध तथा जैन का महत्व कम हो गया था। शाक्त सतनामी इत्यादि अस्तित्वपूर्ण सम्प्रदाय नहीं थे। सिद्ध, नाथ तथा शैव इनका प्राबल्य था। वैष्णव की भी कई शाखाएँ प्रचलित थीं। तन्त्र-मन्त्र को कवि ने अवमानना की दृष्टि से देखा है। जायसी ने शिव की शरण मे राम को दिखाकर शैव सम्प्रदाय को उच्च दिखाया है तथा पद्मावती के दर्शन से शिव भी मूछित हो जाता है।[१] जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ कुछ वैष्णवता उभरी है। क्योंकि वैष्णव परम्परा मे शिव भी शिष्य हैं। इन सब तथ्यो से ज्ञात होता है कि सूफी सम्प्रदाय जो भारत में प्रचलित हुआ वह कई सम्प्रदायों से प्रभावित था। भारतीय दर्शन, बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव आदि के प्रभाव के साथ कतिपय लोग 'न्यौप्लेटोनिक'[१] से भी प्रभावित माने हैं। ये शुद्ध इस्लामी नहीं थे। ये ईश्वर में आस्था, दृढ़ निष्ठा के साथ उससे प्रेम करने वाले थे। इस्लाम के भी प्रचार की बातो का जिक्र है जिससे आभास मिलता है कि ये इस्लाम के सहयोगी भी थे। भारतीय सूफी सम्प्रदायों में चिश्तिया, नक्शबन्दिया, कादरिया तथा सुहरावर्दिया प्रमुख हैं। जायसी के साथ ही अन्य भारतीय सूफी अधिकांशतः चिश्तिया सम्प्रदाय के ही हैं। जायसी ने सभी सम्प्रदायों की अच्छाइयों को ग्रहण करके उनको अपने सम्प्रदाय प्रविष्टि की जिसमें प्रेम को उच्चता प्रदान की अतः सूफीपन की झलक आ गई है।

साधना

शैवमतानुयायी नाथ योगियों की साधना—अपने काव्य पद्मावत मे कवि ने लगभग पचीस बार जोगी शब्द को व्यवहृत किया है। प्रेम मे बाउर राजा रत्नसेन अपने सभी राजसी ऐश्वर्य के प्रतीक पहनावे का तिरस्कार करके चन्दन जैसी देह मे भस्म लपेट लिया सिर पर जटा, मेखला (करधनी), सिंगी, चक्र, धधारी,

---

(१) काटि पवारा जैस परेवा। मर गा ईस और को देवा (२०। १०। १) प

जोगौटा, अधारी, रुद्राख, कंथा डंडा, मुद्रा, जपमाला, उदपान, बघछाला, पावरि, खप्पर आदि को धारण करके गोरख शब्द का उच्चारण किया। कांथरि, चिरकुट, गेरुआ भेष[1] भभूति, [2]धुनिरमाना[3] इत्यादि शब्द भी योगसाधना के प्रसंगो मे काव्य मे व्यवहृत हुए है। सौर सुपती[4] कुसे की साथरि[5] तथा सिंघछाला[6] आदि योगियो के आसन स्वरूप प्रयुक्त हैं।

योग साधना—कवि जायसी द्वारा वर्णित साधना में शैव मतानुयायी नाथ योगियो की पारिभाषिक शब्दावली की बहुलता है। इन्होंने योगियो की कुण्डलिनी साधना का अधिक प्रयोग किया है। योग साधना के अष्टाङ्ग योग, षड् चक्रभेदन, चौरासी आसन नवा दुवार, दसइ पवरि, इडा, पिंगला, सुषुम्णा आदि का सयोग उलटी साधना आदि को भी काव्य मे चर्चित किया है।[7]

---

(१) चला कटकु जोगिहकर कै गेरुआ सबभेष।
(२) भभूति जटा (४६।२।४ प
(३) रोंय-रोंव तन धुनि उठै (३१।२।) प
(४) सौर सुपेती फूलन्ह डासी (३६।४।४) प तथा (१२।१४।२) प भी।
(५) कुस सांथरि (१२।१४।२) प
(६) बैठि सिंघछाला होइतपा (१७।३।१) प
(७) अष्टाङ्गयोग ये हैं—

यम, नियम, आसन-प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान तथा समाधि यही अष्टांग योग है। इनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति दया, आर्जव, मिताहार, शौच ये दस यम हैं। जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य भगवत् अर्चन, तीर्थाटन, परार्थहा, तुष्टि आचार्य सेवा ये दस नियम हैं। चौरासी आसन हैं। तीन प्राणायाम हैं। मनसहित इन्द्रियों को वश में करना प्रत्याहार है। भगवद्रूप में मन को धारण करना धारणा है। भगवत के एक-एक अंगों में मन की स्थिरता ध्यान है निर्विषय मन को परमात्मा मे स्थिर करना समाधि है।

षट्चक्र[1] के भेदन की स्थिति में होने वाले अनाहत नाद के लिए 'अनहद् तथा सबद्'[2] का प्रयोग हुआ है। सिर कल्पना[3] समाधि[4] पवनबन्ध[5] (प्राणायाम) इत्यादि शब्दावली के सहारे अपनी योग परक साधना का उल्लेख किया है। जायसी ने काव्य चातुर्य से योग तथा भोग साधना का श्लेषार्थ के सहारे प्रस्तुतीकरण किया है। इड़ा पिंगला को बाधने से (रति क्रीडा में युगनद्ध होना) कुन्डलिनी से मेल होना सम्भव होता है। कन्था साधक द्वार द्वार फिरता है। अष्टाग योग के साथ दस इन्द्रियो और

(१) पट्चक्र कोष्ठक :—

चक्र का नाम	चक्र का स्थान	चक्र का आकार	चक्र की पाखुड़ियों की संख्या	पखडियों के अक्षर	चक्र का रंग	चक्र के देव
आधारे	गुदा	चतुष्कोण	४	व, श, ष, स		गणेश
स्वाधिष्टान	लिंग	गोल	६	ब, भ, म, य, र, ल,		ब्रह्मा
मणिपूरक	नाभि	त्रिकोण	१०	ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ,		विष्णु
अनाहत	हृदय	गोल	१२	क, ख, ग, घ, ङ च, छ, ज, झ, ञ ट, ठ,		रुद्र
विशुद्ध	कठ	गोल	१६	अ, आ इ ई उ ऊ, ऋ, ऌ, ए, ऐ ओ औ, अं, अः		जीव
आज्ञा	भ्रूमध्य	लम्बा गोल	२	ह० क्ष०		हंस
सहस्रदल	मूर्धा	गोल	१०००	अनंत, स्वरूपी		गुरु

टिप्पणी—अष्टांगयोग तथा पट्चक्र कोष्ठक—वैष्णवधर्मरत्नाकर (पृ९८-१००) से ग्रहीत हैं।

(२) (११) अख० (३) (जोसिर करहि कलप्य) ११ । ५ प (४) जोग मो रहे समाधि समाना—२७ । १ । ६ प (५) पवनबन्ध होइ जोगी जती १८ । ६ । ६ प

एक मन को भी साधना अनिवार्य होता है । द्वैत के भाव का समापन और एकाग्रता का आगमन उत्तम समझा गया है । 'तिरहेल' शब्द इडा पिंगला-सुषुम्णा के लिए आया है । कवि ने योग सम्बन्धी अभिप्राय परक कई सख्याओं का प्रयोग भी काव्य में किया है जैसे—एक (मन के लिए), दो (इडा-पिंगला, वायुविन्दु, प्राण-रेव, द्वैतभाव), तीन (इडापिंगला-सुषम्णा) चार (मन-बुद्धि-चित्त-अहकार) सात का (प्राण सात चक्र)(आठ चक्र, अष्टागयोग), (नौ इन्द्रिय द्वार) (दस इन्द्रियाँ), ग्यारह (दस इन्द्रियाँ, एक मन) बारह (आठ योगाग और अन्त करण चतुष्टय) सोलह (दस इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ और एक मन सत्रह दस इन्द्रियाँ पाँच तन्माता, मन और बुद्धि) आठरह (अष्टादश सांसारिक द्वन्द)[1] जायसी का कविन्लास ही सहस्रार चक्र है । सुषुम्णा के प्रवेश द्वार को क्रौंच मार्ग कहा जाता है । नाथ योगियों की उनटी साधना का भी व्यवहार हुआ है । शिव और शक्ति के मिलन को युगनद्धता बताया गया जो रत्नसेन और पद्मावती का मिलन है । 'डा० हजारी प्रसाद जी के अनुसार तत्कालीन धार्मिक समाज मे योग मार्ग अधिक प्रचलित था जिसमे पाशुपत और शैव का भी प्रभाव था । विश्व-विधायिका शक्ति ही कुण्डलिनी है[2] शिव और शक्ति के मिलन का सयोग ही इनकी चरम उपलब्धि थी ।

सिद्ध साधना—सिद्ध लोग सहजिया सम्प्रदाय के थे । इस मार्ग मे स्त्री-पुरुष चन्द्र-सूर्य के प्रतीक माने जाते थे । इडा-पिङ्गला, चाँद-सूर्य ही थे जिनकी अव-मानना करके सुषुम्णा मे प्राण स्थित करना उत्तम समझा जाता था । गंगा, यमुना, सोना-रूपा भी इन्ही को सम्बोधित किया गया है । इनकी साधना मे उनटी साधना का भी महत्व है । रत्नसेन को सेंध लगाकर चोरी करने की अनुमति सिद्धों की साधना से ही ग्रहीत है ।[3] सिद्धों के अनुसार कुधातु लोहा है जो साधना में शुद्ध होकर प्रेमरूप धारण कर लेता है । सहजयानियों में पाशुभाव क स्यवन स्थिति को मरणा-वस्था कहा गया है इसके बाद साधक साधना मे रत होता है जिस कवि ने 'मरजिया'[4] कहा है । सहज सुन्दरी के साथ योगी के विलास की स्थिति ही इनकी सिद्धावस्था है सिद्धों के लक्षण में कवि जायसी ने अँगों पर मक्खी न बैठना, पलक नहीं लगना, देह

(१) योग साधना तथा भोग साधना दोनों से सम्बन्धित शब्दावली एवं उसकी विशेष जानकारी के लिए संस्करण की सख्या २ । १६ तथा १७ एवं २२ । ६ तथा १० की सभी पंक्तियां पद्मावती रत्नसेनभेंट खण्ड २७-२४ एवं २५ की सभी पंक्तियों वाली व्याख्या एवं डा अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत टिप्पणी द्रष्टव्य, दोहा २७ । २२ वाली पूर्ण टिप्पणी । (२) हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ७०-७१ (३) जौ लहि चोर सेंधि नहिं देई । ।२२।८।६ प (४) मरै मो जानहोइ वन सूना २७।४ प तथा होई मर जिया आनहिहेरी ।१४।४।७प

के साथ छाया न होना, भूख और माया से परे होना इत्यादि का उल्लेख किया है।[1]

सूफी—कवि जायसी मुसलमान थे। उनकी उपासना में निराकार एव साकार दोनों की आराधना पद्धति का अभाव मिलता है। जो सूफी मत की ओर उन्मुख है।[2] सूफी साधक ईश्वर को अनन्त गुण शक्ति का समुद्र अपनी साधना क्षेत्र मे मानता है। ये सूफी कट्टरपन के विरोधी थे अतः मसूर को सूली दिलाई जिसकी चर्चा कवि ने रत्नसेन सूली खड म की है। ये लोग अपनी साधना मे किसी भी पीर अथवा पैगम्बर की मध्यस्थता नहीं स्वीकार करते थे। इनकी साधना प्रणाली अधिकांशत भारतीय सी जान पड़ती है। कवि ने ईश्वर को पुष्पो मे सौरभतुल्य माना है। जायसी ने इबलिस को जो इस्लामी मतानुसार शैतान है हमारे नारद को माना है। शरीर को जायसी न रामपुरी माना जिसे वेदो मे भी स्वीकार किया गया है शरीर ही उपासना क्षेत्र प्रदत्त करती है। जो इस क्षत्र मे ज्योति से काम लेता है वही भवसागर पार होता है। जायसी ने साधना की श्रीगणेशस्थली को पद्मावत में मुक्ति मे मुक्ति की ओर मुडने वाली स्थिति माना है। यजुर्वेद मे भी इस के प्रमाण हैं।

कवि ने ससार को बाजार माना है तथा क्रय-विक्रय का सुन्दर रूपक बाधा है। इस हाट में सचेत रहने का निर्देश किया गया है वरन् मूलधन भी खो जाएगा। इन्द्रियों के सदुपयोग की सलाह भी दी गई है।

चारिपथ—साधक के मार्ग मे चार विश्रामस्थली भी आती है इसको पार करने वाला ही सच्चा साधक होता है। शरीअत (शर अ-नियमो का ज्ञान है) तरीकत (नियम-सयम से कर्म करना) मारफत (भक्ति या उपासना) हकीकत (ईश्वर ज्ञान-उसकी उपलब्धि) ये ही चार स्थल हैं। प्रभु को जानने वाला ज्ञानी होता है उसी पर वह कृपा भी करता है। तथा उपासना न करने वालों पर ध्यान नहीं देता।

जप, तप, दान इत्यादि—शरीर, वचन और मन के सयम, शुद्धि और सदुपयोग का नाम तप है। कवि ने शरीर को तप का साधन माना है। तप पवित्रता का द्योतक है। तप मे मौन, स्मरण, अक्रोध, दान, जप, निर्लोभ इत्यादि भी आते हैं जो तरीकत के अन्तर्गत हैं—तप के समय स्वार्थ जो ईश्वर का शत्रु है, प्रमाद जो साधक का वैरी है, त्यागने की राय दी गई है। आत्मसयम के लिए तोबा (पश्चाताप) जहद (स्वेच्छा दारिद्र्य) सब्र (सन्तोष) शुक्र (धैर्य) रजा (तटस्थता) रिजाअ (सयम)

(१) सिद्ध अग नहि बैठे माखी। सिद्ध पलक नहि लागै आँखी। सिद्धहि संग होइ नहि छाया। सिद्धहि होइ न भूख औ माया। ।२२।६।२ प
(१) जायसी ग्रन्थावली भूमिका, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

तव्वकुल (ईश्वर कृपा) आदि को आवश्यक रूप मे कवि ने माना है। ये सब तप: साधना में सहायक हैं। इन सात सोपानों मे कवि ने यम-नियम इत्यादि रूप में नाथ योगियों का साहाय्य लिया है। जायसी की विचार धारा है कि ईश्वर के लिए साधक को विरही होना पड़ता है। प्रिय की रट में उसका मुँह तक सूख जाता है। जो ऐसा साधक होगा वही सच्चा होगा। प्रभु के प्रति श्रद्धा ही बाद में प्रेम भक्ति बन जाती है। यही सूफी प्रेममार्ग है। प्रेम मार्ग अत्यन्त कठिन है[1] पर यदि उसे साध लिया जाता है तो ईश्वरवत् साधक हो जाता है जिसे वज्द या वस्ल कहा गया है। प्रेम खड मे प्रेम की चर्चा है।

इस्लामी मजहब के भी इस्लाम[2] मुहम्मद[3] मूसा, पीर पैगम्बर, अली, उसमान सैयद अशरफ, अमर, हजमा, चारिमीत, इबलीस, हजरत, ख्वाजारिवज, दानियाल सुलेमा, मुरीद, मुरसिद, रसूल, ऊमत, जव (खुदा) फिरश्ता, जिवरैल, मैकाइल, इसराफील, अजराइल, मीर, फातिमा[4] हसन-हुसेन नबी-नूह, नूर, मोहिदी चिश्ती श्याम हौवा आदम सहस अठारह चालिसदिन चौदह धजा पांचबेर किताब आयत मजीद नमाज दोजख बिहिश्त सराय दरगाह कौसर पुलेसरात आदि शब्दो का साधना तथा अन्य प्रसंगों मे अपने अखरावट और आखिरी कलाम में ही प्रयुक्त किया है।[5]

शिव की साधना विष्णु की उपासना देवी की आराधना इत्यादि की चर्चा भी प्रसगवशात हुई है। शिव ही प्रधान उपास्यदेव हैं।

साधना के बाधक—सात समुद्रों की उत्ताल तरङ्गो की तरह भौतिक वासना का सागर ही प्रमुख बाधा स्वरूप है। लक्ष्मी द्रव्य एवं भोग की लालसा इत्यादि की भी चर्चा है। ये सब किलकिला समुद्रवत्दाहक हैं। गर्व प्रधान बाधक है।

गुरू—साधना मे दत्तचित्त कराने वाला गुरू ही होता है। साधक को स्खलन की स्थिति में भी सचेतन होना चाहिये। साधक को आत्मावलम्बी भी होना अनिवार्य है क्योंकि बिना मरे स्वर्ग नहीं दिखाता है। गुरू ईश्वर की छाया है। वही साधक के हृदय मे प्रभु के लिए विरह जगाता है। वही जोगी को कायाकल्प करता है। हीरामनि सुग्गे गुरू के उपदेश से ही राजा रत्नसेन जोगी बन जाता हैं। 'गुरो राज्ञा गरीयसी' की तरह कवि ने' गुरु कर आएसु' सर्वश्रेष्ठ माना है। जोगी रत्नसेन गुरु को ही मारने तथा जिलाने वाला मानता है। महरी बाइसी मे

(१) प्रेम कठिन सिर देइ सो छाजा (२) चित्तहर आ इस्लाम (५६।४) प (३) (१) आ० क० की हर तेरहवीं पंक्ति में यह शब्द आया है। कवि अपना नाम भी मुहम्मद ही रक्खा है। (४) आखिरी कलाम (५) अखरावट आ० क० में ही ये शब्द हैं पद्मावत में, इनमें से २,३ शब्द प्रयुक्त हैं।

गुरु हो नावका सेवक माना गया है। नाथपंथी गुरु को आदेश कह कर प्रणाम करते हैं।

संक्षिप्त—जायसी द्वारा चर्चित अनेक साधनापथो के अध्ययन से द्योतित होता है कि कवि ने बडे चातुर्य से अपने सूफी साधना रूपी गुलदस्ते को सजाने के लिए समसामयिक प्रचलित साधना मार्गों में से अधिकाशतः की बागवानो से सुन्दर सुगन्धित सौरभ युक्त पुष्प सदृश साधना सोपानो को ग्रहीत किया है। सहजयानी सिद्ध, शैव-मतानुयायी नाथ जोगी, बाउल, शैव, वैष्णव, निर्गुण सन्त, बौद्ध, जैन, शाक्त आदि सभी के मर्यादित एव आदर्श तत्वों को अपनी साधना में उन्ही की पारिभाषिक शब्दा-वली मे बडे ही चातुर्य एव दूरदर्शिता के साथ कवि ने युग धर्म के साथ सुर मिलाने हेतु प्रयुक्त किया है। अपनी सूफी साधना की उच्चता को इन्हीं शब्दो के सहारे सिद्ध की है पं० परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी द्वारा भारतीय कथानक, एव भारतीय शब्दा-वली की आड में अपने सूफी मत के सन्देश देने की क्रिया को 'कथाच्छलेन' की संज्ञा दी है। इस कवि ने भारतीय धार्मिक साधना के शब्दों को इस तरह से प्रयुक्त किया है कि उनका पार्थक्य परिश्रमसाध्य हो गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन साधनापथों के साहाय्य को कवि वहीं तक स्वीकार करता है जहाँ तक उसकी प्रेमी साधना के साधक रत्नसेन को पद्मावती प्रेमिका (ईश्वर) को प्राप्त करने में साहाय्य मिलता है इसके उपरान्त नहीं। यहाँ वे कुछ बाधा प्रदायक जैसे बनने लगते हैं वहीं वे उसका त्याग करके अपनी साधना की विशिष्टता सिद्ध करते हैं—'प्रेम कठिन सिर देइ तो छाजा' से साधना का श्री गणेश करते हैं। प्रेम की प्रशस्ति मे 'मानुस प्रेम भएउ बैकुण्ठो' तक कहा है। तत्कालीन धार्मिक पारिभाषिक शब्दावलियो मे से सूर्य, चन्द्र, साबरी, गौरी, बाम दक्षिण, सोना, रूपा, इडा-पिंगला, धूप-छाह उजान-साधना, पवनन्ध चौरासी आसन, अष्टागयोग भेदी (अष्ट चक्र का ज्ञाता) समाधि आदि को ग्रहीत किया है। परन्तु विलक्षणता तो यह है कि ये किसी सीमा के पश्चात् सूफी साधना मे समर्थ नही सिद्ध हो पाते। नायक रत्नसेन योग साधना में घर से चलता है परन्तु 'पाइहि नाहि जूझि हटि कीन्हे की स्थिति से योग साधना की असमर्थता सिद्ध होती है तथा कवि गुपुत साधना (आत्मज्ञान) की ओर इंगित करता है चोरी जिसमे सेंध करने की क्रिया का सम्पादन भी है की सलाह देता है। शैवमत की लम्बी योजना बनाई गई है। शिव ही प्रधान इष्टदाता है। परन्तु कवि अपनी प्रेम साधना की ईश्वर स्वरूपा अवतार पद्मावत के दर्शन से उसकी मृत्यु की चर्चा करता है।[१] इस्लामी साधना का भी पद्मावत के सुरति सड तथा अखरावट एव आखिरी कलाम से आभास मिलता है। कवि इन्ही शब्दो के बहकावे मे अपनी सूफी साधना जिसे

(१) उतरको देइ देख मरि गएऊ।

प० परशुराम चतुर्वेदी ने 'प्रेमसाधना की संज्ञा दी है का द्योतन करता है। वह अपनी साधना पर अडिग विश्वास रखता था। आत्मा-परमात्मा को समरस उसे देखना अभीष्ट था। जिसके लिए योग परक तथा भोग परक सभी साधनाओ का स्पष्टीकरण करते हुए अपनी बात प्रस्तुत की है। प्रेम मे योगी होना, सूली पर चढना, पद्मावती-पद्मावती जपना, सिद्धि गोटिका पाना, ईश्वर को स्त्री स्वरूप मानना, सुखवासी एक कविलास तक पहुँचने के बाद तद्रूप होना सूफी साधना के सोपान हैं।[१]

धार्मिक विश्वास और आचरण

'अधिकार, योग्यता, स्थिति, अवस्था, कुल और सम्बन्ध के अनुरूप मनुष्य के बोलने, बैठने, मिलने, कार्य करने तथा रहने आदि का उचित रीति को आचार कहा जाता है।' कवि जायसी का मन उदार रीति वाले अनेक मार्गों एव कर्मकांडो मे विश्वास रखता था। गृहस्थ मे रहते हुए भी सन्यास की साधना मे उनकी आस्था थी। श्रीमद्भागवद्गीता के निष्काम कर्मयोग के वे पूर्णतः पक्षपाती थे। परन्तु जन्मत· मुसलमान होने के नाते इस्लामी दुनिया के विश्वासो का भी समर्थन किया है। इन्होने पाप-पुण्य तथा धरम-करम आदि धार्मिक एव पौराणिक मान्यताओ की सहृदयता के साथ अपने काव्यो मे चर्चा की है।

पाप-पुण्य—मानसरोदक खण्ड मे पद्मिनी बालाओ की देह-यष्टि से उद्भूत सुगन्धि से मानसरोवर अपने को पवित्र तथा पुण्यात्मा समझता है। अपने सभी पापो का नाश मानते हुए कहता है अब मेरी स्थिति पुन्नि की हो गई।[२] अखरावट में जायसी ने सृष्टि के आरम्भ मे पाप-पुण्य के अस्तित्व को नही माना है।[३] शेरशाह के दर्शन से पाप के नष्ट होने की धारणा का उल्लेख हुआ है।[४] कवि का विश्वास है कि हत्या तथा पाप को छिपाया नही जा सकता है।[५] इस्लामी मजहब की प्रशस्ति एव प्रचारार्थ कवि कहता है कि मुहम्मद के दर्शन से भी पाप

(१) सूफी साधना की जानकारी मे प० परशुराम चतुर्वेदी के सूफी काव्य सग्रह मध्यकालीन प्रेम साधना, एवं मध्यकालीन प्रेमाख्यान तथा भक्ति का विकास, डा० मुन्शीराम शर्मा, जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल; पद्मावत डा० अग्रवाल, सूफी मत साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी, तसव्वुफ अथवा सूफीमत—श्री चन्द्रवली पाण्डेय, सनातन धर्म प्रवेशिका-रामप्रिय देव भट्ट शास्त्री, मध्ययुगीन साधना—क्षितिमोहन सेन आदि ग्रन्थों का साहाय्य लिया गया है। (२) पुन्नि दसा मैं पाइ गवावा ।४।७।७१ (३) तहा पाप नहिं पुन्न ।१। अख० (४) पाप जाइ जो दरसन दोसा ।१।१६।१५ (५) दुइ सो छपाए न.छिपे एक हत्या औ पाप । ९।४५

विनष्ट हो जाते हैं।[1] भगवान शकर के मण्डप स्तम्भ स्पर्श से ही पाप नाश का जिक्र भी है।[2] लोभ और पाप का साथ बताया है।[3]

करम-धरम सतनेम—कवि का ऐसा विश्वास है कि जो धरम-करम-सत और नेम से होगा वही अगाध समुद्र की उत्ताल तरगों के थपेडो को सहते हुए उन्हे लाघ सकता है।[4] धर्मी की विशेषता मे यम नियम के साथ पाढ़ित सिखे का होना उल्लिखित है।[5] पाढ़ित सिखे का अभिप्राय मुसलमानी कलमा हैं। रत्नसेन 'दरब' से ही करम-धरम को साध्य बताता है[6] जो सन्तात्मा जायसी को सह्य नही था अत: उसका सर्वस्व नाश को प्राप्त होना है। सन्तों की धारणा में तो सब कुछ प्रभु की कृपा पर आश्रित है।[7] सत् ही साथी-सेवक एव पार लगाने वाला है।[8]

सरग पातार—स्वर्ग और नर्क से सम्बन्धित कवि ने अमरपुर,[9] इन्द्रलोक इन्द्रासनपुरी, कविलास[10], बैकुन्ठ,[11] सिवलोक, मरनपुर, मिरितलोक, सरग[12], नरक, नरककुन्ड और पातार इत्यादि शब्दो का अपने काव्यो मे प्रयोग है। मरने पर पुन्यात्मा अमरपुर जाते हैं तथा पापात्मा नरककुन्ड मे या मृत्यु-लोक में, ऐसी जन धारणा का जिक्र है। मरने के बाद जीव को बैकुन्ठ धाम मिलता है। सिवलोक शैवमतानुसार स्वर्ग, कैलाश एव भगवान शकर की पुरी है। मुसलमानी विचारधारा से सरगो की सख्या सात है। टीकाकार ने सरग का तात्पर्य आसमान भी दिया है। सरग सिंहल के राजमदिर स्वरूप मा व्यवहृत है[13] जो जन्म लेकर मुहम्मद क. नाम नहीं लिया उसे नरक मे वास मिलता है।[14] इन उल्लेखों से आभास मिलता है कि कवि मुसलमानी तथा हिन्दू पौराणिक विचारो से ओत-प्रोत विश्वासों की चर्चा का समन्वित रूप काव्यो मे सग्रहीत किया है।

(१) दरसनदेइ मुहम्मद पाप जाइ सबकोई। आ० क० ६५ (२) जहां लोभ तहं पाप संघाती। ३२।१३।५प (३) दस मह एक जाइ कोइ करम धरम सतनेम। १४।३प (४) भए धरमी जो पाढ़ित सिखे (१।११।५)प (५) दरब त धरम करम औ राज: ३१-२।३ प इस दोहे की सभी पंक्तियों मे द्रव्य की महिमा का जिक्र है। (६) हाथ न रहा झूठ ससारा ३४।२।३ प, धनि लछिमी सबताकरि लेइ तो काह पछिताय। ३४।१५ प (७) सत साथी सत करसई वासू। सतइरवेइ लैला नैयारु ५।१।३प (८) हों तो अहा अमरपुरी यहां। ११।३।३ प (९) (२।३।१)प जन कविलास निअर भा आई। (१०) पुनि जीवहिं बैकुण्ठ पठावा। (२२।७) आ० क० (११) उठा जो सबद जाइ सिवलोका। २२।३।५प (१२) सात सरग जौ कागर:जरई (१।१०।२)प (१३) न जानहुँ सरग बात पहुँ कहा।—(२३।७।२२)प
(१४)   जो नहि लीन्ह जरय सो नाऊं'।
              तायहं कीन्ह नरक महं ठाऊं।—१।११।७ पद्मावत

मोख (मोक्ष)—जायसी के अनुसार कयामत के दिन कर्मों के लेखा-जोखा के बाद अपने नाम लेने वालों को मुहम्मद आगे बढ़कर मोख[1] दिलाएंगे। यह मुसलमानी मत है। सासारिक प्रपचो से 'निवेर' होने को भी मोक्ष ही माना गया है।[2]

तन्त्र-मन्त्र (जादू-टोना)—पाढ़ि[3] (मन्त्र), तत-मत[4], मन्त्र, गुरु (गुरुमन्त्र), चेतक (मोहिनी मन्त्र), टोना[5], वचन (कलमा), चमारिन[6], लोना,[7], नावत (झाड फूँक करने वाला) इत्यादि शब्दों को व्यवहृत किया है। देवपाल की दूती अपनी माया-जाल गुणज्ञता के पदर्शनार्थ देवपाल से कहती है मेरे मन्त्र से विसहर (साँप) भी वश में हो जाते हैं। जायसी ने तन्त्र मन्त्र की कटु आलोचना की है। तन्त्रीय साधना सिद्ध होने पर भी विनष्ट हो जाती है। राघौ-चेतन ने यक्षिणी की सिद्धि से कार्य किया था परन्तु उसकी अवहेलना हुई। गोरखनाथ ने तन्त्रमन्त्र के पचडे का सुधार किया था। जायसी ने इसी नाथ सम्प्रदाय को समादर की भावना से उल्लिखित किया है। मध्यकालीन भारत मे लोना चमारिन के टोने का बडा नाम था। लोग उसका नाम लेकर झाडते फूँकते थे। लोगों को इस क्रिया पर विश्वास भी था।

दिसासूल एव जोगिनी का वास—रत्नसेन बिदाई खड मे भारतीय धार्मिक विश्वास के अनुसार साइत का विचार किया गया है जिसमें जायसी ने सम्पूर्ण ज्योतिष का जिक्र किया—इतवार और शुक्र को पश्चिम में दिशा शूल, बृहस्पति को दक्षिण में अग्निदाह, सोमवार शनिवार को पूर्व में दिशाशूल, मगल बुध को उत्तर दिशा काल का वर्णन किया है।[8] तथा अनिवार्य यात्रा में इन सबके शोधनार्थ—

(१) ओन्ह विनउब आगे आरे करब जगतकर मोख ।१।११ । पद्मावत (२) आजु नेह सो होइ निवेरा। २५।२।५ प (३) विसहर नाचहिं पाढ़िव मोर। (४) कै जिय तन्त मन्त सो हेरा। (२२।६।७)प (५) भूला जोग छरा जनु टोना। ६१। १० २ प (६) एहिकर गुरू चमारिनिलोना ।(३७।३।६)प (७) भए विनु जिउ नाचत ओझा २०।१०।४प
(८) जायसी द्वारा वर्णित यात्रा में दिशाशूल के विचार की सारिणी

दिशाशूल विचार की सारणी नं० (१)

दिन		दिशा
सोमवार, शनिवार	—	पूर्व
आदित्यवार, शुक्रवार	—	पश्चिम
बृहस्पति वार	—	दक्षिण
मगलवा-बुधवार	—	उत्तर

मगल को निषिद्ध यात्रा समय— मुँह में धनिया—सोम को दर्पण, शुक्र को राई, बृहस्पति को गुड़, इतवार को पान, शनि को वायबिरंग, बुध को दही खाकर निषिद्ध यात्रायें की जा सकती हैं।[1]

कवि को यात्रा में जोगिनी चक्र का भी अधिक महत्व जनश्रुतियो एवं हिन्दू पौराणिक विचारधाराओं से ज्ञात हुआ। अतः इसका भी विशद विवेचन अपने काव्य मे किया है—जोगिनी और चन्द्रमा को तीसों दिन आठों दिशाओ मे घूमने वाला बताया है।

औषध सामग्री का चक्र नं २

दिन		औषद सामग्री
सोमवार	—	दर्पण
मगलवार	—	धनिया
बुधवार	—	दही,
बृहस्पतिवार	—	गुड़
शुक्रवार	—	राई
शनिवार	—	वायबिडग
इतवार	—	पान

इन वारों में इन दिशाओ की यात्रायें वर्जित हैं।

(१) परिमार्जनार्थ में जायसी द्वारा औषद् सामग्री का चक्र—३६।६५

मुहूर्त चिन्तामणि में चन्द्रमा की स्थिति का चक्र दिया गया है ।[१] जायसी के

१ राशि	नक्षत्र	दिशा	चन्द्रमा
मेष	अश्विनी-भरणी-कृतिका १ चरण	पूर्व	चन्द्रमा
वृष	कृतिका ३ चरण, रोहिणी मृगशिरा आधा	दक्षिण	चन्द्रमा
मिथुन	मृगशिरा आधा, आर्द्रा, पुनर्वसु ३ चरण	पश्चिम	चन्द्रमा
कर्क	पुनर्वसु १ चरण, पुष्य, श्लेषा	उत्तर	चन्द्रमा
सिंह	मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी १ चरण	पूर्व	चन्द्रमा
कन्या	उत्तरा फाल्गुनी ३ चरण, हस्त-चित्रा आधा	दक्षिण	चन्द्रमा
तुला	चित्रा आधा, स्वाति, विशाखा ३ चरण	पश्चिम	चन्द्रमा
वृश्चिक	विशाखा १ चरण, अनुराधा, ज्येष्ठ	उत्तर	चन्द्रमा
धनु	मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ १ चरण	पूर्व	चन्द्रमा
मकर	उत्तराषाढ़ ३ चरण, श्रवणधनिष्ठा आधा	दक्षिण	चन्द्रमा
कुम्भ	धनिष्ठा आधा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपद ३ च०	पश्चिम	चन्द्रमा
मीन	पूर्व भाद्रपद १ चरण उत्तर भाद्रपद रेवती	उत्तर	चन्द्रमा

मुहूर्त चिन्तामणि के अनुसार उपयुक्त नक्षत्र विचार है ।

अनुसार उल्लिखित जोगिनी चक्र भी नीचे दिया गया है जिसमें यात्रा निषिद्ध मानी जाती है।[1] कवि ने जोगिनियों और चन्द्र की दशाओं को गिनकर बचाने की चर्चा की है जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन जनसमुदाय का इन पर अडिग विश्वास था।

(१) जोगिनी चक्र जायसी द्वारा उल्लिखित :—

योगिनी वासस्थल	तिथि	वर्जित यात्रा की दिशा	शुभयात्रा की दिशा
दक्षिण में पश्चिम कोण	१२, ६, ४, २७	पश्चिम दिशा	×
पूर्व दक्षिण कोण मे	८, १६, २४, १	पूर्व-दक्षिण कोण	×
दक्षिण पूर्व कोण में	३, ११, २६, १८	दक्षिण दिशा	×
उत्तर दिशा मे	२, २५, १७ १०	×	उत्तर दिशा मे
उत्तर पूर्व कोण मे	२३, ३०, ८, १५	पूर्व दिशा	×
दक्षिण दिशा मे	२०, २८, १३, ५	उत्तर पश्चिम कोण	×
उत्तर पश्चिम कोण मे	१४, २२, २६, ७	उत्तर दिशा	×
पश्चिम दिशा में	२१, ६, १४,	उत्तर पूर्व कोण मे	×

तिथियाँ महीने की हैं। डा० वा० श० अग्रवाल ने अपनी टीका मे योगिनियों के ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मी नाम दिया है यही महीनेभर घूमती है। (टीका पृ० ४७३) जोगिनी की स्थिति किस तिथि को किस दिशा मे होती है इसका एक सूत्र भी है—पू० उ० अ० नै-द-प-वा ई।

असगुन, सगुन :—जायसी ने तत्कालीन समाज में प्रचलित शुभ, अशुभ के लक्षणों का भी अपने काव्य मे जिक्र किया है—चाँदी के कडाल में दही, मछली, जल भरे कलस सहित तरुणी, दही ले कहती हुई ग्वालिनि मौर लिए मालिनि, नाग के मस्तक पर बैठा खजन, मृग का दाएँ आना, बाईं ओर गादुर का बैठना, दाएँ साड का दहाडना, बाएँ अकासी धोबिन चील्ह का आना, लोवा का दरसन देना, बाएँ कुररी तथा दाएँ क्रौन्च का बोलना इत्यादि को महाकवि व्यास द्वारा उक्त सगुनो से महासिद्धि मिलने की बात का उल्लेख किया है। जनता का इन पर विश्वास था।

(८) अस्तुति, (प्रार्थना) :—नमोनारायन[१] दंडवत[२], अस्तुति,[३] परमारथ, ज्ञान, सत्त दान,[४] आदि का जिक्र आराधना मे है। पहले मन्दिर की चारों तरफ से परिक्रमा करके दडवत, तत्पश्चात् नमोनारायन की प्रार्थना करने का जिक्र है। ईश्वर से बिलकुल अनभिज्ञ बनकर "तुम्हारी" अस्तुति तक भी नही जानता की याचना करता है। दान करना चाहिए क्योंकि दान से मँझनीरा मे रक्षा होती है। ज्ञान की विला का महत्व भी प्रतिपादित किया है। जिसका मन परमार्थ मे है वही सच्चा ज्ञानी है।

मन्दिर तीर्थ :—देव अस्थान[५], महादेवमढ़, मडप, तीरथ,[६] मूरति तथा जगि[७] आदि शब्दों का प्रयोग कवि ने पद्मावत में किया है। भगवान शकर के देवालय को देवअस्थान की स ज्ञा दी है। रत्नसेन के भस्म होने पर सभी देवता उसे देखने के लिए आए। मढ, मडप से बडा होता है। इसमे पुजारी तथा छात्रो का आवास भी होता है ऐसे ही महादेव के मढ़ की चर्चा जायसी ने की है। मध्यकालीन धर्मानुयायी जनसमुदाय तीर्थों के नाम पर ही अपने कुण्डो आदि का नाम रखते थे। जिसकी चर्चा जायसी ने सिंहल द्वीप के कुण्डो के जिक्र मे किया है। मूर्ति पूजा मे जायसी विश्वास नहीं रखते थे।[८] रत्नसेन चित्तोड मे मरने तथा वही असुमेध यज्ञ करने का उल्लेख करता है, जिससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन राज्यों में असुमेध का अस्तित्व कुछ अंश तक बचा था।

पुरान :—जायसी ने पुरान[९] को क़ुरान के भावार्थ हेतु व्यवहृत किया है।

---

(१) नमो नमो नारायन देवा। १७।१।५ प (२) दंडवत कीन्ह मडप चहुँपासा १७।१।१प (३) जेहिविधि अस्तुति तोरि १७।१।प (४) दान करे रछया मँझनीरा ३३।१।५प (५) सकल देवता आइ तुलाने। दहुँ का लेइ देवअस्थाने। (२।१७।२) प (६) सब तीरथ ओ तिन्हके नाऊँ २।६।२प (७) करो जगि असुमेध—३८।४ पद्मावत (८) पाहन सेवा काह पसीजइ २१।४।५प (९) लिखा पुरान जो आयत सुनी—१।१२।४प

६४४-२५ ई० के बीच उसमान ने कुरान की आयतो को सुनकर लिपिबद्ध किया। जैद, मुहम्मद साहब के लेखक थे। जैद तथा अन्य ३ कुरेशी मिलकर सस्करण तैयार किया।

धार्मिक उपकरण—जोति[1] :—कर्त्ता ने जोति की सृष्टि की जो अखण्डता का वोधक तथा दीपक के प्रतीक स्वरूप है। ज्ञान को भी जोति की सज्ञा दी गई है। जनेऊ[2] टीका खप्पर, अघारी, किंगरी, मभूत, बघछाला, खडाऊ, संख आदि धार्मिक उपकरणो का चित्रण कवि ने किया है जिनकी चर्चा जोगी की वेश-भूषा मे हो चुकी है। ये सब धार्मिक व्यक्तित्व के चिह्न थे। सिद्ध गोटिका के विषय मे विश्वास है कि इसे मुँह में रखने से उडने की शक्ति मिल जाती है। मृत को जीवनदान देती है।[3] राजा रत्नसेन को गोटिका मिली जिससे गणेश का स्मरण किया।[4]

अन्य— काल[5], काढ़े[6], वेदगरथ[7], वलिभींव, पुरुविला (पूर्वजन्म), आगम[8] (साधना शास्त्र सिद्धान्त) सुमेरु[9] (हार के मध्य की मणि), सिरकरवत और सिर कलपना, अम्रित चोदह खड[9], तीनलोक, सबद अकूत[10], अनहदनाद, दसपथा, दसई अवस्था (मरण) दसव दुआर, पाँचो सगा (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) चौरगा[11] (चारो तत्वो से युक्त चार बसेरे,[12] दुइ करा[13] (पुरुष-प्रकृति) सहस अठारह[14] कुम्भकरन की खोपरी[15] आदि धार्मिक विश्वासो की भाव-भगिमा से सम्बन्धित शब्द आए हैं।

---

(१) कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू—१।१।२प (२) मस्तक टीका कांध जनेऊ। ७।६।७प विशेष द्रष्टव्य जोगी वेशभूषा इसी अध्याय मे।
(३) नाथ सम्प्रदाय, पृ० १७३, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी (४) सिद्धि गोटिका। २३।१।१प (५) काल कर काढ़ा। ४०।२। प (६) पुराणो के अनुसार विष्णु ने मत्स्यावतार मे समुद्र से वेदों का उद्धार किया था—१४। ४ प (७) वलिभींव—भारी या भयंकर वलि राजा की बलि मानी जाती थी २०।१४ प (८) मरनखेल कर आगम जहां (२३।१३।५)प (९) तीन लोक चौदह खड सबै परै मोहि सूझ।६।५प (१०) सबद अकुत—यह दिव्य ध्वनि है। १७।२।१प,(११) (१४।४) अख० मुसलमानों के यहां शरीर की रचनाओं में चार तत्व ही मानते हैं। (२२) चारि बसेरे जाइ पहूँचा (१६।५) अख० शरीयत, तरीक्त, हकीक्त, मारफत यही चार बसेरे हैं जो हिन्दू धर्म में क्रमशः ध्यान,(धारणा, प्रत्याहार तथा समाधि है (१३) (८।१) अख० (१४) कीन्हेसि सहस अठारह—१।४ प – इस्लाम मे सहस अठारह योनियां ही मान्य हैं जबकि,हिन्दू धर्म मे ८४ लक्ष योनियो की धारणा है। (१५) पाहन सेवा काम पसीजा (२१।४।५)प (१६) जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० १३५, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

उपसंहार :—कवि ने सम-सामयिक प्रचलित धार्मिक आचार-विचार की चर्चा बड़े अच्छे ढंग से की है। धर्म वही होता है जिसमे मनुष्य को ऊँचे उठाने वाले तथा आत्मा को विकसित करने वाले गुण हो। इसके साधारण—सत्य, दान विनय, शौर्य, आस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, धृति, सदाचार, पवित्रता तथा क्षमा ये १० लक्षण हैं। धर्म मे जिन कार्यों का निषेध है उनको न करना तथा जिनका विधान है उनको करना ही धार्मिकता है। कवि जायसी ने हमारी परम्पराओं के अनुसार इन विश्वासों आदि को चर्चित करते हुए मूर्तिपूजा का खण्डन सा किया है "क्योंकि उनकी उपासना निराकारोपासना है।" परन्तु हमारी भारतीय सभ्यता, वास्तु, कला, तथा भारतीय सामाजिकता का प्रतीक है राष्ट्र पताका को काठ तथा कपड़ा समझकर कोई सैनिक अवहेलना नहीं कर सकता। मूर्तिपूजन मे भारतीयता छिपी हुई है। अयोध्या, कपिलवस्तु, मथुरा, कोणार्क, खजुराहो, वृन्दावन में हमारी सभ्यता का प्राण है वहाँ की मूर्तियाँ हमारी शान हैं। फिर मूर्तिपूजन मे तो कुछ व्यय भी नहीं लगता। परन्तु कवि जायसी की इस पूजा मे आस्था नहीं थी। अधिकार योग्यता, स्थिति, अवस्था कुल और सम्बन्ध के अनुरूप बोलने-बैठने मिलने तथा कार्य करने को आचार कहते हैं चर्चा करना, अस्तुति करना, सिर कल्पना, कासी करवत लेना, ज्ञान, तप करना, दान देना, पाप-पुण्य, धरम-करम, मन्दिर-तीर्थ, सरग-पतार, जादू-टोना, दिशासूल, जोगिनी, सगुन-असगुन, आदि शब्दों के साहाय्य से प्रस्तुतीकरण किया है।

देव

हिन्दुओं के अधिकांश धार्मिक कृत्य देव-भक्ति परक हैं। इनकी योनि और नगरी दोनो मानव से भिन्न हैं। ईश्वर ने 'राकस' और 'देव' की सृष्टि की।[१] सुर देव के पर्याय स्वरूप है। देवताओं की संख्या तैतिस कोटि बताई है जो रत्नसेनि के सहायतार्थ चल पड़े हैं[२]। इन्द्र अमर तथा इनके वासस्थल को अमरपुरी कहा गया है। ईश्वर आदिदेव है। करतारू भी आया है।

इन्द्र—देवताओं के अधिपति स्वरूप इन्द्र की चर्चा है। इसकी इन्द्रपुरी है। यह कश्यप का पुत्र है। माता आदिति है। असुरराज प्रलोमान की पुत्री शची इनकी धर्मपत्नी है। पुत्र का नाम जयन्त है। इनका नन्दन नामक उद्यान बड़ा मनोरम है। मेघविद्युत पवन इनके अनुचर हैं। हाथी का नाम ऐरावत है। इनकी प्रकृति राजस है। छन्द तथा विद्या के आचार्य हैं। यह वर्षा का स्वामी है। जायसी ने इन्द्र के पास

(१) धरती आदि एक करतारू ११।१ प कीन्हेसि भोकस दैव दयंता ११४।७प
(२) तैंतिसकोटि देवता साजा २५।५।६प

प्रीत की प्रार्थना की चर्चा की है। जो षट्ऋतु वर्णन खंड मे रत्नसेन और पद्मावती के मिलन से पद्मावती को कृपा नहीं पा रहा है अतः वह देवाधिपति से अपनी दरख्वास्त करता है जिस पर भएउ 'इन्द्र कर आसमु' कि कभी किसी की प्रभुता होती है कभी किसी की।[1] यह बड़ी जल्दीडरने लगता है और तपस्वियों की साधना में विघ्न पैदा करने का उपाय करता है जिससे वह तप करके इन्द्रासन न ले लें, इस तरह के उद्धरण पुराणो में अधिक हैं। इसके डरने का अभिप्राय समस्त देवताओ से है। इन्द्र शब्द का प्रयोग करीब पच्चीसो बार हुआ है।

कृष्ण—गोपियों को त्यागने वाले, वन-वन फिरने वाले, कालिय मर्दनकर्त्ता के, राधा के प्रेमी आदि रूपो मे कृष्ण किरसुन, कान्ह[2] और मुरारी[3] आदि सज्ञाओ स कृष्ण की चर्चा कवि ने अपने काव्य में की है। कुबेर[4] धन सम्पत्ति के स्वामी हैं। कवि ने इनके लिए धन के कारण डुबन की चर्चा की न जिसकी डा० वा० दे० अग्रवाल ने अवहेलना करते हुए कहा है—यह बात मुझे अज्ञात है तथा इतना अवश्य है कि कुबेर की स्वर्णलंका को रावण ने छीन लिया था। शिव जी इनके मित्र हैं। उत्तर दिशा के ये पालक हैं।[5]

गनेस—देवताओ के गणपति प्रथम पूज्य गजानन विघ्नविनाशन उमा जी के पुत्र गनेस की चर्चा जायसी ने सिद्धि प्रदाता स्वरूप में की है। इनकी पूजा से सभी मनोवांछित फल मिल जाते हैं।

जम—मृत्यु के देवता जम हैं। इनकी विशेषता पाप-पुण्य के हिसाब से सबको नरक वैकुण्ठ का प्रबन्ध करना है। इन्हें काल भी कहा गया है। ये सूर्य के पुत्र कहे जाते हैं। मातृ नाम संज्ञा है। भगिनी यमुना है। इनका स्वभाव उग्र तथा न्यायशील है। रग काला है। इनकी नगरी सयमिनी है। पापियों के साथ कठोर, धर्मात्माओ के साथ कृपालु रहते हैं। पितरों के सभापति हैं। पापो के दंड प्रदाता हैं। इनके दूतों को जायसी ने 'लेनिहार'[5] कहा है।

दसरथ—दसरथ[6] और कौसिला, राम जो हिन्दू जनता के गले के हार हैं के पिता-माता स्वरूप काव्य में व्यवहृत हैं। नरायन[8] को 'बावन करा' (बावनावतार)

---

(१) २६।६।४)प तथा दोहा २६।६ प भी। (२) मूरति कान्ह—३४।२१।६ प, (३) कृस्नमुरारी २५।४।४ प (४) (३३।१। ७) प तथा पं० स० की टीका, पृ० ४८० की ७वीं। (५) औमैं सिद्धि गनेस मनावा २३।१।१ प (६) सनातन धर्म प्रवेशिका, पृ० २० (७) औ में सिद्धि गनेस मनावा २३।१।१ प (८) भएउ नरायन बावनकरा ।३०।१।४ प (६) किस्न बलि बाजस—४५।७ प

वाले विष्णु के स्वरूप में रखा है। किस्न[1] को विष्णु का पर्याय माना है जो वलि को छलने गए थे। हरि तथा बिसुन शब्द भी इनके पर्याय मे आए हैं। विष्णु के पर्याय में 'किस्न' शब्द का प्रयोग जायसी की हिन्दू पौराणिक विचारधारा सम्बन्धी ज्ञान-परिधि की सीमा के सकोच का द्योतन करती है। वे साधु पुरुष जैसे चाहे हैं वैसे ही हमारे पौराणिक विचारधारा सम्बन्धी ज्ञान-परिधि की सीमा के सकोच का स्वरूप प्रस्तुत किया है। जैसे 'रावन' हिन्दू समुदाय में रुलाने वाला या भयकर राक्षस है परन्तु इन्होंने रावन शब्द को पत्नी से रमण करने वाले के रूप मे प्रयुक्त किया है। उसी तरह कृष्ण विष्णु के पर्याय हैं।

नारद—अखरावट और आखिरी कलाम मे कवि ने नारद[2] को शैतान रूप मे चर्चित किया है जो इस्लामी मजहबी बात है। हमारे यहाँ तो नारद-देवर्षि के पद पर अभिषिक्त किए जाते है। आज भले ही जहाँ पर झगडे-झंझट की बात होती है लोग कहते हैं नारद जी आए हैं। सचमुच उनके इस तरह के व्यक्तित्व की पुष्टि पुराणो से भी होती है। सम्भवत इसीलिए कवि ने उन्हें 'शैतान' माना है।

पवनदेव हिन्दू धर्म प्राण जनता के पूज्य हैं। परन्तु काव्य मे कवि ने इनको 'रावण के यहाँ झाड़ू लगाने वाले' स्वरूप की चर्चा ही की है। अग्नि धोती धोते थे, सूर्य रसोई तपते थे, शुक्र सोटा बरदार, चन्द्र मशालची, मृत्यु पट्टी से बँधे थे, इत्यादि सभी देवताओं की जो दुर्गति रावण ने की थी उसी की चर्चा कवि ने क्षण-भगुरता के द्योतनार्थ की है।[3] अग्नि का वर्णन वेदो में यज्ञ के देवस्वरूप हुआ है। गौर वर्णा है। चार सींग, तीन पैर, दो शिर, सात हाथ हैं। इनकी पत्नी स्वाहा है।[4] पूर्व दक्षिण कौन के दिग्पाल हैं। पवन, सूर्य, चन्द्र, हमारे आराध्य रहे हैं। परन्तु आज तो चन्द्र यात्रा, ग्रहयात्रा इत्यादि से कुछ इनकी अवमानना सी होती जान पडती है। भारतीय धर्म प्राण जनता को तो जिससे ही कुछ शक्ति, सफलता की सिद्ध होती जान पडी है उसे ही देवता मान लिया है। उनकी उस दैविक विचारधारा को जो सम्भवत अन्धविश्वास की कोटि तक पहुँच रही थी आज के विज्ञान ने पर्दाफाश कर दिया।

विधि—विधि ब्रह्म तथा सिरजनहार शब्दों का प्रयोग जायसी न किया है। ये सृष्टि देव हैं। ये सम्पूर्ण प्राणी के सृष्टिकर्त्ता एव सिरजनहार हैं। ब्रह्मा, विष्णु-महेश त्रिदेवों में से एक हैं।

---

(१) (४६।६) अख० तथा (६।१) आ० क० (२) २४।६) आ० ख० तथा (६।५) आ० क० (३) (२५।७) की सभी पंक्तिया पद्मावत) (४) सनातन धर्म प्रवेशिका, पृ० १८

विश्वनाथ—विश्वनाथ, रुद्र, विशेसर, महादेव, महेश, शिव, गिरिजा पति हर आदि शब्द शकर (महाकाल) के पर्याय स्वरूप प्रयुक्त हैं। जायसी ने देवताओं में सबसे अधिक उल्लेख महादेव का ही किया है। 'पार्वती-महेश' खड ही रच डाला शिव की नगरी शिवलोक कैलास (स्वर्ग है तथा उनकी वेशभूषा 'हड़ावरि (छोटी-छोटी हड्डियों की माला) रुडमाल विभूति, हस्तीकर छाला, शेषनाग की माला रुद्राक्ष की माला, हत्या दुइकाधे (ससि और गगा—अथवा ब्रह्मा का शिरकर्तन एव त्रिशिरा विश्वरूपका वध) चँवर डवरू, घंट, पार्वती, वाहन बैल तथा वेश कुस्टि का है, इस तरह का उल्लेख किया है। शिव की पूजा मे मूर्ति का स्पर्श आवश्यक है। ये त्रिदेवों मे एक हैं। इन्हे सहार करने की ड्यूटी मिली है। इन्हे महाकाल भी कहा गया है। कवि ने इनकी मूर्ति, मढ़, मडप तथा पूजा और तत्पश्चात् इनसे वर की याचना का उल्लेख भी किया है।[१] 'शिव साजा' की चर्चा जायसी ने बड़े-बड़े राजाओ की मृत्योपरान्त शिव के मन्दिर निर्माण के लिए की है। चित्रसेन की मृत्यु पर शिव-साजा क्रिया सम्पन्न की गई थी। यह शैव मत का प्राबल्य सिद्ध करता है।[२]

मदन—अनगरतिनाथ, कामदेव, मैन, पर्यायो से कवि ने मदन की चर्चा की है। कामदेव के दस दाऊ'[३] (अर्द्धचन्द, मएडल, मयूरपद दशप्लुत, उत्पलपत्र ये पाँच नखक्षत तथा तिलक प्रवाल, विदक खंडाम, कोल ये पाच दर्शन क्षद-वर्ण० पृ० २६) का जिक्र जायसी ने बडी सावधानी से किया है। मदनावस्था मे १० अवस्थाएं भी होती हैं। जैसे—नयन की प्रीति, चित्तसग, सकल्प, जागर, कृशता, विषयद्वेष, लज्जा त्याग, उन्माद मूर्छा मरण इत्यादि इन्ही दस दावों का उल्लेख कवि ने किया है। अनग के बाण से सभी डरते है। तपस्वियो के तप भग मे इन्द्र का सहायक हैं —वसन्त इसका पुत्र है, पुष्प ही इसका धनुष है।

राम—राम के पर्याय में राघौ को भी रक्खा है। रावण के गर्व का नाश करने वाले, शकर के धनुप को तोडने वाले, सीता के पति, कौशिल्या-दशरथ के बेटे,[४] सेतुबन्ध के बाधने वाले स्वरूपो मे राम की चर्चा कवि ने की है।

---

(१) इन सबके लिए द्रष्टव्य पार्वती महेस खंड। (२) (७।६।१) चित्रसेन सिवसाजा—यह मध्यकालीन प्रथा थी, मृत व्यक्ति को शिव में लीन समझा जाता था। (३) मदन सहाय २६।३।१) (४) दसोदाउ कर गा जो दसहरा ३२।१।३५ (५) रावन गरव विरोधा रामू (२५।७।१।५

हनुमान अहिरावण से बंदि पड़े हुए राम को छुड़ाए थे।[१] लक्ष्मण की शक्ति से मूर्छित अवस्था का उदाहरण राजा रत्नसेन की मूर्च्छावस्था में रखा गया है।[२] शेषनाग पाताल में रहते हुए पृथ्वी को अपने सहस्त्रों फणों पर टेके हुए हैं। हनुमान को जायसी ने छः महीने सोने वाले और छः महीने जाग कर लंका रक्षार्थ हाँक लगाने वाले के रूप में चर्चित किया है जो हिन्दू पौराणिक विचारानुसार असंगत जान पड़ता है। संजीवनी लाने वाले, हनुमान दो रूपों में पूजित हैं पहले में बन्दर की मूर्ति नहीं रहती यह पूजा पूर्वी जिलों में होती है तथा बन्दर मूर्ति वाली पूजा रामायण के आधार पर है। इन्होंने लंका को जलाया था तथा राम-लक्ष्मण को अहिरावण के फंदे से पाताल में जाकर छुड़ाया था।[३] गोरा और बादल की तुलना पद्मावती ने हनुमान और अंगद से दी है।[४] नलनील भी कहा है।

आदित्य, सोम, मंगल, बुध,बृहस्पति, शुक्र, शनीचर आदि का शरीर में जायसी ने निवासस्थान बताया है।[५] उनके द्वारा उल्लिखित ग्रहों की स्थिति सूर्य सिद्धान्त और ज्योतिषानुसार तर्क संगत है।

(१) जसि हनिवन्त राघौ बंदि छोरी। (५०।५।७)प (२) लष्पन कै करा (११।२।४)प (३) तुम्ह अंगद हनिवंत सम दोऊ (५०।५।२)प (४) जायसी द्वारा उल्लिखित क्रमशः ग्रहों का नाम एवम् शरीर में वासस्थान

शनीचर	पाँव, या पौली
बृहस्पति	कामदुवार, भोगघर
मगल	नाभिकँवल
आदित्य	बाईं दिसि अस्तन
सुक्र	कंठ और जीभ के नीचे
बुध	दोनों भौंहों के बीच
सोम	कपार

जायसी काल में सभी सम्प्रदायों के भक्तजन थे जिसमें शाक्त-सम्प्रदाय भी था। ये लोग देवी के उपासक थे। कवि शाक्त के अन्तर्गत शक्ति का भी उल्लेख किया है।[1] आछरि भी जो रूप यौवन सम्पन्न होती थी। कभी-कभी देवियों का रूप धारण करती थी। कृष्ण की प्रेमिका के रूप में कुब्जा का उल्लेख है। गोपी और राधिका भी कृष्ण को प्रेयसी होने के नाते आदर की दृष्टि से देखी जाती थी जिनका उल्लेख कवि ने किया है। गौरा पार्वती भगवान शंकर की अर्द्धाङ्गिनी स्वरूप पूज्य हैं। परमेसरी परमेश्वरी थी जिन्हें मातृकाएँ कहा जाता था। वाणी की देवी शारदा मानी जाती हैं। सरसुती के उपासकों की चर्चा सिंहलद्वीप वर्णन खंड में जायसी ने की है।

विद्या की देवी सरस्वती समझी जाती थी। सीता राम की अर्द्धाङ्गिनी रूप में पूज्य हैं।[1]

देव परिवार पद में परिवर्तन—वैदिक धर्म में इन्द्र, विष्णु, महेश, यम, कुबेर आदि में इन्द्र की ज्यादा ऋचाएँ हैं।[2] परन्तु देवताओं में महादेव का ही विशेष वर्णन पद्मावत में मिलता है। अन्य देवताओं की पूजा तथा उसकी विधि का भी उल्लेख नहीं है। विष्णु को केवल बलि के छलने के रूप में, विधि को सृष्टिकर्ता ईश्वर को जगत नियन्ता, यम को मृत्यु, कृष्ण को गोपियों का प्रेमी इत्यादि रूपों ही में चर्चित है। धर्मशास्त्र के इतिहासानुसार इनके पदक्रम से सारिणी दी जा रही है।[3]

दानव, भूत, प्रेत, राक्षस—राक्षसों में भी जन-मानस विश्वास रखता था। भूत-प्रेम-देव दयन्ता की कहानी का चित्रण भी कवि ने काव्यों में किया है।

जहँवाँ राम वहाँ संग सीता। (१२।६।४) पद्मावत (२) हिन्दू देव परिवार की विकास, पृ० ६१ डा० सम्पूर्णानन्द (३)

पूर्व

	शंकर गणेश २ ३	विष्णु सूर्य २ ३	शंकर गणेश २ ३	विष्णु शंकर २ ३	विष्णु-शंकर २ ३	
उत्तर	विष्णु १	शंकर १	सूर्य १	देवी १	गणेश १	दक्षिण
	देवी–सूर्य ५ ४	देवी-गणेश ५ ४	देवी-विष्णु ५ ४	सूर्य-गणेश ५ ४	देवी-सूर्य ५ ४	

पश्चिम

—धर्मशास्त्र का इतिहास, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३६४

परेत लोग लोगो को लगा करते थे। राघौ चेतन जब झरोखे से पद्मावती का दर्शन करक मूर्च्छित हो जाता है उस समय भूत-परेत लगने का जिक्र है। राक्षस मसुखवाँ होते हैं। लका के काले राकस (राक्षस) प्रसिद्ध हैं। राक्षसों मे रावन[१] को राक्षस राज कहा गया है जो लका का सम्राट था। स्त्रियो के साथ रमण करने वाले पति के रूप मे भी यह चर्चित है। सीता को चुराने वाले के रूप मे भी यह वर्णित है। यह राम राज का, लका का खल नायक है। कस कृष्ण द्वारा मारे जाने के उदाहरण मे प्रयुक्त है।[२] अर्जुन द्वारा बाहु उखाडे जाने के रूप में दु सासन का वर्णन आया है। सहस्सर बाहु उपमान मे प्रयुक्त है। सखासुर को भी उदाहरण मे ही रक्खा गया है। नारद, इबलीस, अबाबकर, मुहम्मद, हूरें (अप्सराएँ) हातिम आदि मुसलमानी नाम भी आए हैं।

अन्य महादानी पुरुष जो देवता की कोटि में अपने सब कर्मों से रखे जाते हैं— करन, अनिरुद्ध, अर्जुन, गंध्रप, हरिचन्द, जुरजोधन, दुसंत, (दुष्यन्त) परसु, बलि, भीम, विक्रम, मालकदेऊ, माधौनल, सुखदेउ आदि पौराणिक पुरुष अपने पराक्रम वीरता, दान, सत्यवादिता के रूप मे उपमानस्वरूप व्यवहृत हैं।

इनसे सम्बन्धित ऊखा[३], सकुन्तला[४], कामकदला[५], दमावति[६] (दमयन्ती) आदि देवियाँ अपने दाम्पत्य प्रेम की उदात्तता के उदाहरण में चर्चित हैं।

देवपूजन महाभारत काल से ही प्रचलित था। कवि ने भी उनकी आराधना उनके प्रति श्रद्धा और विश्वास के प्रसग मे किया है। देवी-देवताओं, ५-६ राक्षसो तथा सोलह-सत्तरह महान पुरुषो का उल्लेख हुआ है।

धर्म और दर्शन

विधिमय कार्यों का पालन तथा निषिद्ध की अवहेलना ही धर्म है। निषिद्ध कार्यों से बचना हा धार्मिकता कही गई है। जायसी ने धर्म के "दसए लखन" अर्थात् दस लक्षणों की मान्यता स्वीकार की है। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में द्रव्य के अस्तित्व की अवमानना की है।[७] प० बलदेव उपाध्याय ने "धर्म-धारण करने वाला वस्तु समुदाय, उसका विवेक, उसका विचार व दर्शन" को मनुष्य की विशेषता मानी है।

(१) लका सुना जो रावन राजू (२।२।२)प (२) कान्ह कोपि के मारा कंसू (२५।४।३)प (३) जस ऊखा कह अनुरुध मिला। (२०।१६।७) प (४) जस दुखब कहँ साकुन्तला (२१।२।६)प (५) माधौनलहि कामकदला। (२१।२।६) प (६) भए अंकनल जैस दामावति। (२१।२।७) प (७) लक्ष्मी समुद्र खण्ड-पद्मावत।

दर्शन की उत्पत्ति मे लग्यार्थ माना है। "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" जिसके द्वारा देखा जाय। कौन ? वस्तु का सत्यभूत तात्विक स्वरूप। ससार-जीव-आत्मा परमात्मा आदि का स्वरूप क्या है ? साधना आदि का सुन्दर मार्ग कौन है ? आदि के विषय में दर्शन ही बताता है। दर्शन ही शास्त्र कहा जाता है। दर्शन तथा धर्म त व के ज्ञान से भारतीय जीवन का भी गहरा लगाव है।[१] जिन सिद्धान्तो के आधार पर आचारो की स्थापना होती है उसे भी दर्शन ही माना गया है। जायसी ने अपने काव्यों के अन्तर्गत वैदिक, इस्लाम, जैन, बौद्ध शैव-शाक्त, नाथ-सिद्ध वैष्णव आदि के मतों की रहस्यवादिता को द्योतित करते हुए सूफी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

ईश्वर का स्वरूप—ईश्वर के पर्याय में कवि जायसी ने अल्ला[२], इललिलाह करता, करतार, धरता, हरता, दई, दैउ, देय, बडराजा, विदि, सिरजनहार, साईं और गोसाईं[३] आदि शब्दों को प्रयुक्त किया है। सृष्टि के पूर्व ईश्वर ही था, है और रहेगा और कुछ नहीं[४]। यह रूप-वर्ण से रहित और अदृश्य है। इसके न पिता हैं न माता न पुत्र। यह परिवार विहीन है। जीव और बिना प्राण के ही वह जीवित रहता है। बिना हाथ के कार्य करता है, बिना जीभ के बोलना, बिना कान के सुनना बिना आँख के देखना, इसके स्वरूप की विशेषता है। ईश्वर के इस वैशिष्ट्य सम्पन्न स्वरूप की उपमा जायसी नहीं दे पा रहे हैं, विश्व में इसके रूप की समता किसी से नही की जा सकती है। उसका कोई स्थान नहीं परन्तु इतना होने पर भी विश्व मे कोई स्थल ऐसा नहीं जहाँ वह न व्याप्त हो[५]। पुष्प मे सौरभवत् वह सर्वत्र व्याप्त है न वह नजदीक है, न वह दूर है, अन्धा मूर्ख उसे दूर समझता है। वह निष्कलंक और निर्मल ही रहता है। वह पवित्रता का केन्द्र है। जायसी का ईश्वर अपने मन का राजा है।

ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है परन्तु उसका कोई कर्त्ता नहीं हैं। वह जो चाहता है वही करता है। वह रचयिता, पालनकर्त्ता के साथ ही इसका सहार करने वाला भी है। यहाँ पर जायसी की बात का मेल 'बाण' के 'त्रिगुणात्मन्' शक्ति सम्पन्न ईश्वर

---

(१) भारतीय दर्शन उपोद्घात—आचार्य बलदेव उपाध्याय (२) अलिफ एक अल्ला बड़सोई (४०।३) अख० (३) (४४५) अख०
(४) (३८।१) आ० क०, १।१० अख०, (१।१०) प (५) हुत पहिलेई औं अवहै सोई। पुनि सौ रहहि रहहि नहि कोई। १।७।६ प (६) अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता (१।७।१) प (७) (पद्मावत के ७वें और आठवें दोहेंकी सभी पक्तियों मे ईश्वर के रूप की चर्चा की गई है।

से जान पड़ती है।[१] वह नाना योनियों, चौदह भुवनों सात खण्डों सब का रचयिता हैं।[२] यहाँ कवि ने उसे कुम्हार बना दिया है।

सृष्टि के सहायक तत्व—कवि जायसी ने सृष्टि मे केवल[३] चार उपादानों की चर्चा की है। जबकि हमारी भारतीय दर्शन विचारानुसार पाँच का उल्लेख है। जायसी ने छार से सृष्टि का निर्माण और पुन. उसी मे विलय माना है। शून्य से सभी पैदा हुए और पुन. शून्य में मिल गये। शून्य ही इसका अन्तिम तत्व है। वही अन्त मे रह जाता है। वहाँ, आब, पानी और हवा का प्रभाव समाप्त हो जाता है। शायद उन्होंने आकाश को शून्य ही माना है।

जोति—जोति को जायसी ने नूर भी माना है। वह भी इस रचना में सहायक है। वृक्ष के दो पत्ते, माता-पिता, पिता स्वर्ग, माता धरित्री, यह युग्म में सवार मे व्याप्त है। 'सूर्य-चन्द्र' पुण्य-पाप, नरक-स्वर्ग आदि इसी के रूप में है। इसका मूल शून्य मे है और वह ज्योति के आश्रित है। हमारे वेदों के 'द्यौ' (ज्योतिर्मय) को ही जायसी ने जोति कहा है।

आत्मा, जीव, मीचु—आत्मा का ज्ञान कराना प्रत्येक दर्शन का लक्ष्य है। क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे यही शक्ति कार्य करती है।' आत्मा वा अरे द्रष्टव्य:। जायसी ने आत्मा का निरूपण अपने अनुसार किया है। जीव तो परमात्मा का एक अंश है। जायसी जीव को परमात्मा के साथ एक ही मानते हैं। इनके भेद को मृत्यु ने पैदा कर दिया। अतः जीव नश्वर हो गया। जीव की शुभाशुभ कर्म के फल की गति ईश्वर के आश्रित है। जायसी के अनुसार जीवात्मा, परमात्मा और जड जगत तीनों एक ही हैं। तथा परमात्मा और आत्मा के मिलन में उन्होने पीर और पैगम्बर की मध्यस्थता की भी अवहेलना करते हैं। आँख मूँदने पर जो रूप दिखाई देते हैं वही ईश्वर स्वरूप की आत्मा या सारसत्ता है। अतः सिद्ध है कि मानव जीवात्मा उन्हीं रूपों की है जो दिखाई पड़ते हैं। भेद इतना है कि वे अपनी सारसत्ता में पिंड देह से

---

(१) तुम्ह करता बड़ सिरजनहारा। हरता धरता सब ससारा (५७) अख०
रजो जुषे जन्मनि सत्ववृत्तये,
स्थितौ प्रजानां प्रलये तम: स्पृशे।
अजाय सर्गस्थिति नाश हेतवे,
त्रयी मयाय त्रिगुणात्मने नमः॥ कादम्बरी
॥ बाण॥ (२) एक चाक सब पिंडा चढ़े। भांति-भांति के भांडा गढ़े (५१) अख० ४ क आगि बाउ जल धूरि (८), अख० (३) क्षिति जल पावक गगन समीरा। तुलसी।

मुक्त होते हैं। स्वप्नावस्था में भी आत्मा का यही रूप स्पष्ट होता है। आत्मा ही ज्ञान और दृढ़ विश्वास का केन्द्र है।

ज्ञान सत्य—ज्ञान ज्योति की प्रकाशस्थली यही आत्मा है। आत्मज्ञानी लौकिकता से परे हो जाता है। वह फिर यहाँ नहीं लौटता है। ज्ञान से ही रत्नसेन के हृदय में जोति प्रकाश करती है। इसी प्रकाश के सहारे भक्त ईश्वर से मिल पाता है। वल्लभाचार्य जी ने 'सन्धिनी' की संज्ञा दी है। आत्म प्रकाश के आगे सूर्य और चन्द्रमा भी निष्प्रभ हो[1] जाते हैं। आत्मसाक्षात् की योग-भाषा की पारिभाषिक शब्दावली मे द्रष्टा का अपने रूप में अवस्थान है। बिना आत्मा के ज्ञान असम्भव है। परन्तु जब आत्म ज्योति प्रकाशित हो जाती है तो क्रोध, काम मद, तिस्ना और माया का उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ पाता है। इह लौकिक किसी भी तत्व का प्रभाव उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाता है।[2] परन्तु जब तक इनका असर रहता है तब तक वह ज्योति भी नही प्रज्वलित होने पाती है।

जायसी ने वैष्णव मतावलम्बियों के विधि, हरि, स्वामी, गुसाईं, देव, शैव सम्प्रदाय के रुद्र, शंकर, महादेव, विश्वनाथ, शिव, महेश, गिरिजापति, पार्वतीपति, देवपिता, आदिदेव नामों का उल्लेख किया है। विधि और गोस्वामी शब्दों का काव्य में आधिक्य है। डा० मुंशीराम शर्मा ने जायसी द्वारा ईश्वर की नामावली में खुदा और अल्ला के नाम को न पाने पर आश्चर्य व्यक्त किया है। अल्ला शब्द मात्र अख-रावट में आदम शब्द की विवेचना में ही ईश्वर के प्रतिनिधि मुहम्मद हेतु आया है।[3] शायद जायसी ने इनका तिरस्कार जानबूझ कर किया है। कवि ने सुरति मे सर्वप्रथम नामस्मरण को ही महत्व दिया है। इसका पालन उन्होंने अपने सभी ग्रन्थो में किया है।[4] दान, जप, तप, धर्म, काम आदि का भी वे महत्व सिद्ध करते हैं। ईश्वर प्राप्ति के लिए इनकी चर्चा उपासना पद्धति के अध्याय में द्रष्टव्य है।[5]

ईश्वरीय प्रेम—सूफी मतावलम्बी होने के नाते जीवात्मा और परमात्मा के अन्दर पारमार्थिक भेद न पाने पर भी ईश्वर प्रियतम स्वरूप मे देखा जाता है। प्रेम की चिनगारी से सम्पूर्ण लोक विचलित सा हो जाता है। एक बार प्रेमाग्नि जलने पर फिर वह ईश्वर प्राप्ति के पहले शान्ति नहीं हो सकती। प्रेमी की साधना सार्थकता को प्राप्त होती है और उसे ईश्वर तथा अमरत्व प्राप्त होता है। जब तक उसे ईश्वर

---

(१) चांद, सुरुज छपिहि वहु जोती। (५१) आ० क० (२) (११।६।६) पद्मावत (३) भक्ति का विकास, पृ० ५५४ डा० मुंशी० (४) (१।१।१)प, (१) अख०, पहिले नाउ देउ कर लीन्हा है (१) आ० क० इत्यादि। (५) उपासना पद्धति द्रष्टव्य।

नहीं मिलता तब तक नींद, विसराम सब हराम हो जाता है।[1] जैसे बूंद समुद्र में मिलती है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा में।[2]

आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध—परमात्मा के अथस्वरूप ही अगों-अगी का भाव है। ईश्वर को पाने के बाद आत्मज्ञानी को सांसारिकता का मोह समाप्त हो जाता है। आत्मसाक्षात की सिद्धि ही उसे सभी अभिलाषाओं की पूर्ति मे सहायक हो जाती है। इसकी सम्पूर्ण क्रिया ईश्वरेच्छा पर निर्भर रहती है। उसकी अन्तिम स्थिति ईश्वर में ही समाप्त होना है।

उपसंहार :—जायसी द्वारा वर्णित ईश्वर स्वरूप आत्मा, ज्ञान सत्य ज्योति के सहायक तत्व आत्मा, परमात्मा के सम्बन्ध आदि से ज्ञात होता है कि मूल में सभी धर्म एक हैं। डा० भगवानदास ने सिद्ध किया है कि सभी धर्मों की बुनियादी एकता है। उन्होंने दीन-धर्म-मजहब की विवेचना में सम्प्रति प्रचलित ग्यारह धर्मों की चर्चा की है—जापान का शिन्तो मत, चीन का ताओं मत, चीनहोका कन्फ्यूशियनमत, हिन्दुस्तान का वैदिक मत, बौद्ध मत, जैन मत, सिक्ख मत, पारसीमत, यहूदीमत, ईसाई मत, इसलाम। इन सब में मूलभूत समानता का दावा डा० साहब ने किया है। इस्लाम का सिफात-हिन्दू की विभूति है। कुरान का 'अल-अव्वल' वेद का आदि अन्त है। अलकहहार और अलरज्जाक-रुद्र-शिव हैं। गज्जाव गफ्फार-यम और क्षमावान है। कुरान में निन्यानवे पारसीमत मे एक सौ एक नाम ईश्वर के हैं जो वेदो से मिलत हैं—पारसी—' अहुरमज्द—संस्कृत असुरमेधा। चीन का 'सनत्साइ-हिन्दी भाषा का 'सम्राट' है। हिन्दू वेदान्त—सूफी तसव्वुफ एक हैं। शैव-शिव-वेदान्ती-ब्रह्म-बौद्ध, बुद्ध, वैष्णव-विष्णु, न्यायिक-कर्ता, जैनी, अरहत, मीमांसी-कर्म, सूफी-अहद और अल्लाह, से एकता ज्ञात होती है। सभी रास्ते उसी एक ईश्वर तक पहुँचते हैं 'मुसलमान-ईसाई और यहूदी सब भले बुरे का मुंह उसी ईश्वर की तरफ है' यह सूफीमत है। हिन्दू का योग ही इसलाम में 'सलूक' है। हिन्दू साधना के जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति को सूफी आलमे नासूत आलमे मलकूत तथा आलमें जबरूत मानत हैं। सूफी का सात अर्श, सात अर्द हिन्दू के चौदह भुव हैं। वेदान्ती पाँच कोशों को मानता है—बौद्ध पाँच स्कन्ध सूफी पाँच नफस। सभी की विचारधारा मिलती जुलती है। वैदिक धर्म क ऋषि मुनि, मनु कुमार, अवतार, बौद्ध के बोधि सत्व, जैनों के अरहत और तीर्थंकर, इस्लामा कुतुब गौस-अवरा असिमार वाली, नबी-

---

(१) नीदिं न परै रैनि जो आवा (१८।१।१) पद्मावत (२) आचार्य शुक्ल की जायसी ग्रन्थावली, पृ० ६४ से ६७ तक तथा पं० परशुराम चतुर्वेदी के सूफी काव्य संग्रह एवं मध्यकालीन प्रेम साधना नामक ग्रन्थ।

रसूल ईसाई मे सेन्ट-मसीह खुदा का बेटा यहूदी मे--सेज-प्राफेट और पैट्रिआर्क पारसी में-सोश्यन्त-नरोइशनरो इत्यादि की भावना मे मेल है। गिरिजा, खुदा का घर, मदिर देवालय, मसजिद-बैतुल्लाह। शिष्य, मुरीद-डिसाइपल। पलौथी-आसन सज्यादे साष्टाग परिक्रमा-तनाफ। पडे-पुरोहित-पुजारी, मुअज्जन मुजाविर-मुतवल्ली मुल्ला-मुफ्ती-आलिम, दस्तूर मोविद, फरोस्वी-रब्बी फुगी-लामा। सन्यासी-यति-मडलेश-साधू वैरागी, उदासी, मठाधीश, सत, महन्त, फकीर, दरवेश, मौलिया, सज्जादानशीन, शेख, पीर, श्रमन, कीर, महाकोर, माकनग। मठ अखाडे, धर्मशाला, विहार लामासरी, दरगाह, तकिया[1] अभिप्राय केवल इतना है कि सभी धर्मों की साधना उसी ईश्वर के लिए है चाहे सूफी हो, चाहे वेदान्ती हो, चाहे ईसाई हो। अत, निष्कर्षतः यही आभास होता है कि सब इन्सान एक हैं सबका नियन्ता एक है। जायसी ने सभी साधना पथो से इसीलिए कुछ-न-कुछ ग्रहण किया है। और उन सबसे ऊपर अपने धर्म तथा दर्शन की स्थापना की है। बात एक ही है केवल शब्दावली की वत्तिनी उच्चारण एवं आकार प्रकार मे अन्तर है। ईश्वर तक पहुँचने के लिए साधक को साधना मे रत कराना ये भी स्वीकार किए हैं—ईश्वर का स्त्री रूप (प्रेमी-प्रेमिका) देना सूफी की अपनी विशेषता है जब कि भारतीय विचारको ने पति, सखा, माता, पिता एवम् स्वामी आदि रूपो में माना है स्त्री रूप मे नही।

उपसंहार—आलोच्य काव्यो मे सम-सामयिक प्रचलित इस्लाम, सूफी, रामानन्दी, शैवमतानुयायी नाथ, सहजयानी सिद्ध, जैन, शैव शाक्त, वैष्णव, सतनामी उदासी, तथा परमहस इत्यादि सम्प्रदायों एव उनकी साधनाओं का विवेचन हुआ है। नाथ पथ का विशेष वर्णन है। जो शैवमत की ओर उन्मुख सा है। जैन और बौद्ध दोनो पतनोन्मुख हैं। जायसी, ने सभी प्रचलित सम्प्रदायों की अच्छाइयों को अपनी सन्त बुद्धि द्वारा ग्रहण करके उनमे प्रेम की सर्वोच्चता सिद्ध की। अपनी प्रेमपरक साधना को सिद्ध करने के लिए नाथ योगियो तथा सहजयानी सिद्धों की मान्यताओ को अधिकाशत. अपनाया है। इन भारतीय सम्प्रदायो के साधनापथो को वही तक ग्राह्य समझा है जहा तक वे प्रेमिका की उपलब्धि मे सहायक है। पाप, पुन्य करम, धरम इत्यादि में आस्था

(१ डा० भगवानदास-सब धर्मों की बुनियादी एकता—चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सन् १६६१ ई०

तथा तदनुसार आचरण करने की मान्यता है। जायसी ने मूर्त्तिपूजा का खंडन किया है। सिर नवाना, सिर कलपना आदि हमारी आचार परम्परानुसार प्रस्तुत है। देवी-देवता एवं भूत-प्रेत आदि का भी उल्लेख हुआ है। आत्मा-परमात्मा के स्वरूप आदि का विश्लेषण अपने सूफी दर्शन के अनुसार किया है जिस पर हमारे वेदान्त का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। ज्ञान और सत्य के अवलम्बन से ही परमात्मा को दृष्टि-गोचर बताया गया है। माया, कम क्रोध आदि बाधक तथा नाम स्मरण, दान-जप, ईश्वरीय प्रेम मे प्राप्ति मे सहायक हैं। जायसी को उस समय के धर्मोन्मादी युग मे सबको प्रसन्न करने के लिए सभी साधना पथो से कुछ न कुछ उन्ही की पारिभाषिक शब्दावली मे ग्रहण करना अनिवार्य जान पडा जिसे सम्पन्न करने मे उन्होंने सफल प्रयास भी किया[१]।

---

(१) प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय पाँच सम्पूर्ण उपसंहार के लिए द्रष्टव्य ।

अध्याय–६

कला साहित्य

'कला'

कला शब्द 'भारत' के नाट्य शास्त्र से मिलने लगता है। कामसूत्र[1] शुक्रनीति[2] 'जैनग्रन्थ प्रबन्धकोश' कलाविलास, ललित विस्तार, वाग्विलास एवं सभाशृङ्गार प्रभृति ग्रन्थो मे कलाओ की विवेचना है। जिनमें इनकी संख्याएँ ६४, ७२, ६८, मानी गई हैं। लब्धप्रतिष्ठत काश्मीरी पंडित क्षेमेन्द्र ने चौसठ जनोपयोगी, बत्तीस धर्म अर्थ काम, मोक्षादि सम्बन्धी बत्तीस मा मयंशील प्रभावादि सम्बन्धी चौसठ स्वच्छकारिता सम्बन्धी चौसठ वैश्याओ से सम्बन्धित, दस भेषज सम्बन्धी, सोलह कायस्थ सम्बन्धी, सौ सार कलाओ का उल्लेख किया है। सबसे अधिक प्रामाणिक सूची कामसूत्र की मानी गई है।[3] अष्टाध्यायी काल मे कला को 'शिल्प' कहा जाता था।[4] जायसी ने 'कला' के लिए 'करा' शब्द व्यवहृत किया है। तथा कला[5] शब्द अश के रूप मे भी आया है। हमारे देश की कला हमारे विचार धर्म-दर्शन-और सांस्कृतिक समीक्षा का दर्पण है जिसमे भारतीय जन-जीवन की व्याख्या साकार हुई है। रहन-सहन, देवी-देवता की पूजा-विधि, वास्तुशिल्प, मूर्ति-चित्र, कास्य-प्रतिमा मृद्भाजन, दन्तकर्म, काष्ठकर्म, मणिकार्य, स्वर्णरजत कर्म, इत्यादि सब कुछ हमारी भारतीय कला में सुरक्षित है। इनकी क्रिया पद्धति सम्पादन विधि मे समय-समय पर परिवर्तन भी हुए हैं जो एक युग को दूसरे युग से जोड़ते हैं। ये प्रत्येक कलाएँ किसी मनोभावना के स्थूल रूप में हैं। जायसी ने अपने काव्यों मे उपर्युक्त ग्रन्थो में उल्लिखित तथा तत्कालीन समाज मे प्रचलित कलाओ मे से काम[6] चित्रकारी[7] गायन वादन नर्तन नाट्य सोलहशृङ्गार बारह अभरन वेशभूषा कथा-कहानी लेखन-बुनाई पढाई मूर्ति स्थापत्य सुगन्धित द्रव्य रत्नपरीक्षा बागवानी भविष्य कथन धोखा-धड़ी द्यूतविद्या ठगविद्या चतुरदसविद्या लेखा-जोखा आक आखर सुखवचन छपाई[8] काष्ठकला[9] मृद्भाजन आदि का जिक्र हैं। इनके सम्पादनकर्त्ताओ के रूप में बुनकर[9]

(१) वात्स्यायन, (२) उशनस् (३) इसकी जानकारी पृथ्वीराज रासो क सांस्कृतिक अध्ययन, अध्याय कला। (४) पा० का० भा०, पृ० २२३ (५) कतहूँ नाटक चेटक करा—२। १५। ६ प (६) रत्नसेन पद्मावती भेंट खंड (७) चित्र कटाउ अनेक संवारी। (८) महरी वाइसी मे कुम्हार तथा पद्मावती के भोज खंड मे आए ए पात्रों से ज्ञात होता है। (९. (२३। अख०)

कुम्हार[1] नर्तक पातुर सोनार[2] चितेरे विसुकर्मा पंडित बिआस कवि आदि भी चर्चित हैं। इनके लिए अष्टाध्यायी में चारुशिल्पी और कारू शिल्पी दोनों शब्द मिले हैं। नर्तक-गायक वादक की नृत्य-संगीत साधना को अष्टाध्यायी में शिल्प कहा गया है। वही बौद्ध साहित्य में शिप्प हुआ। अर्थशास्त्र में तो सैन्य प्रशिक्षण भी शिल्प ही माना गया है।[3]

काम कला : संपादन विधि—'कहि सतभाउ भएउ कठलागू' से जायसी ने कठालिंगन के पूर्व की मन स्थिति को सतभाउ कहा है अनन्तर मिलनद्योतित किया है। सोने में सुहागे के मिश्रण की तरह पति-पत्नी के पारस्परिक मिलन को चर्चित किया है। भोग साधना और योग साधना को श्लेषार्थ से व्यक्त किया है चौरासी आसन पट्रस विन्दक, वृक्षारूढ और लतावेष्टित आलिंगन, सोने की कली में माणिक्य जड़ाव की तरह, वर्में से मोती छेदने की तरह, नारंगी पर सुग्गे की क्षत की तरह, गेंद की तरह गोदी में लेना[4] अधर रस लेना, हार की तरह कंठ से चपना, स्तनों को मसलना इत्यादि काम परक शैली की चर्चा जो अश्लील से जान पड़ते हैं परन्तु इनको कवि ने आध्यात्मिकता की आड़ में रखा है जिससे काव्य सौन्दर्य को क्षति नहीं पहुँचती है।

काम के उन्मेष—कस्तूरी, वासुकि, विसहर, नागिनी तथा भुअंगिनि को भी अपनी शोभा और कालिमा से नतमस्तक करने वाले घुंघराले बाल, सिन्दूर से रक्तिकंचन रेखा जमुना-माझगंग कैसोती, की तरह मांग, तिलकयुक्त द्वितीया के चांद की तरह ललाट, धनुष सदृश भौंहे, बाके नैन, वाण सन्धाने खड़ी हुई दुश्मन सेना सदृश बरौनी, खरग तुल्य सुग्गे को लजाने वाली नासिका, सुरंग अमिअ रस भरे अधर, चौक बैठे जनु हीरा सदृश दन्तावली, अमृत वचनों वाली रसना, नारंग सदृश तिल युक्त कपोल, आभरण मंडित श्रवन, परेवा एवं मयूर की ग्रीवा की अवमानना करने वाली गीवा, कनक दंड सदृश भुजा, लाल हथोरी, कंचन के लड्डू सोने के बिल्वफल सदृश कंचुकी को फाड़कर निकलने वाले स्तन, बर्रे एवं सिंह को मात करने वाली पतली कमर, मलय सुगन्ध युक्त नाभि, कटि प्रदेश की शोभा बढ़ाने वाले नितम्ब, दूसरों से रगड़ खाती हुई कले के खम्भे सदृश संटी जंघाएं, कमलवत् चरण इस तरह

---

(१) महरी बाइसी (२) (२७।६) प की पंक्तियों से आभासित ।। (३) पाणिनि कालीन भारत, पृ० ३२३ (४) पद्मावती रत्नसेन भेंट खंड की पंक्तियों में श्लेषार्थ है जहां ८४ आसन-भोग-काम दोनों के हैं, पटरस, नख-क्षत चुम्बन इत्यादि, इसी तरह कुछ भाग २०।५ प तथा नखसिख खण्ड — षट् ऋतुवर्णन खंड नागमती वियोग खंड में भी काम की चर्चा है।

अमोग (अनूठी) नख सिख शृंगार सम्पन्न रमणी[1] नायक के चित्त को विचलित करके[2] बाउर[3] की अवस्था तक पहुँचा देती है तथा 'तजा राज राजा[4] भा जोगी' के परिणाम भी दृष्टिगोचर होते हैं। पाणि स्पर्श और दृष्टि लगने से भी कामाग्नि जाग जाती है। मारगनैनी, हंसगामिनी, कोकिल बैनी, बाके नैन से कटारी की चोट करने वाली, रमणियों का प्रसंग सिंहल खण्ड मे भी है।[5] सिंहल की वेश्याओं तथा मानसरोदक खण्ड, वसन्त खण्ड, पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड, गोरा बादल युद्ध यात्रा खण्ड आदि स्थलों पर नायिकाओं की देह यष्टि का वर्णन कामाग्नि को प्रज्वलित करने वाले हैं।

'धन्य पुरुष असनवै न नाए' बरिबंड बीर, सम्पूर्ण जगत मे देदीप्यमान, सहस कलाओं द्वारा निर्मित मणि आभा युक्त मस्तक, कामनाओं की पूर्ति करने वाला पुरुष स्त्रियों को प्रिय होता है। 'पद्मावती कहती है—मिला सो मनभावत'।

काम की अवस्था और परिणाम—जीव का बाउर होना, पपीहे के सदृश पी-पी बोलना, जलना, न हिलना, न डुलना, रक्त-स्वेद से चोली पसीजना, कसनी बन्द टूटना, श्वास-निश्वास की प्रक्रिया का होना, प्रियतम से वियुक्तावस्था मे आषाढ़ादि बारह महीने की तत्सम्बन्धी जलवायु का पीड़ादायक होना, सन्देशवाहक का भी विरहाग्नि से जल जाना तथा विरही अथवा विरहणी के देश मे वसन्त एवं पावस का न होना अथवा होना तो अधिक सताना इत्यादि। प्रेम के वश होना, रात मे नींद न आना, शैय्या का केवाच की तरह प्रतीत होना, चदनौटा प्रभृति शीतल वस्त्रों का भी दाहक होना, पीयूषवर्षी चन्द्रमा की शीतल रश्मियाँ अनलवर्षी प्रचण्ड सूर्य की प्रखर दाहक किरणों के सदृश आभासित होना, अर्द्धविक्षिप्त होना, इतस्ततः देखना, हृदय का पीला होना, नैनों का चक्रवत् घूमना, नींद-विश्राम-भूख आदि का समाप्त हो जाना इत्यादि अवस्था को नायक-नायिका पहुँच जाते हैं।

परिणामतः उसका मन छोटा हो जाता है, स्मृति विस्मृति मे परिणत हो जाती हैं, जल वियुक्ता मीन सदृश शरीर हो जाती है, रात-दिन निःसार हो जाते हैं,

---

(१) नख-सिख खंड के सभी दोहे (पद्मावत) (२) सुनतहिं राजा गा मुरुछाई (११।१।१ १) (३) बाउर जनहुँ सोइ अस जागा (११।३।१) प (४) तजा राज राजा भा जोगी (१२।११) प (५) सिंहल द्वीप वर्णन खंड (१) जोगी खंड तथा विरहा कठिन काल के कला। (२४।१०।३) प, २४।११ से (६ प की प क्तियां) पद्मावती रतनसेन भेंट खंड-षट् ऋतुवर्णन-नागमती विगोगखंड तथा पद्मावती-नागमती विलाप खंड की पक्तियों में इनकी चर्चा है।

नीद-विश्राम हराम हो जाता है, सुखद वस्तुएँ भी दुखद हो जाती है, शरीर निर्बल, पीला, काला एव मूर्च्छित-सा द्योतित होता है, चोली भीज जाती है, बारह मासों की तज्जन्य जलवायु वेदना परक हो जाती है। फिर भी नायक-नायिका इन परिणामों को आदर पूर्वक भुगतना उचित समझते हैं। साकेत में भी—'वेदने तू भी भलीवनी' ऐसी उक्ति आई है।[१] सयोगावस्था मे वियोगावस्था की दाहक वस्तुएँ भी शीतल एव सुखद हो जाती हैं और केलि की स्थिति मे माग का छूटना, विरह का विध्वस होना अग-प्रत्यङ्ग का शृ गार लुटना, केश खुलना, कचुकी के बन्ध टूटना, हार टूटना, वालियाँ तथा टड्डों का टूटना, भुजबन्ध तथा कगन का चूर-चूर होना, अगों के चदन का आलिगन से पुछना, मस्तक का तिलक मिटना, वेसर टूटना, कलाई फूटना, करी फूटना (योनि का विस्तृत होना), हहेहरि करना (वाला का सीत्कार करना) इत्यादि परिणाम होते हैं।[२] इस तरह कवि जायसी ने सयोगावस्था तथा वियोगावस्था दोनो का बडा ही सजीव चित्र उरेहा है जो काम शास्त्र के सगत-सा है। इस वर्णन में श्लेष के साहाय्य से कवि ने आध्यात्मिकता भी प्रदर्शित की है। योग साधना-सिद्ध साधना, सूफी साधना मे योग के बाद भोग की स्थिति का अनुमोदन है।

काम क्रीड़ा स्थली—कचुकी के नीचे श्रीफल की तरह उठे हुए, स्वर्ण बिल्व फल, कचन लड्डू, केतकी के पुष्प मे फँसे हुए भौंरो, कसनी बन्द तोडकर बाहर निकलने वाले, अनूठे इत्यादि विशेषता सम्पन्न स्तन युग्म, कठ, ग्रीवा, अमिअरस भरे कपोल-अधर, गोदी, चूचुक, लक, विवृत अथवा विना विवृत कुरगिन खोज़ योनि द्वार इत्यादि प्रमुख स्थान हैं। चौरासी आसन-नखक्षत का भी वर्णन है। सटी जघाएँ भी इन्हीं मे गिनी जाती हैं।[३] एकान्त होना भी आवश्यक है।

काम कला की सहायक सामग्री एव समय—मेंजवा, सुखवासी, सात नगों से सम्पन्न धौराहार, सोने के खम्भे, खम्भो की पुतरियाँ, मानिक दिया, रात चदोवा, गेंडुवा, गलसुई, विनोद, चौपड खेल, सेन्दुर, एगुर-बारह अभरन-सोलह शृ गार, बादल गर्जन, सीउ, पपीहा, कोयल, सारग, बारहमासी जलवायु तथा ततजन्य कामोत्तेजक उपादान, नायक नायिका का गठित शरीर उनका विरह-दूत दूतियाँ रात्रि का अन्धकार इत्यादि सहायक होते हैं। काम का समय रात बब

---

(१) साकेत नवम सर्ग उर्मिला की उक्ति, मैथिलीशरण गुप्त (२) २७।२८ प की सभी पक्तियां (३) नखसिख खड तथा रत्नसेन पद्मावती भेंट खड—पद्मावत।

सूर्यास्त हो गया हो। चाँद तथा तारे प्रकाशित हो चुके हो ऐसी वेला में एकान्त में रत्नसेन और पद्मावती की भेंट होती है।[1]

आदर्श काम कलाकार—लजीली, सजीली, पति से डरने वाली, वाक्‌पटु, विनोद प्रिय, प्रेम-पियारी, जुगनद्ध होने वाले, चौरासी आसनो मे कुशल, दन्तक्षत-नखक्षत के ज्ञाता तन-मन जोवन जीव को परस्पर आदान-प्रदान करने वाले चित्त से अधिक चिहुँटने वाले, काम-क्रीडा से तृप्त होने वाले दम्पत्ति तथा एक दूसरे से प्रेम बन्धन को न तोडने वाले युग्म को जायसी ने आदर्श कलाकार उल्लिखित किया है।

कवि जायसी ने काम कला की अश्लीलता को छिपाने के लिए आध्यात्मिकता की शरण ली है। उनकी तो गाथा ही प्रेमगाथा है तो कामुकला का वर्णन भी हुआ। काम केलि के पूर्व नायिका का लज्जित एव भयभीत होना, पति द्वारा धनि की बाँह पकडकर सेज पर खीचना, चौपड खेल, विनोद आदि के पश्चात् कठ लागू होना जायसी का अभीष्ट था। सम्भवत: तत्कालीन रसिक समाज में इसी तरह का व्यवहार होता था।

चित्रकला : मूर्तिकला—"आंवत सबै उरेह उरेहैं" से चित्र बनाने की कला का द्योतन होता है। राजमन्दिर मे सभी प्रकार के चित्रों को चित्रित किया गया है। अनेक नगो को तराश करके लगाया गया है। भिन्न-भिन्न उकेरी या नक्काशी की गई है। फलतः लाइन की लाइन चित्र बन गये। खम्भों पर मणि और माणिक्यों का जडाव किया गया है। पत्थर के चौकों या ईटो का अलङ्करण लहरिया गति से किया जाता था। वस्त्रो में भी लहरिया गति छींपक सारी इत्यादि का जिक्र हुआ है। इस कला का ज्ञान जायसी के समुद हिलोरा शब्द से होता है। खम्भो पर पुतलिका का निर्माण—जिसे शालभजिका या खम्भ प्रतिमा भी कहा जाता, का द्योतन "पुतरी गढि गढि खम्भन काढी" से होता है। इन पुतरियो के हाथ मे सोने की कटोरी, चन्दन की कटोरी, सिन्दूर की डिब्बिया, कुकुम का पात्र, पानो का बीडा, मिस्सी की बीरी, सुगन्धित पदार्थों का पात्र, कस्तूरी-मेद इत्यादि सामग्रियाँ थी जो चारो दिशाओ मे इनको लिए हुए निर्मित की गई थी। यह तत्कालीन चित्रकला एव मूर्तिकला का वैशिष्ट्य था जो परम्परागत शुगकाल से मध्य काल तक विद्यमान रही। राज दरवाजे पर निर्मित सिंहो की प्रस्तर मूर्तियाँ तत्कालीन मूर्ति कला का ज्ञान द्योतित करती हैं। "नाहर गढे" अर्थात् सिंहो को गढ कर बनाया गया है। पूँछ ऐंठी हुई, जीभ निकली हुई है। कांटे के ऊपर कौसीसा (कगूरा) का निर्माण

(१) रत्नसेन पद्मावती भेंट खड। पद्मावत।

भी किया गया है । सुखवासों मे अनेक चित्रो एव मूर्तियो का उल्लेख है । शिव जी के मण्डप मे मूर्तिकला का प्रस्फुटन दर्शनीय है जिसके चारो द्वारो पर, पार्श्व स्तम्भों में मूर्तियां निर्मित हैं ।

भवन निर्माण —सात पवरियां, नौ खण्ड, नौ पवरी ऊंचाई इतनी कि "निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका, कवि उसकी ऊ चाई और फेरे के वर्णन मे अपनी असमर्थता प्रदर्शित की है । दरवाजों में किवाडे लगी हैं उनके फाटको पर सिंहो की मूर्तियां हैं । अटारियो पर चढने के लिए घुमावदार सीढियों का निर्माण है [1] । चित्तौडगढ मे सीढियों के वैशिष्ट्य प्रदर्शनार्थ "पालकपीढी"[2] शब्द को प्रयुक्त किया गया है । ये सीढियां जब एक खण्ड से दूसरे पर पहुँचती थी तो वहां एक चौका मिलता था सम्भवत: यह एक विश्रामस्थल था । फर्श पर सोने के पानी ढालने का आभास "सोने कर सब पुहुमि" से होता है । गिलावे और ईट के रूप में कपूर और हीरे का प्रयोग है । आगन तथा भवन के अन्दर फुलवारी-कुण्ड आदि का मध्य काल से चलन था जिसे जायसी ने प्रयुक्त किया है । पद्मावती के महल की शिल्पकला का आस-पास सरोवर का होना, रत्नजटित गढ शार्दूल-कटावदार चित्र आदि का होना विशेषता है । जायसी की चित्रकला, मूर्तिकला एव स्थापत्य कला पारपरिक ही जान पडती है क्योंकि कादम्बरी प्रसाद[3] वर्णन आदि में भी इसी तरह की उक्ति है जायसी ने अपने भवन निर्माण कला सम्बन्धी ज्ञान का द्योतन विदेशी कलाओ के माध्यम एव मिश्रण से किया है[4] । नगर मापन मे भी इनका जिक्र किया गया है ।[5]

भवन-निर्माण के कुछ उदाहरण तत्कालीन दिल्ली में भी मिले हैं जो दिल्ली की खोज नामक ग्रन्थ से उद्धृत हैं तथा जिससे तत्कालीन दिल्ली सलतनत की स्थापत्य कला का ज्ञान होता है । कवि ने इनकी चर्चा नहीं की है परन्तु भवन निर्माण कला मे हिन्दू कला तथा मुसलमानो कला दोनो का आदान-प्रदान हुआ था । हिन्दुओ की सज-धज वाली प्रेरणा मुसलमानों ने अपनाना शुरू कर दिया था । दिल्ली के सुल्तानो एव हिन्दू राजाओं को उस समय इमारतो के बनाने का बडा शौक था । तत्कालीन दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन का अधिक समय यद्यपि कि लडाइयों में बीता

(१) सिंहल द्वीप वणन खड (२) चित्तौड़ गढ वर्णन खड (३) कादम्बरी एक सास्कृतिक अध्ययन, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल । (४) सातहु रग की योजना ईरानी प्राचीन कलाओं के अनुसार सासानी महलों मे है सम्भवत: जायसी ने यह कल्पना यहीं से ली है । डा० अग्रवाल ने अपना टीका के पृ० ७३३ प पर सम्भावना की है । (५) अध्याय ३ के नगर मापन वाले परिच्छेद मे द्रष्टव्य

फिर भी उसने पृथ्वीराज की दिल्ली लालकोट को छोड कर अपनी राजधानी वहाँ से ढाई मील पूर्व उत्तर में सीरा के स्थान पर सन् १३०३ में बनवाई जो दिल्ली से ६ मील पूर्व है। जिसकी दीवारें अभी तक खडी हैं जो चूने के पत्थर से निर्मित हैं। इसको घेरा १ मील है। राय पिथौरा की मरम्मत करवा कर उसका नाम सीरा का किला रक्खा।

फरत्रै हजार स्तूप :—इसमे एक हजार स्तम्भ हैं। उस समय सीरी को नई दिल्ली तथा राय पिथौरा वाली दिल्ली को पुरानी दिल्ली की सज्ञा दी जाती थी। "इब्नबतूता" ने इसको "दारूल खिलाफत" तथा इसकी दीवालों की मोटाई को १७ फीट बताई है। तैमूर के रोजनामचे मे—सीरी के विषय मे —शहर गोलाकार—बडी-बडी इमारतें—७ दरवाजे आदि का वर्णन है। यह दुर्ग १३२१ तक रहा।

हौज अलाई या हौज खास :—यह दिल्ली से कुतुब की ओर जाते हुए सफदरगज के मकबरे से ढाई मील दक्षिण-पश्चिम, दाएँ-बाएँ हाथ की सडक पर है। इसे अलाउद्दीन ने सन् १२९५ में बनवाया था। यह तालाब क्या पूरी झील है।

अलाई दरवाजा :—कुतुबमीनार के पास यह बडा ही शौकीन दरवाजा है. १३१० ई० मे अलाउद्दीन ने इसे बनवाया था। इस पर गुम्बद बने हैं। जनरल कनिघम ने अफगानों की सभी इमारतों में इसे ज्यादा पसद किया है। यह चौकोर है। अन्दर से ३४॥ मुरब्बा फुट है। अलाउद्दीन द्वारा निर्मित तथा अन्य उस काल की इमारतो मे अधूरी लाट मकबरा अलाउद्दीन शेरगढ (शेरशाह की दिल्ली) शेर मण्डल मस्जिद किला इत्यादि इमारतो का निर्माण तत्कालीन समय मे हुआ था। परन्तु कवि जायसी के काव्यो से इनका ज्ञान नही हो सका है।[१]

नृत्य एवं संगीत कला :—राजा और बादशाह युद्ध खड मे नृत्य एव सगीत का दिग्दर्शन हुआ है। घमासान युद्ध के बीच हिन्दू राजा रत्नसेन अपने अपने गढ के ऊपर 'अखारा रचा'। अखारी-सगीत समाज अथवा नर्तक मडली के लिए है। दूसरा अखारा शाह के चित्तौड गढ मे प्रवेशोत्सव मे रचा गया है जिसमे नट, नाटक, पातुर का जिक्र है। ये अपने गान एवं नृत्य को वाद्यो के सहारे प्रस्तुत करते थे। ये ४ तत्कालीन राज-समाज मे मनोविनोद की प्रधान कडो थे। (नट-नाटक पातुर बाजे)। तुलसी और जायसी के अखारे की योजना में रसभग की एक रूपता सी जान पडती है। रावण के अखारे में राम द्वारा तथा रत्नसेन के अखारे मे

---

(१) इन सभी इमारतों के विषय में ज्ञान के लिए दिल्ली की खोज ब्रज० च दी वाला द्रष्टव्य

अलाउद्दीन द्वारा व्यवधान उपस्थित किया गया है।[१] वादको के द्वारा पखावज, आउज, सुरमडल, रवाब वीणा पिनाक कुमाइच अमिरती चग-उपग, नागसुर तूर वशी हुडुक डफ भाफ मजीरा मृदंग इत्यादि बाजों को सुन्दर तालों के साथ बजाने का उल्लेख है। पाणिनी की अष्टाध्यायी 'भरत' के नाट्य शास्त्र में भी इन बाजों का जिक्र है। इनकी विशेष जानकारी टिप्पणी मे द्रष्टव्य है।

बीजानगर के गायको एव अनेक कलावन्तो द्वारा अलापने एव राग भरने की चर्चा है। भैरव, मालकोश, हिंडोल, मेघमलार, श्रीराग तथा दीपक आदि छः रागों को इन गुनियों ने अलापा। बाद्यों-नाद रागो के सुर के साथ अपनी मोड-मुद्रक को एकात्म करके नाचनेवाली पाच पातुरो का उल्लेख जायसी ने किया है। इन नर्तकियों को वाण से मारने वालो मे मलिक जहाँगीर जो कन्नौज का था, का जिक्र है।[२] गीतो का उल्लेख बसन्त खड एव विरह खड मे भी हुआ है।

साहित्य —जायसी के विदित साहित्य—कवि जायसी को प्राचीन साहित्य की कितनी अधिक जानकारी थी इसका ज्ञान उनकी सामग्री के श्रोतो और उनके काव्यो में आये हुए नामो से होता है। पोथा, सास्तर, वेद, पुरान आदि का उल्लेख किया है।

रिग जज साम अथर्व 'चारो वेदों भासवती अमरकोश-गीता-भारत (महाभारत) इत्यादि ग्रन्थो का नाम कवि ने पदमावती की रसना के वैशिष्ट्य निरूपण में लिया है। चारों वेदों का उल्लेख पाणिनी के अष्टाध्यायी प्रभृति ग्रन्थो में भी मिलता है एव आज तक चारों वेद का प्रयोग किसी की विद्वता के प्रदर्शनार्थ किया जाता है। महाभारत के लिए कवि ने 'भारत' शब्द प्रयुक्त किया है। जायसी द्वारा व्यवहृत इन ग्रन्थो का प्रयोग तत्कालीन समाज में विद्वता-बुद्धि की विलक्षणता के द्योतन य भी किया जाता था इसे सम्भवतः जायसी ने सुन रखा था और अपने काव्य मे इसीलिए गिना दिए हैं।

काव्य के अंग :—कवि जायसी ने स्वयम् काव्यागो का उल्लेख किया है। किसी भी काव्य की रचना के पूर्व किसी न किसी कथानक का होना अनिवार्य होता है जिसके लिए जायसी ने 'कथा' शब्द का प्रयोग किया है। बैन (वचन), नायक (रत्नसेन) नायिका (पद्मावती) घटनास्थली (चित्तौड-सिंहलद्वीप-दिल्ली) तथा अन्य प्रासगिक कथाओ से सम्पन्न जैसी आदि से लेकर अन्त तक की घटना है उसका जिक्र

(१) लंका काण्ड, रामचरितमानस, जायसी तथा (४२। १४) प की सभी पक्तियां (२) मलिक जहाँगीर कनउज राजा। ओहिक यान पातरिकर्द बाजा ४२। १४। ५ प

होने का उल्लेख है। काव्य लेखन का समय 'सन् नौ से सत्ताइस अहै' से द्योतित होता है। 'भाषा, अवधी' के लिए कहा गया है जिसमे काव्य का अकन हुआ है। तुलसीदास ने भी भाषा निबद्ध मति मजुल' का प्रयोग अवधी के लिए ही किया है, सस्कृत के लिए नही। जायसी ने चौपाई दोहा, सोरठा का प्रयोग छन्द शास्त्र के अनुसार किया है। कहीं मात्राओ की कमी से यति-लय में व्यवधान सा जान पडता है। जायसी की इस छन्द-शास्त्रीय कमजोरी का परिमार्जन तुलसी के काव्य मे परिलक्षित होता है। विनयपत्रिका के 'राम कहत चलु राम कहत चलु राम कहत चलुमाई रे'। केछद को तरह महरी वाइसी के छन्दो का आकलन है। दोहा चौपाई ज्यादा प्रिय थे। छन्द के लिए कवि ने पिगल शब्द रक्खा है।

रस—पद्मावत प्रेमःप्रधान काव्य है और प्रेम मे तो रस की धारा का उद्रेक ही रहता है। सयोग और वियोग दोनो अवस्थाओ म रस प्रवाहित हुआ है। वारहमासा (नागमती वियोग खड) मे यदि विप्रलम्भ है तो पट्ऋतु वणन में सयोग मानी शृङ्गार है। सयोग में सोलह शृगार और वारह अभरन का जिक्र है तो वियोग में इन सबका तिरस्कार।[१] भय, सात समुद्र खड मे,[२] वीभत्स युद्ध वणन में,[३] वात्सल्य रत्नसेन की तथा गोरा-बादल की माँ के प्रसग मे,[४] करुण रत्नसेन के वैकुन्ठगमन पर।[५] क्रोध अलाउद्दीन की चिट्ठी प्राप्त होने पर[६]। वीर-हिन्दू स्त्री राव-राने-गोरा-बादल रत्नसेन एव सभी सैनिको की युद्ध क्रिया की उन्मत्तता मे[७]।

अंलकार—जायसी के काव्यों के सिंहावलोकन से ज्ञात होता है कि उन्होंने सादृश्यमूलक[८] उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा,[९] अतिशयोक्ति[१०] ससृष्टि[११]श्लेष[१२], सदेह,[१३]

(१) नागमती वियोग खड तथा षड्ऋतु वर्णन खंड (पद्मावत) (२) सात समुद्र खंड पद्मावती (३) राजा बादशाह युद्ध खंड (४) रोवै रतनसैनि कै माया १२।४।१ प तथा बादिलकेरि जसोवे माया। आइ गहे बादिल के पाया (५१।१।१) प (५) रत्नसेन वैकुन्ठ गमन खंड, पद्मावत (६) सुनि असि लिखा उठा जरि राजा (४१।१।१) प (७) राजा बादशाह युद्ध खंड (८) कंचरात्र कसौटी कसी जनुघन महं दामिनि परगसी—सादृश्यमूलक के साथ उत्प्रेक्षा भी (१०।२।३)प (९) मानु नार सुनि करल विगासा। फिरि कै चयल लीन्ह मधुवासा (२४।१३।१)प (१०) छलकै जाइहि बानपै धनुष छाड़िकै हाथ (४८।१०)प (११) मोहि अस कहा सोमालति बली। कदम सेवती चम्प चमेली। (३२।४।२)प (१२) की कालिन्दी विरह सताई। (१०।१६।६) प

(१३) (१४) धरती बान बेधि सब राखी।
साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥ (१०।६।६)प

निदर्शना,[7] यमक[2], प्रत्यनीक, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त,[3] विशेषोक्ति[4], विभावना[5] अनुप्रास[6], व्यतिरेक बहुप्रचलित अलकारो की स्थापना बड़े चातुर्य के साथ की है। अन्य अलकारो का यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है।

विद्या शिक्षा—तत्कालीन राजन्य वर्गों मे स्त्री-शिक्षा की योजना का ज्ञान पद्मावती की शिक्षा व्यवस्था से होता है। पद्मावती जब ५ वर्ष[8] की थी तभी पढ़ने बैठी। चित्ररेखा का अध्ययन काल भी इसी अवस्था के आस पास है। पद्मावती को चतुर—वेद, रिग-जजु, साम, अथर्व तथा अमर (कोष) भारथ (महाभारत) पिंगल (छन्दशास्त्र) गीता, भासवती (शतानन्द द्वारा विरचित ज्योतिष ग्रन्थ) व्याकरण, वेद-भेद (वेदो का रहस्य) का ज्ञाता सिद्ध किया जिससे एक ओर उसकी ईश्वरता द्योतित होती है तो दूसरी ओर तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षा पाठ्यक्रम का भी ज्ञान होता है कि चारो वेद, ज्योतिष, व्याकरण सहिता, दर्शन, न्याय सबकी शिक्षा छात्रो को दी जाती था। 'ससकिरित' भाषा (सस्कृत) को सम्भवतः अधिक सम्मान प्राप्त था क्योकि सिहल द्वीप में सभी सस्कृत के जानकार हैं।

चतुरदश विद्या—राघव चेतन भी चतुरदश विद्याओ के ज्ञाता (चार वेद, ६ वेदाग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र) रूप में चर्चित हैं। ठगविद्या भी उसे मालूम थी। ज्योतिषानुसार यात्रा मुहूर्त आदि का विचार भी किया गया है जो असगुन-सगुन नामक-परिच्छेद—धार्मिक अध्याय में चर्चित है। ज्योतिष का महत्व था। ज्योतिषी और पडित, जन्म से लेकर और भी धार्मिक कार्यों में सम्मान पाते थे अतः ज्ञात होता है कि इस विद्या का आदर था इसीसे राघव चेतन को मृत्युदण्ड नहीं बल्कि देश निकाला का दण्ड दिया गया।

लेखन—कागर (कागज) मसि (स्याही) पाती (पत्र) लिखनी, आखर (अक्षर), आक (अक), लेख, ककहरा, मोम, दाल आदि के उल्लेख में कला का द्योतन होता है।

कलाकार एवं साहित्यकार—नट-पातुर-गुनी (बीजापुरी) बीजापुर के

---

(८) सिंह न जीता लंकसरि हारि लीन्ह बनवासु
तेहि रिसि मानुस रकतपियरवाइ मारिकै मांसु ॥(१०।१८)प

(९) जौभि नाहिं मैं सब किछु बोला।(१।८।३)प

(१०) भइ बगमेल सेनघन घोटा।
औगजमेल अकेल सो गोटा। (५२।।२।१)प

(११) पांच बरिस मह भइसोबारी।
दीन्ह पुरान पढ़ै बैसारी (३।४।२)प

गुनी नृत्य-सगीत एव वाद्य कला मे तत्कालीन विनोद प्रिय मण्डली मे अधिक सम्मानित थे। राजा द्वारा आयोजित अखारे मे बीजापुरी गुनी (उस्ताद) ही है। जो छः राग छत्तीस रागिनी के जानकार हैं। चित्तौड तक ये लोग समादृत थे।

नृत्य में भाव और रस—अलापना, सुर मिलाना, पाँच सबद करना, जिसे सुनकर सी भका सिर घुनना, अंग-प्रत्यग का मोड-मुडक दिखाना है।

सगीत सम्बन्धी शब्दावली—छ राग, छत्तीस रागिनी, पाँच सबद-अखारा जम (सभी तरह के वाद्ययन्त्रो के लिए) तत-वितत-गुनी-पातुर, नट-नाटक-ताल इत्यादि।

विसुकर्मा तथा मकान बनाने वाले कारीगर—पद्मावती के महल निर्माणकर्ता के रूप मे विसुकर्मा का नामोल्लेख है। वैसे तो भवन हीरे की ईंट-कपूर के गिलावे से निर्मित है परन्तु सातो चौपारी (चौपाल) को विसुकर्मा ने अपने हाथो से स्वय बनाया। गजमोतियों को औट कर चूना बनाया गया। फर्श समुद्र की लहरो की तरहबनाई गयी। इन कलाओ में कुशल तत्कालीन कलावन्तो के कौशल की श्लाघा मे विसुकर्मा को रखा गया जो देवताओ के वासस्थान का कारीगर है। भाव यह कि पद्मावती का महल कुशल कलाकारों द्वारा सर्वोतम रूप से बनाया गया।[१]

महाजन सोनार लोहार कुम्हार :—सिंहल द्वीप मे सराफे की बाजार मे महाजन बैठे हैं जो हथौडे से चाँदी को ढाल कर हाथ के कडे बनाते है यहाँ पर सोना से ही अभिप्राय है। पद्मावती के आभरणों से भी ज्ञात होता है कि सोनारी का उस काल मे महत्व था।[२] रत्नसेन के बन्धनो को काटने के लिए पद्मावती वैद्य मे लोहार की चर्चा है।[३]

बुनकर :—अखरावट में जायसी द्वारा प्रस्तुत आख्या जिसमे सूत-कूच-माडी-सकरा-ताना-वाना-तन्तु आदि शब्दो का व्यवहार हुआ है, इसका सकेत करते है कि कि उस काल मे बुनाई कना तथा बुनकर का भी अस्तित्व था।[४]

कवि :—जायसी की अपनी धारणा है कि कवि कर्म ईश्वर तथा गुरु की कृपा पर ही आश्रित है।[५] गुरु द्वारा करनी (कर्म करने की क्षमता) मिलने पर ही कवि प्रेम काव्य का वणन कर सका। जायसी ने अपने काव्य कौशल की श्लाघा को गर्वोक्ति के रूप में व्यक्त किया है। 'सोइ विमोहा जेहि कवि

---

(१) (२६-१४+१५+१६) प (२) (२। १३। ३+४) प (३) पद्मावति मिस हुत जो लोहारू (५२। ५। ३) प (४) (४३।७) अख० (५) (१०। १०) का सभी पंक्तियां

सुनी' जबकि मुहम्मद (जायसी) एक नैन था अर्थात् विकलांग था। अपनी उपमा चाँद इत्यादि से दी है। स्वयं कवि कुरूप है पर उसके मुँह को स्त्री तथा रूपवत जौहते रहते हैं। जो मुँह देखा सो हसा लेकिन जो काव्य सुना 'तो आयेहु आसु'।

कलाओं का संग्रह :—भवन-निर्माण, बुनाई, चित्रकला, शरीर-साज-सज्जा, कामक्रीडा नर्तन समारोह गायन-वादन सोनारी, कारीगीर इत्यादि का चित्रण जायसी-कालीन मानव समुदाय के कलात्मक रुचि का द्योतक है।

साहित्य और कला का सम्बन्ध ;—मानव के प्रभाव के इतिहास से ज्ञात होता है कि इसका मूलश्रोत साहित्य तथा कला ही है। इन दोनो का सम्बन्ध अन्योनाश्रित है। हम जो कुछ सोचते हैं—अनुभव करते हैं उसका जितना भाग शब्द और अर्थ मे व्यक्त होता है वही साहित्य बन जाता है तथा अनुभूति गम्य होने पर भी जो अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं कर पाता, शब्द की सामर्थ्य से परे हो जाता है *परन्तु रेखा और रंग से स्पष्ट हो जाता है वही कला बन जाती है। अतः ज्ञात हुआ* कि कला और साहित्य का साहचर्य है।

उपसंहार ;—जायसी ने अपने काव्यो में तत्कालीन प्रचलित कामकला, चित्रकला, मूर्तिकला मृदभाजन स्थापत्य संगीत वादन नर्तन नाट्य सोलह श्रृंगार बारह अभरन-वेशभूषा कथा-कहानी लेखन पढाई द्यूत विद्या ठगविद्या ठगौरी धोखा-धड़ी चतुरदस विद्या लेखा-जोखा आक आखर मुखवचन ज्योतिष भविष्य कथन, सुगन्धित द्रव्य बागवानी रत्न परीक्षा सोनारी छपाई बुनाई काष्ठकला इत्यादि प्रमुख कलाओ की चर्चा की है। इनके सम्पादकों मे नायक-नायिका चित्रकार कारीगर कुम्हार, गायक, नर्तक, पातुर, रमणी, कवि, विआस ठग ज्योतिषी बुनकर सोनार-लोहार, इत्यादि का भी उल्लेख है। बीजानगर के नट-नर्तक, गायक वादक, गुनी पद्मावत मे सर्वोत्तम समझे गये हैं। विवेच्यकाल में स्थापत्यकला पर्याप्त विकास पर थी। खिलजीकालीन इमारतो में सजावट अधिक है। साहित्यिक उन्नति भी काफी प्रगति पर थी। वास्तव में दोनों की उत्पत्तिस्थली मानव का मानस पटल है जिसके स्पष्टीकरण मे वह कागज स्याही कलम कथा-कहानी भूगोल मिट्टी-लोहा सोना चाँदी, ईंटा, गिलावा हथौड़ा आदि से साहाय्य लिया है। इस तरह ज्ञात होता है कि कामसूत्र प्रभृति ग्रन्थों की चौसठ या बहत्तर कलाओं में से इतनी ही अधिक प्रचलित *या प्रधान थी। शेष कम समादृत थी या कि गौड थीं नहीं तो जायसी अपने काव्यों में* उनका आकलन अवश्य करते।

---

(१) साहित्य और कला—द्रष्टव्य इसी अध्याय का प्रथम अंश (२) डा० हरद्वारी लाल शर्मा, प्रकाशकीय, रामप्रताप त्रिपाठी,

उपसंहार—विगत अध्याय मे सूफी कवि जायसी के शब्दकोश का सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जायसी द्वारा विरचित ग्रन्थ तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक सास्कृतिक एव राजनैतिक जीवन के घात-प्रतिघात को द्योतित करते हैं। इनके सरचना काल मे भारतीय जीवन मे मुसलमानों का आतक अधिकाशतः परिव्याप्त हो चुका था। मुगल साम्राज्य स्थापित होने की स्थिति मे था। हिन्दू तथा मुसलमान का मनोमालिन्य दूर हो रहा था। अतः यह युग इन दोनों जातियो की संस्कृति के मेल का युग है। जायसी की रचनाओ के आधार पर तत्कालीन सम्यता और सस्कृति का आकलन करना अधिक उपयोगी जान पडता है। इसी लक्ष्य को घ्यान में रखकर जायसी के शब्दकोश के माध्यम से तत्कालीन सस्कृति की महत्वपूर्ण विवेचना की गई है।

प्रथम अध्याय मे जायसीकालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखा गया है तथा उसके आधार पर जो सास्कृतिक स्पष्टीकरण होता है वह कहाँ तक जायसी के ग्रन्थों मे उपलब्ध सास्कृतिक आयामों से मेल खाता है और कहाँ तक नही।

ग्रन्थों के रचनाकाल में दिल्ली पर—बाबर, हुमायूँ तथा शेरशाह का आधिपत्य एक के बाद एक करके रहा है। सम्पूर्ण भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था। उत्तराधिकार भी नियम विहीन था। शासन एक तन्त्रीय था। राजकीय कर्मचारियो के स्थान परिवर्तन भी हुआ करते थे। उनका वेतन राजकोश से नकद दिया जाता था। सघर्ष की निरन्तरता से सीमा निर्धारण रेखा घटती बढ़ती रहती थी। सुधारों में भूमि प्रबन्ध, गुप्तचर विभाग, न्याय तथा दण्डनीति सैन्य सगठन, मुद्रासुधार, यातायात आदि है। विजयश्री को प्राप्त करने में छल-छद्म भी ग्राह्य थे।

समाज गतिशील है। वर्णव्यवस्था भी अभी जीवित है। समाज उच्च, मध्यम तथा निम्न वर्गों में विभक्त था। पुरुषो की समता में स्त्रियो का स्थान कम महत्वपूर्ण था। जातीय गौरव भी था। रहन-सहन, खान-पान, वस्त्राभूषण आदि मे कुछ नवीनता आ रही थी। मास केवल मुसलमानो मे समादृत थी। फल तथा पेय पदार्थ भी उल्लिखित हैं। त्योहार, उत्सव, समारोह, खेल, कूद, नर्तन, गायन, शिकार इत्यादि मनोविनोद मे थे। अध विश्वासों का अस्तित्व था। सती-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा विवाह निषिद्ध आदि प्रथायें भी थीं। भोज देना, रिश्वत लेना देना आदि बातें भी प्रचलित हो चुकी थीं।

यह युग धर्मोन्माद का था। वैष्णव, शैव, जैन, बौद्ध, शाक्त, नाथ, सूफी तथा इस्लाम आदि धार्मिक पन्थों का आन्दोलन चल रहा था। आर्थिक क्षेत्र मे कुछ वैषम्य था। जो सामाजिक वर्ग भेदजन्य जान पडता है। सरकारी आय में भूमिकर

प्रधान था तथा व्यय मे सैन्य व्यवस्था, भवननिर्माण, एव उत्सव आदि थे। शिक्षा का केन्द्र जौनपुर था। समाज द्वारा शिक्षाका प्रबन्ध था। छात्रो को वजीफे आदि भी दिये जाते थे। बादशाह भी साहित्य एव कला आदि के प्रेमी थे। बाबर, जौहर, मुल्लादाउद तथा कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि इसी काल के हैं।[1]

दूसरे अध्याय मे जायसी के ग्रन्थो से प्राप्त भौगोलिक सामग्री पर प्रकाश डाला गया है। उनके द्वारा तत्कालीन भारतीय सीमा हेम-सेत-गौड गाजना थी। जो इनके पूर्ववर्ती कवियो के द्वारा उल्लिखित सीमा से कुछ सकुचित जान पडती है। सात द्वीप सात-समुद्र, नहँखड, धरनि खण्ड, चौदह भुवन आदि भौगोलिक सकेतो को जायसी ने कई बार प्रयुक्त किया है। इनकी विवेचनासीमा के अन्तर्गत दिल्ली चित्तौड काश्मीर ठट्ठा, मुलतान, बीदर, माडौ, गुजरात, औडे सा, कावरू, कामता, पंडआई, देवगिरि, उदैगिरि, कुमायूँ, हेम, सेत, तिलग, रनथभौर नरवर, जूनागढ़, चम्पानेर, चदेरी, ग्वालियर, अर्जगिरि, बाधो, कालिंजर, विजैगिरि, रोहतास, कन्नौज आदि राज्य एव दुग है जो अलाउद्दीन तथा रत्नसेन के युद्ध कालीन प्रसगो मे है। प्रयाग, काशी, जगरनाथ, द्वारिका, अयोध्या, केदार धार्मिक स्थल हैं जो मात्र उत्तरी भारत क हैं। दक्षिणी भारत का सेत मात्र सीमान्त रूप मे व्यवहृत है—धर्मस्थल स्वरूप नहीं। गोनकुण्डा, गढाखटगा, अधियारखटोला, रतनपुर जोगिनो की यात्रा के मार्ग मे मिलते हैं। चन्द्रपुर चित्ररेखा मे उल्लिखित है। सिंहल, लका, पलका, रूम, साम, हरेउ, खुरासान, खंधार वाह्य देश अथवा राज्य हैं, गिरनार, विन्ध्य तथा दण्डक वन एव गोमती, गगा, सरसुती, जमुना, सोन तथा नील तथा धौलगिरि, उदैगिरि खिखिदा, सुमेरू, हेम आदि पहाड़ों का उल्लेख हुआ है।

षड्ऋतु तथा बारहमासे से चित्तौड एवं दिल्ली तथा सिंहली एव उसके आसपास की जलवायु को व्यक्त किया है। अविली-आम प्रभृति २४ वृक्षो दाडिम, द्राक्ष, आदि ३५ फलो, असोग, कमल, करना सदृश २७ फूलो, अभरक, कोइला, सोना, रूपा आदि २४ खनिज पदार्थों का वर्णन है। उंदुर, कुरग, कु जर, सिंह आदि ३२ भूमन्डलीय जीव तथा काछू मछली सदृश ६, १० जलीय जीव एव पाताल मडलीय जीवो में अस्टौकुरी नागो की विवेचना काव्यों में की गई हैं। पक्षियों में उल्लू उसरवगैरी प्रभृति ४७ पक्षियों की विपद् विवेचना है जो भोजन उपमान एव अपने स्वाभाविक गुणों में व्यवहृत हैं। सूर्य और चन्द्र का रथ पर चढ़ कर चलना माना गया है। वर्षाकाल के सभी नक्षत्रो के साथ नवग्रह का उल्लेख भी है। अगस्ति के उदय से वर्षा की बुढ़ौती मानी गई है। इस तरह कवि जायसी ने समस्त भौगो-

(१) द्रष्टव्य सम्पूर्ण अध्याय १,

लिक उपकरणो का उल्लेख उनके सहज स्वाभाविक गुण, राजनैतिक दृष्टिकोण, किसी गुण के प्रतीक, आदर्श अंगो के उपमान, शुभाशुभ विचार क्रीडा विनोद तथा युद्ध की भयकरता आदि के सन्दर्भो मे किया है।[1]

अध्याय तीन में जायसी द्वारा उल्लिखित भारतीय सीमा के अन्तर्गत हिन्दू तथा तुरुक एव अफगान जातियों से समाज गठित है। हिन्दुओं की सभी जातियाँ जैसे.. ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र वैश्य एव इनकी उपजातियो जैसे ब्राह्मणो में पाडे, दूबे क्षत्रियों में ३६ कुली आदि का चित्रण है। जन-जातियो में नाऊ-बारी, भाट, लोहार तेली, धोबी विश्वकर्मा चोर व्याध माली प्रभृति का उल्लेख है। विदेशी जातियो मे खसिया, रूसी, हबसी तथा फिरंगी हैं। तुरुकों की उपजातियो में मिया, शेख, सैयद हैं। तुरुक को हिन्दू राजा द्वारा भोज एवं उसके गले में पगडी डालकर सत्कार करना दोनो जातियों के साम्य की दिशा इगित करता है। शाह अलाउद्दीन द्वारा गढ जो घेरे में देखा गया है जिसमे सभी आमोद-प्रमोद मे निमग्न हैं--अर्थात् लडाइयों का सम्बन्ध जन सामान्य से नहीं जान पडता है।

विवेच्यकाल मे परिवार पुरुष सत्तात्मक हैं। संयुक्त परिवार प्रथा के नाते सास, ननद, भावज, देवर, ससुर प्रियतम आदि भी उल्लिखित हैं। बहुपत्नीक प्रथा थी परन्तु बहुभर्तृता नहीं। दाम्पत्य प्रेम मधुर था। पत्नी का रक्षक पति होता था। रक्त सम्बन्धियों, दास-दासियों की गणना भी पारिवारिक अगस्वरूप है। पाहुन और परदेशी भी समादृत हैं। विवाह दो कुलो के बन्धन रूप मे स्वीकृत है तथा उसकी सभी शास्त्रीय पद्धतियों का उल्लेख है। बाएँ हाथ से आशीर्वाद न देना सीस ढाँपि कर स्त्रियों का चलना, सत, वाचा, सीख साखी, पिता की आज्ञा, सिर माथे लेना समाज मे मान्य है। आलोच्य ग्रन्थो मे शरीर का सौन्दर्य उसके नख-शिख अनुपम होने में है। दामिनी सदृश मांग, द्वितीया चाँद की तरह ललाट, नाग सदृश केश, कमल से बढ़कर रतनारे नैन, धनुषो के बढकर भौहें अमिय सुरग रस भरे अधर, हीरे सदृश दात, कोकिल से बढकर कठ रस युक्त रसना, नारंगी सदृश गाल, सोने के लड्डू की तरह कुच, सिंह की तरह पतली कमर, स्वणदन्डींवत् भुजा उल्लिखित है। उच्चवर्गीय लोग चतुर सम, अरगज, मरगज, आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप भी करते हैं।

स्त्रियों के पहनावे मे चीर, साडी, ओढ़नी चोला, पटोरा, नीबी, आंचर घूँघट तथा पुरुषो के पहनावे मे धोती साट दगल, फेंट, पैरी और पांवरि हैं।

(१) सभी भौगोलिक उपकरणों के लिए द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सम्पूर्ण दूसरा अध्याय।

आभरनों में प्रायः स्त्री अगों के आभूषण चर्चित हैं। नथ तथा बेसरि इस युग की देन है जो नाक के अभरन हैं—छत्र, मुकुट, खोलि, खु टी, खुटिला, मुद्रा, बारी, हसुली, टोडर, हार, कगन, टाड, वलय, मुंदरी, पायल, अनवट तथा विछिया आदि अन्य अगो के अभरन हैं।

शाकाहार तथा मासाहार दोनों का चित्रण है। पहला हिन्दू तथा दूसरा तुरुक के लिए है। मासाहारी रसोई तत्कालीन राजकीय पाकशाला की तरह है जिसमें मछली पक्षी एव जगली जीवों के मास बारह तरह के मसाले और तेल-घो आदि मिलाकर बनाये गये हैं। सोहारी, पूरी, लुचुई आदि गेहूँ से तथा पसिआउर खीर आदि सत्ताइस तरह के चावलों से निर्मित है जिनमें सहस्त्र स्वाद है भोजनोपरान्त खडवानी दिया गया है। मास मदिरा मात्र उन्मत्तता के द्योतन में ही प्रयुक्त है।

हिंडोरा, सतरज चौगान चौपड आदि मनोरजन के साधन हैं। हिंडोरा का खेल मात्र नैहर में ही मान्य हैं। सतरज-पासा आभिजात्य वर्ग का खेल है। सींग सख भेरी सदृश पाँच प्रकार के युद्ध के वाद्य झाझ तूर सदृश तीस तरह के उत्सव एव विलासिता के वाद्य किंगरी-धधारी सदृश पाँच तरह के जोगी के वाद्य एव सख घटा सदृश तीन प्रकार के देवता सम्बन्धी वाद्य उल्लिखित हैं। त्योहारों मे देवारी बसन्त (फाग) आदि का वर्णन है घोडा हाथी रथ डाडो बेवान तरेंडा वाहन में हैं।

चित्तौड तथा सिंहल दो नगरो का वर्णन है। इन दोनो में काफी साम्य है। सिंहल की नगरीय परिधि के पहले ही पद्रह तरह के फलो की पेडो की डाल या बावलियों पर चौदह तरह की चिडियो का कलरव वर्णित है। कुआ-बावली मठ ताल तलावरि भी उल्लिखित हैं। तइस-चौबीस प्रकार के मेवों की बगीची छब्बीस सत्ताइस तरह के फूलों की फुलवारी आदि का क्रमश वर्णन है। ऐसे प्राकृतिक वातावरण के मध्य में सिंघल नगर बसा है जिसके द्वार ऊँचे बाजार सम्पन्न हैं। जिसकी खाई अनुपम है। परकोटे कौसीसा नौ द्वारों के बाद दसवां द्वार राजसभा मंदिर कबिलास रनिवास आदि का क्रमश: उल्लेख है। चित्तौड नगर अधिकाशत ऐसा ही है परन्तु इसमें रनिवास का विवेचन कुछ अधिक है। गार्हस्थ्योपयोगी सामग्रियों में से चदोवा सुराही गागरी प्रभृति पैंतीस-छत्तीस दैनिक व्यावहारिक एव किसी विशेष परिस्थिति में उपयोग्य वस्तुओं का वर्णन है। तत्कालीन स्त्री पुरुषों के नामकरण में ज्योतिष का साहाय्य लिया गया है। नाम वशपरम्परा सूचक भी हैं। इति सेन वती मती आदि प्रयोग मिलते हैं।[1]

(१) सभी सामाजिक गतिविधियों के लिए द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सम्पूर्ण तीसरा अध्याय।

विवेच्य ग्रन्थो में राजनैतिक स्थिति कुछ डावाडोल है। शासन प्रणाली राजतन्त्रीय है। बाबर शेरशाह अलाउद्दीन गन्धर्व सेन तथा रत्नसेन आदि राजाओं का वर्णन है जिनमें रत्नसेन को टाड ने भामसी तथा अबुल फजल ने रतनसी माना है। मन्त्रियो से अधिक न्यायविद पडितों का स्थान है। न्याय एव धर्म तथा शासन की व्यवस्था मे राजा सर्वाधिकारी है। शासन के मुख्य कार्यों मे सुरक्षा धर्म न्याय एव अपराध के अनुकूल दड व्यवस्था है। राय राने असुपति गजपति तथा दास दासी दूत दूती भी वर्णित है दड व्यवस्था मे सूली भी दी जाती है। सत् एव साखो का भी अस्तित्व है। आन-बान का महत्व अधिक है। गृहिणी रक्षा मे जौहर तक स्वीकार है युद्ध मे प्राणाहुति को वरीयता दी गई है लेकिन पीठ दिखाना घृणित समझा गया है। सेना की सख्या मे छप्पन करोड नब्बे लाख छत्तीस लाख चौबीस लाख बाइस हजार बीस हजार इत्यादि है। इनके अधिकारियों मे छत्रपति राजकुमार कोटवार मलदूत मीर उमरा आदि हैं। बाइस-तेइस प्रकार के युद्ध सम्बन्धी बाजे उल्लिखित हैं। युद्ध काल मे मनोरजनार्थ अखारा की योजना की गई है।[1]

सूफी सिद्ध फकीर जायसी ने समसामयिक प्रचलित वैष्णव, शैव, जैन, बौद्ध, शाक्त, सिद्ध, नाथ तथा इस्लाम एव सूफी आदि सम्प्रदायो की चर्चा की है। उनकी साधनाओं की पारिभाषिक शब्दावली में अपनी सूफी प्रेमपरक साधना का दिग्दर्शन कराया है। शैवमतानुयायी नाथो की योगसाधना को अधिकाश रूप मे ग्रहण किया है। इस्लामी न होते हुए भी जायसी इस्लाम के सहयोगी थे। उन्हे तत्कालीन प्रचलित साधना पथों के यम-नियम वही तक मान्य थे जहाँ तक वे प्रेमी साधक को साहाय्य प्रस्तुत करते हैं अर्थात् अन्ततः सभी साधना मार्ग असफल सिद्ध होते हैं और सूफी साधना प्रेमी एव प्रेमिका के लिए उत्तम सिद्ध होती है। उन्होंने बडे चातुर्य से अपने युग की प्रचलित साधनाओं के शब्दो के माध्यम से ही अपनी साधना का स्रोत प्रवाहित किया है।

भारतीय धर्मप्राण जनता मे प्रचलित जादू-टोना, पाप-पुन्य, सरगपतार, सगुन-असगुन आदि विश्वासो एव आचारो का वर्णन भी किया है। मूर्तिपूजा का समर्थन नही करते। इन्द्र, कृष्ण, कुबेर प्रभृति ४०-४२ देवताओं की चर्चा की हैं। कुछ ऐतिहासिक महापुरुषो का उल्लेख भी किया है। परमात्मा आत्मा का विश्लेषण सूफी दर्शन के अनुसार है जिस पर वेदान्त का भी प्रभाव है। वे ईश्वर को पुष्प मे

(१) राजनीतिक-युद्धनीति सैन्य व्यवस्था आदि के लिए द्रष्टव्य सम्पूर्ण चौथा अध्याय।

सौरभ सदृश सर्वत्र व्याप्त मानते है। सृष्टि के उपादानों में चार तत्वो की गणना है। भारतीय दर्शन इनकी संख्या पाँच मानता है। ज्ञान-सत्य का महत्व तथा तिस्ना, क्रोध, लोभ का त्याग उल्लिखित है।[१]

इस युग में कला और साहित्य भी विकसित है। बाबर स्वयं कविता करता था। अकबर साहित्य रचयिताओ का आश्रयदाता था। धर्माचार्यों ने भी रचनाएँ की हैं। कवि जायसी ने रस, छन्द, अलङ्कार आदि का परिगणन भी किया है। लेखनी, मसि, कागज आदि भी चर्चित हैं। कलाओं में स्थापत्य, मूर्ति, संगीत, नृत्य आदि का उल्लेख है। कामकला सर्वोपरि है। बीजापुर के गुनी को विशेष मान्यता प्राप्त है। बिसुकर्मा की निर्माणकला विशेष समादृत है।[२]

---

(१) धार्मिक सभी उल्लेखों के लिए द्रष्टव्य प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सम्पूर्ण पांचवांअध्याय (२) साहित्य एवं कला के लिए द्रष्टव्य ,, ,, छठां अध्याय

शब्दानुक्रमणिका

(भौगोलिक पर्यावरण)

भूमिर ४६ । २ । ६	पद्मावत
महि १ । १	अख०
महि १ । १४ । ४	पद्मावत
महिमन्डल २४ । ६	"
माटि	चित्ररेखा
मागी १ । ४ । ६	पद्मावत
मेदिनि ४ । ४	आ० क०
मेदिनि १ । १६	पद्मावत
सिस्टि २६ । ८ । ४	"
सिष्टी	(चित्ररेखा)
ससार ११ । ८ ।	पद्मावत
ससारा।	चित्ररेखा
ससारा १ । ३	आ० क०
संसारू १ । १ । १	पद्मावत
पट खंड १ । ४४ । ४	पद्मावत
पिष्टि	चित्ररेखा)
(२) परवत ४ । ६	आ० क०
परवत १ । १४ । २	पद्मावत
उदैगिरि २४ । १७ । ३	"
कोहतूर ३५ । ६	आ० क०
कचनमेरू १६ । १	पद्मावत
कचनगिरि १[.]। २१ । ६	"
खिखिन्द २ । १६ । ४	"
गिरि ४० । ४	आ० ख०
गिरिवर ४० । ६ । ३	पद्मावत
धौलगिरि १४ । २ । ४	"

पब्बे २ । २१ । ६	पद्मावत
पखान १३ । ३ । ७	"
पहार २४ । १ । ४	"
पहार ४ । ४	आ० क०
पहारा ९६ । ६ । ३	पद्मावत
पहारा	(चित्ररेखा)
पहारु १८ । १ । ५	पद्मावत
पाटी १२ । ११ । ४	"
पायर १६ । ३ ।	आ० क०
पाहन २१ । ६	पद्मावत
पाहन भरवकरै २३ । ६	पद्मावत
मलैगिरि ४ । ०१ । २	"
मलैसमीर (४ । ७ । ३)	"
मेरू १४ । १०	"
मन्दर २५ । ६ । १	पद्मावत
सिखर १३ । १० । ३	"
सिला १ । १७ । ७	"
सुमेरू १४ । १० । ०	"
हिवचल ३० । १० । ४	"
हिवचल १६ । ७	अख०
हेम १५ । ५	पद्मावत
(३) वन	(चित्ररेखा)
वन १८ । ४	अख०
वन १ । १० । ३	पद्मावत
आरन २ । १७	"
खेद २४ । १ । ६	"

छार १ । ३ पद्मावत
छारा ३१ । ६ । ३ ,,
झारखड १२ । ३ । ७ ,
झोल ३० । १० । ६ ,,
ढक १२ । १२ । ४ ,,
तिन १ । ६ । ५ ,,
धूरि ८ । अख०
धूरी १ । १४ । २ पद०
बनखड १ । २४
बनाह ३१ । १२
बारी २० । १५ । ६ ,,
बिझ ३१ । १२ ,,
बीझ १२ । १२ । ४ ,,
माटवा २६ । ६ । ७ ,,
माटी २ । १८ । ४ ,,
मिरगारन १२ । १४ । १ ,,
रज ५३ । ३ । ४ ,,
रेनु १ । १४ । ३ ,,
रेह ३१ । ८ । ४ ,,
रोहू १ । १० । ४ ,,

(४) समुद्र-नदी-नार जल इत्यादि

उदधि १३ । २ पदमावत
काई २२ । ८ । ४ ,,
कालिन्द्री १० । १६ । ६ ,,
कालिंदी २२ । १० । २ ,,
कालिंदिरी ८८ । १० । ६ ,,
किलकिला ६ । ३ । ५ ,,
कीच ४ । ६ आ० क०
कुण्ड २ । १२ । २ पदमावत
खार १५ । १) ,,
खीर ,, १३ । ६ ,,
गोमती (चित्ररेखा)
गंगा ३६ । १३ पद्मावत
गांग ३२ । १ । ४ ,,
घाट १ । १६ ,,
जमुना ४० । ४ । ४ ,,
जल १ । १ । १ ,,
जल (चित्ररेखा)
जल ८ अख०
जलहि १८ । १ । ७ पदमा०
जिअना १ । ५ । ६ ,,
झरना १ । २ । २ ,,
टट ३१ । १० ,,
तरग २८ । १३ । ५ ,,
तीर ४ । ३ । १ ,,
तीर १। ४ महरी बाइसी
दधि (समुद्र) १ । ३ । २ पद्मावत
दरिया ६ । १ आ० क०
दरियाव (चित्ररेखा)
नदिया ३ । १ महरी बाइसी
नदी ४ । ६ ,,
नदी १६ । ५ आ० क०
नदी १ । २ । २ पद्मावत
नार १ । २ । २ ,,

नार १६ । ५	आ क०	लहरहिं ११ । १ । ३	पद्मावत
नारा १२ । ११ । १ प	पद्मावत	समुद्र १ । २ । १	"
नीर १ । १५ । ६ प	"	समुद्र १ । ७	महरी बाइसी
नीर २६ । ७	आ० क०	समुंद्र ४ । ६	आ० क०
नीर १ । ४ महरी	बाइसी	समुद्र	(चित्ररेखा)
नीरू १५ । २ । १	पद्०	समुन्दा ४ । १	आ० क०
नील ६ । ६	आ० क०	सरवर २४ । ६ । ४	पद्मावत
पदुमसर १८ । ६	पद्०	सरोवर ४ । १ । २	"
पाटा १५ । ७	पद्मावत	सायर १५ । १ । १	"
पानि १ । १४ । ७	"	सुमर १० । ५	"
पानि	(चित्ररेखा)	सुरसरि २२ । १ । ४	"
पानी १४ । ११ । ५	पद्०	सुरसती ४० ४ । ४	"
पानी के करा १३ । ४ । ५ पद्मावत		सुरासमुन्द १५ । ५	"
पालि ४ । २ । १	"	सोननदी ४८ । १६ । ४	"
फेन	(चित्ररेखा)	हलोरा १० । १ । ४	"
बारि ४ । ५	पद्०	हीरा १५ । २२	"
बुलबुला	(चित्ररेखा)	हंस २ ७ । ६	"
भवर २४ । १३ । ६	पद्मा०	(५) जलवायु—	
मानसरोदक ४ । १ १	"	ओला ४१ । ३ । ६	पद्मावत
मानसर ४ । ७ । १	"	ग्रीखम २६ । ५ । १	"
मानसरोवर ४ । २ । १	"	घामू २ । ३ । ६	"
रत्नाकर १६ । ३	"	जाड ३० । १० । १	"
रेती ३४ । १ । ५	"	तपन ४ । ७ । ३	"
लहरि ३४ । ११ । ५	"	दवंगरा १० । १४ । ७	"
लहरें ३१ । १ । २	"	धूपा २ । ३ । ७	"
लहरें ४ । ३	"	नवल बसंत ४ । ४ । १	"

ढाखा ५।१।२	पदमावत
तरुवर	(चित्ररेखा)
तरिवर ३४।३	"
तार २।४	"
ताड़ २२।१०।१	पद्मावत
तेंदू ३६।४।२	"
थारा (थाल्हा) ४६।६	आ०क०
नीम ३७।६ अख०	
निबकौरी २०।५।७	पद्मावत
पाकरि ३२।८।४	"
बड्हर ३६।७।१	"
बनफती २३।१२।५	"
बनाफति ३०।१२।४	"
बर (चित्ररेखा)	"
बर ३२।८।४	पद्मावत
बबुर १६।७	अख०
बबूरि १५।५।४	पदमावत
बिरिख १।२२।७	"
बिरिख ६।२	आ० क०
बिरिखा ५०।३।२	पद्मावत
बिरिछ ३।२	"
बिरवा ३।३	अख४
बीज २	"
बीरौ २	"
बीरौ ४।११।४	पद्मावत
भोगबिरिख ५।६।४	"

महुब २०।५।१	पदमावत
महुँम १५।५।१	"
रूख ३१।४	"
सहार २६।५	"
साखा ३१।५।४	"
सेंवर ८।७।१	"
(८) फर २।४	"
फल १६।६	"
अबरा २०।५।६	"
उडानफर ५।३।४	"
उतंग जभीर १०।१५।६	"
अजीरा २।१०।२	"
कटैली (बैर) ३६।६।२	"
कमरख २।१०।६	"
करौंदा २।१०।६	"
कसौंदा २०।५।६	"
किसमिस २।१०।४	"
केला ३।६	"
केरा ५।६।२	"
कैदली २७।१२।७	"
खजहजा ४४।६।५	"
खजूरी १।२।४	"
खिरनी २।४।१	"
खीरी २०।५।३	"
खीरा २०।५।	"

(६) फूल और पान—

कंवलकरी २४।१२	पदमावत	खूम्हा ,६।४	पद्मावत
कवलगटा २२।१४	,,	गटा ३६।४।२	,,
कवलपौनारी २२।१२।७	,,	गडौना धान २७।१६।२	,,
कमोद ८।१	,,	गुलाल २।११।३	,,
करना ४।१।३	,,		
करी ३।६।५	,,	घनबेली २।२२।२	,,
करी	(चित्ररेखा)	घनि ५।३	,,
काटा	,,	घुघु ची ४०।१५।४	,,
काटा १।२४।७	पद्मावत	घोरी २०।४।७	,,
काटे ४।२	महरीवाइसी	चम्प १२।१०	महरीवासी
कुई ८।४७	पद्मावत	चम्पा	(चित्ररेखा)
कु द २।११।२	,,	चम्पा २।११।२	पद्मावत
कुन्दनबेल १०।१५।२	,	चबेली २।११।२	,,
कुमुद २।६।१	,,	चमेली ३६।१।७	,,
कूदहि ६।१।४	,,	जवास ३०।६।६	,,
कू जा २।११।३	,	जरि १।२।४	,,
केति	चित्ररेखा	जाही २।११।६	,,
केत २।६।२	पद्मावत	जूही २।११।६	,,
केतु २३।१८।२	,,	टेसू १२।६	,,
केवरा २।२२।२	,,	तिलपुहुप १०।७।४	,,
केवा २४।१५।५	,,	तम्बोल १०।८।६	,,
केवाँछ १८।१।२	,,	तबोरी २७।३६।४	,,
केसरि ४।१६।६	,,	नलिनि ४०।१७।१	,,
कोईं ११।५।२	,,	नलिनिखड ३४।१८।५	,,
कोकाबेरी ३६।७।१	,,	नवेला २४।१०।७	,,
कोंप ४०।११।२	,,	नागेसरि २।११।४	,,
कज ४०।१४।७	,,	नेवती २७।१६।४	,,
कजनाल १०।१३।१	,,	नेवारी २।११।४	,,

सुमन १।५	आ० क०
सेवती ५१।१।५	पद्मावत
सोनजरद २।१।१।५	"
सपुट २४।१२	"

१०. खनिज पदार्थ

अष्टधातु ४२।१०।४	पद्मावत
अभरक २७।४।७	"
आरस ४५।१७।७	"
कनै १६।२।५	"
कनक २।१४।२	"
कनकदंड १०।१४।१	"
कनक जराऊ २६।२।५	मनि
कनकसुवासि ६।३।३	"
कचन	(चित्ररेखा)
कंचन ३२।११	पद्मावत
कचनतार २३।१०।१	"
कुंदन ४०।१।१	"
कोइला २७।१८।७	"
काचु ३२।१।३	"
गजमोती ७।२	आ० क०
गंधक २७।४।४	पद्मावत
जसता ३२।४।३	"
दिनार ४०।२१।३	पद्मावत
दुआदसवानी ६।३।४	"
धातु २७।३।४	"
नग १।२।३	"
पदारथ १४।४।७	"
परस १६।४।७	पद्मावत
पारस ४।७।७	"
पारस	(चित्ररेखा)
पुहुप (पीतल) ३२।४।३	पद्मावत
पौति ३६।८।३	"
फटिकरा ३७।४।५	"
बज्र (हीरा २।१७।२	"
बान ८।१।६	"
बारहवानी २।२५।७	"
बारहबानी २२।१४	महरीबाइसी
बिद्रुम १०।८।३	पद्मावत
मनि	(चित्ररेखा)
मन १।१६	पद्मावत
मनिक २।७	आ० क०
मानिक ३।६।६	पद्मावत
मूँगा ११।७।२	"
मोती	चित्ररेखा)
मोती १५।२।२	पद्मावत
रतन १।६।१	"
रूप २७।३।५	"
रूपई २।१३।३	"
रूपै १२।१०।१	
रांग २७।४।६	पद्मावत
लोह ३५।७।३	"
सीप २।६	"
सेतफटिक ४२।१५।४	"
सोना ८।१।६	"
सोहागू २७।२६।१	"

केकानी (घोड़ा) ४।१।८।१ पद्मावत
केबी „ ४।१।८।३ „
केतकर भँवरा २५।३।१ „
केहरि १२।८ महरी बाइसी „
केहरि ३।६।७ पद्मावत
कोकाहा (घोड़ा) २।२२।३ „
खग „ ४।१।८।३ „
गउव १।१।१।५ „
गज २६।२।६ „
गजमोती २६।१५।४ „
गजमोती १२।८। महरी बाइसी
गदहा १४।७ पद्मावत
गयद ३५।८।७ „
गर्र (घोड़ा) २।१२।१ „
गरिआरा (बैल) १५।८।२ „
गादुरस (चित्ररेखा)
गादुर १२।१०।५ पद्मावत
गिरगिट ६।६।३ „
गैंड ४१।२०।१ „
गौन (बारहसिंघा) „
गध्रप (भौंरा) ४।१ „
घरियार ३।७ महरी बाइसी
घुन १५।६ पद्मावत
घोर २।२।८ „
घोरसारा २।२।८ „
घोघा ४।६ „
चरक ४४।२।४ पद्मावत
।ल्ह ४४।२।४ „

चांटा २७।८ आ० क०
चांटा (चित्ररेखा)
चांटा १।८।६ पद्मावत
चीतर ४४।१।२ „
चौंधर (घोड़ा) ४।१।८।४ „
चडौल ३५।१।३ पद्मावत
छागर ४४।१।१ „
छवा (बन्दर का बच्चा) २२।१।६ „
जरदा (घोड़ा) ४।१।८।५ ,
जरेलगूर २।१।८।६ „
जलाकुक्टी ४४।१।५
जियाजतु १६ आ० क०
जियाजन्तु ४।६ अ० रा०
जीहा २।१७।७ पद्मावत
जबुक २४।२।६ „
जंमुक ८२।४।४ „
झाँख ८४।१।२ पद्मावत
टेंगिनि (मछली) ८४।२।२ „
ताजी घोड़ा (४।१।८।४)

तापन राग २।२२।८ पद्मावत
डरवारा (घोड़ा १५।८।२ „
डरकी „ १।८।७ „
तुरग „ ८।१।८।७ „
तुरगम „ ३४।२३।७ „
तुरगबालक „ ३४।८।७ „
तेली का बैन,, २८।७ अख०
दादुर १।२४। पद्मावत

मगुरी ४४।२।३	पद्मावत	ससू ३।७	महरीवाइसी
माछ १८।७	आ० क०	ससै ४४।१।२	पद्मावत
माछ १२।१०।१०	महरी०	सहरी (मछली) ६।१२	महरीवाइसी
मिरिग ३।६	आ० क०	सघ (मछली) ४४।२।२	पद्मावत
मिरिग २।१४।३	पदमावत	साउज (१।२।५)	,,
मीन	(चित्ररेखा)	सारग १२।५	महरी बाइसी
मीन २।६।७	पदमावत	सारग २।८।१	पद्मावत
मैंजा १४।३।१	,,	सावक १४।३।५	,,
मैमतू १८।३।२	,,	सावकरन (घोड़ा) २।२।४	,,
मोर (मछली) ४४।२।२	,,	सादूर ३४।२३।६	,,
मजारी ३८।३।१	पदमावत	सारदूर ४१।१।६	,,
मजार ३१।१०।६	,,	साहि ८२।६।५	,,
माखी ३४।१५।१	,,	सिघ १२।४	महरीवाइसी
मेढो ४४।१।१	,,	सिंध १।१२।५	पद्मावत
रीछ ३३।४।६	,,	सिंघिनी १८।३	,,
रौफ ४४।१।२	,,	सिंगी (मछली) ८४।२।३	,,
रोहू (मछली) १४।३।२	,,	सिंघली २।२।५	,,
लगुना ४४।१।२	,,	सिराजी (घोड़ा) ४१।८।८	,,
लील (घोड़ा) २।२२।२	,,	सिलीर ४४।१।६	,,
लोवा १।४।६	पदमावत	सीप २७।२५।३	पद्मावत
सउजन्ह १०।६	,,	सीपा ३१।८।७	,,
सदूरा १३।५।६	,,	सीपी ७।६।३	,,
सनेबी (घोड़ा) ४१।८।१	,,	सुगन्ध ४४।२।२	,,
सरह (घोड़ा) ४१।८।७	,,	सैरन्ध्री (मछली) ४१।३।४	,,
सजाव " ४१।८।६	,,	सोनहा (कुत्ता) ३४।२३।५	,,
समुद " २।२२।२	,,	सोजा १८।४	अख०
समिवाहन १८।१।५	,,	हसराज (घोड़ा)	(चित्ररेखा)

तीतर ५।७।३	पदमावत	मराल ३६।१०।७	पदमावत
थोरी ३०।१८।४	,,	महरि २।५।६	,,
नकटा ४८।१।६	,,	महोख ३५।११।८	,,
पारिपरेवा ३४।१६।१	,,	मंजूर ८।३	,,
पख २४।२।४	,,	मदचाला ८।३५	,,
पखि १।५।४	,,	मुर्गी ६।६।६	,,
पंखी ३।६।५	,,	मोर २।५।७	,,
पखेरू १८।४	अख०	रतमुही २७।३६।५	,,
पखेरू २८।२	आ० क०	रायमुनी २७।३६।५	,,
पंखेरू २३।१२।४	मह०	राजपंखि ३१।१०।३	,,
पपीहा २।५।४	पदमावत	रैनिकौराऊ (उल्लू) ८।५।५	,,
परवता १६।६।२	,,	लवा ४४।१।३	पदमावत
परवते ७।३।५	,,	लागना ४०।२०।६	,,
पीउ ३०।७।४	,,	लेदी ८४।१।६	,,
पाख ३०।२	,,	सारस २।६।६	,,
पाडुक ६।६।७	,,	सारी ३६।८।३	,,
परेवा २।५।३	,,	सारौ २।५।३	,,
पिंजर ४३।६।१	,,	सुआ ३।५।५	,,
पिदारे ४४।१।६	,,	सुवा ३।५।३	,,
पुछारि ३६।१०।४	पदमावत	सुवटा २६।५	,,
प्रतीहार १२।१०।४	,,	सुग्गा ३६।४।३	,,
फुलचुही २७।३६।५	,,	सेनि ४८।१४।४	,,
वग (चित्ररेखा) मह० २७।७।४ प		सैचान ३०।१०।७	,,
वनकुकुटी ४४।१।५	मह०	सोन २६।७	,,
वटई ४४।१।३	पदमावत	हीरामनि ३।५।५	,,
विहगम ३१।१।१	,,	हंस २।८।३	,,
भिंगराज २।५।५	,,	हारिल २।५।७	,,
मुंजइल ३१।१२।६	,,		

(१५) खगोल

बिज्जु १२ । ७	महरीबाइसी
बिज्जु ३४ । ६ । १	पदमावत
बीजु २८ । १	आ० क०
बीजु	(चित्ररेखा)
बीजु १ । १ । ७	पदमावत
बुन्द ३० । ७ । ५	,,
बौंडरा १० । १६ । २	,,
मान	(चित्ररेखा)
मानू १ । १३ । १	पदमावत
मघा ३० । ६ । ५	,,
मयकू १० । ३ । ३	,
मिरगिसिरा ३० । ३	,,
मेघ १	(चित्ररेखा)
मेघ (१६ । १)	आ० क०
मेघ १ । ६	अख०
मेघ १६ । १ । ५	पदमावत
मेह ३० । ५ । १	,,
रबि १ । १४ । १	,,
राहु	(चित्ररेखा)
राहु ४ । १ । ३	मह०
सूक ३१ । ४ । ३	पदमावत
लहरि (सू) ११ । १	,,
सनीचर ४० । १२ । ४	,,
सवही (प्रातः) ३१ । १० । ६	,,
सरग ६ । ५	महरी बाइसी
सरग २	अख०
सरग २४ । ३	पदमावत
ससि	(चित्ररेखा)
ससि १२ । ६	महरीबाइसी
ससि २७ । ३८ । १	पदमावत
सिवलोका ३४ । १६ । ७	,,
सुरुज	(चित्ररेखा)
सुरुज ५ । १	आ० क०
सुरुज ६ । ३	अख०
सुरुज ७ । ६ । ७	पदमावत
सुरुज ७ । ६ । ७	,,
सुरुज २७ । १३ । १	,,
सूर ३ । ८ । २	,,
सूर ६ । ५	महरीबाइसी
सूक	(चित्ररेखा)
सूक १ । २१ । ३	पदमावत
सुहेला १६ । १	,,
से (सूर्य) २६ । ६	आ० क०
सेवाति ३० । ३ । ३	पदमावत
सोरहकरा २७ । १३ । १	,,
सोहिल ५२ । ६ । ३	,,
सोहिल १२ । ८	महरी बाइसी
स्वाति ३० । ७	पदमावत
स्यामिखादला ३० । ४ । २	,,
हस्ति ३० । ७ । ३	,,

१६. सामाजिक सगठन—

अगरवार ४१ । १२ । ३	पदमावत
अगरवारिनि २० । ३ । ३	,,
अलगुत ३७ । ५ । ५	,,
अपाय ३ । ७	आ० क०

घरमी ६।६	अख०
घरहरिया २६।३	पदमावत
घीमर ४४।२।१	,,
घृत १।१।१	आ० क०
घृत १०।७।७	पदमावत
घोख ८।४।४	,,
धोबि ३६।५	पदमावत
धोबिनि ६।६	,
नट ४८।६।४	,,
नर ३।६।७	,,
नर (नरकुल) १६।२।६	,,
निकलंकू १०।३।१	,,
निछोही २७।४।२	,,
निठुर ७।४।२	,,
निबूधी ८।७।४	,,
निभरोसी १।३	,,
निरदोखा ८।६।४	,,
निलज २५।२।३	,,
निसोगा २।१८।७	,,
नागा १।१७।६	,,
पटुकह २७।३६।१	,,
पटुइनि २०।३।७	,,
पनिहारी २८।१	,,
परावा ३०।३।२	,,
परिहारा ४१।१५।४	,,
परेता १।४।७	,,
पवन ३८।५।६	,,
पवार ४१।१४।२	,,
पहारू १८।६।३	पदमावत
पाऊँ ३४।१३।५	,,
पाखउ २।१५।५	,,
पाजी २।१७।२	,,
पाडे ३४।१४।१	,,
पारखी ६।१	,,
पचवान ४१।१५।३	,,
पडवन्द ४५।८।६	,,
पडित २६।१।१७	पदमावत
पांगुर ३।४	आ० क०
पिंजर ३१।१२	पदमावत
फुलहारी २।१३।१	,,
फद १।६	महरीवाइसी
फादा ५।'	पदमावत
बघेल ४१।१५।३	,,
बटमार १५।२।६	,,
बडाई १।३।१	,,
बराभन ७।३।६	,,
बरिआर १।३	,,
बहिर ३७।८।३	,,
बाउर ३७।२।४	,,
बान परस्ती २।६	,,
बानिनि २०।३।६	,,
बारी ४४।६	,,
बेडिनि १०।१४।७	,,
बरइनि २०।३।७	,,
बिनास ८।४	,,
बिरति ८।४	,,

लासा ५।८	पदमावत
लबुधा २४।१८।४	,,
लूले ३।४	आ० क०
लोकचार २२।१०।४	पदमावत
लोभ ३३।२	,,
लोभी १।३।४	,,
लोहार ४२।७	आ० क०
लोहार (५२।२।२)	पदमावत
सगुनिआ १२।१०।१	,,
सठ ८।५	,,
सत १।१४	,,
सती ११।४।१	,,
सतवादी ६।१।३	,,
सपत २७।२३।१	,,
सयान ११।२।२	,,
सरेषा ८।६।६	,,
सबद (यश) २२।३।५	,,
सवरहि ४।५।४	,,
साझू १।३।२	,,
साहस ६।१।२	,,
सुख १।३।६	,,
सुजान् ३।८।६	,,
सुफल २१।४।२	,,
सेंध ११।६।७	,,
सोनार ८।७।७	,,
सतति ७	अख०
हत्या ८।४	पदमावत
हत्यार ८।६।६	,,
हियाव १५।६	पदमावत
हिन्दू ६।११	महरीवाइसी
हिन्दू १४।३	अख०
हिन्दू १।२४।४	पदमावत
हेले ४६।७।४	,,

१७ परिवार०—सभी तरह के सम्बन्ध तथा विवाहाचार

अछवाई ३६।१।५	पदमावत
आहारी ३६।२।१	,,
आदिपिता ३२।७।३	,,
इस्तिरी ६।७	महरीवाइसी
ईस्तिरी २६।४	पदमावत
ओल (बन्धक) ५२।२	,,
औतारी ६।२।३	,,
अस (पुत्र) ३६।३।३	,,
अकोरा ५२।३।२	,,
कविलासू २६।४।३	,,
कन्या ३२।१	,,
कसौटी ३२।११	,,
काज ८।४।४	,,
कामिनि २६।३।५	,,
कुटुंब ५५।१।३	,,
कुडवा ७।१।३	महरीवाइसी
कुंवर २।२०।५	पदमावत
कोकिलबैनी २४।१२।७	,,
कत २७।६।४	,,
खाम २६।१६	,,
गजगामी ५१।६।२	,,

गवना ३।१।१	पदमावत	ठाकुर १।३।३	पदमावत
गोटी ४५।७।६	,,	तरहेल ३६।११	,,
गोसाईं १३।३	महरीवाइसी	तरुनी १२।१०।२	,,
गोसाईं ३२।१।२	पदमावत	तिरिआ १२।७।१	,,
गोहन ३४।१४।७	,,	तिलक २५।१५।२	,,
गवेसी ३४।६।७	,,	तिवाई ८।४।४	,,
चातुर ३६।३।१	,,	तीवइ १०।१६।५	,,
चाड २७।३५।२	,,	दाइज २६।१२	,,
चालू ५४।१।१	,,	दारा ७।७।४	,,
चेर १।२०	,,	दासू १।३।३	,,
चेरी ८।६।७	,,	दुलह ४५	आ० क०
चेला १।२०।४	,,	दुलह २६।१२।६	मह०
चौक २६।११।४	पदमावत	दुलहिन ४५	आ० क०
छतिसौजाती ६।४।३	,,	दुलहिन ८।२	महरीवाइसी
छवीली २७।३६।१	,,	दुलहिन २६।११।६	पदमावत
छिताई ४१।४।१	,,	दुति ३६।१।१	मह०
जजमाना ७।४।२	,,	दूलह ८।२	महरीवाइसी
जठेर ३२।५	आ० क०	दूलह २६।५।५	पदमावत
जनमपत्री ३।४।१	पदमावत	देवर ८।१०	महरीवाइसी
जनवासै २६।४	,,	दगवे ३१।२।२	पदमावत
जाता (बच्चा) ४२।६।६		धनि ८	अख०
जेठ ८।१०	महरीवाइसी	धनि १८।१।६	पदमावत
जेमारा २५।१५।३	पदमावत	धनिआ १७।१६।१	,,
जेमाला २६।१२।२	,,	धोख ३१।०।२	,,
जोइ ५३।६	आ० क०	धौरहर २८।२।७	,,
जोई ४८।१।३	पदमावत	ननद ८।६	महरीवाइसी
जोरी ६।१।५	,,	ननद ४।२।७	पदमावत

बियाहू २६।६।३	पद्मावत	मेहरी ११।७	आ० क०
बियाहचार २६।११।२	,,	मेहरी ३४।१७।५	पद्मावत
बिरहिनि २४।१०।२	,,	मेहराऊ ७।४	अख०
बीबी ३८।६	आ० क०	मेरू ४२।७।४	पद्मावत
बीरा ३१।२।१	पद्मावत	मंगलाचार २६।१२।१	,,
बेटा २५।१९।४	,,	मजक २६।२।४	,,
बेटा	(चित्ररेखा)	रहौती ४३।२	आ० क०
बेटी ३०।१।४	पद्मावत	राजकुवरि २६।७।१	पद०
बेनी ३।६	,,	राजघनि १०।१७	पद्मावत
बैरी १२।५।३	,,	रानी ३।८।४	,,
बैरी ४४।१	आ०क०	रामा २६।२।५	,,
भगिनी ३४।७।१	पद्मावत	रावन २७।३३।६	,,
भाई २।११	महरीबाइसी	रिपु १५।२	,,
भाई ११।६	आ० क०	रोताई ४।५।७	,,
भाई ३२।११।३	पद् ावत	लखमिनि ३४।१६।६	,,
भांवरि २६।१२।६	,,	लखिमी ६।१।३	,,
भौगिनि १२।६।२	,,	लगन २६।१।१	,,
मखदूम १।१८	,,	लच्छि ३।४।६	,,
मर्दन ५६	आ० क०	लोनी ।४।६	,,
महतारी १३।४	महरीबाइसी	सखी ८।५	महरीबाइसी
महरा (ससुर) ३३।३।३	पद्मावत	सखी २६।१०।७	पद्मावत
माता ३।१	अख०	संघाती २०।११	महरीबाइसी
माता ३१।६।२	पद्मावत	सघाती ३९।६।७	पद्मावत
मातु १४।३	अख०	सजन १४	महरीबाइसी
मातु ३२।११।३	पद्मावत	सत २६।१९।७	पद्मावत
माया १२।८।२	,,	सती ३८।६।१	,,
मीत २।११	महरीबाइसी	सतुह २८।३	,,
मुरसिद १।१६	पद्मावत	सपूत ३१।३।४	,,

चोर ११।६।४	पदमावत
जातरा १६।६	”
जान १३।५।५	”
टका ५२।३।२	”
टाटी ५।४।१	”
दरब १३।७	”
दसपंथा ११।६।५	”
दारिद २२।८।२	”
धनपति १।५।१	”
धधा १।७।७	”
नग १।२।३	”
नवलखलच्छि २।१।१	
नवौनिद्धि २।१३।१	”
नाइत ४३।८।६	”
निधि १३।१	”
पंच २।१२	”
पथ १।११।४	”
पथिक २।३।६	”
बटपारा १२।११।५	”
बनिज ७।१।६	”
बनिजारा ७।१।१	”
बसेरा २।१७	”
बाट ५।३।६	”
बांटा ७।२।२	”
बेरा २।१४	”
बैवटारिया ७।२।६	”
नेसा २।१४।१	”
बेपारा ७।११	पदमावत
बोहित १३।१।७	”
भंडारू १।५।१	”
मजूसा २४।१।७	”
मारग १।११।३	”
मूर ७।२।२	”
मोति १।२।३	”
रथ १४।२।१	”
रिति ७।१।३	”
लछिमी २।१३	”
संपत्ति १।३।७	”
सहलगी १२।१३।३	”
साठि २।१४	”
साथ ७।२	”
सांन २।१८।४	”
सिगारहाट २।१४।१	”
सीप १।२।३	”
हाट २६।१	”

(१६) शरीर—

अचेत ११।१।६	”
अवस्था १५।६	”
अवसान १५।६	”
उर ३६।१।२	”
अकुश ४५।२२।२	”
अंग १६।४।२	”
अंगुरी ६।८	महरीबाइसी

गगनदृष्टि १८।४।७	पद्मावत	जटा २२।१।४	पद्मावत
गरे ३४।१३।१	"	जरी ३१।१०।७	"
गह्वर ३२।५।२	"	जलाल ७।३	अख०
गाता ३५।३।१	"	जाध ३६।५	पद्मावत
गाल १०।११।६	"	जाघ २।१६।३	"
गिय ८६।१।२	"	जिअन १।३।५	"
गिव १२।८।४	"	जिउ ३४।१।१	"
गावा २५।८।७	"	जियें १।१।३	"
गुडिला ४०	अख०	जीउ ३३।१०	
गूद २५।३	पद्मावत	जीवा २४।२।३	"
गोदि २७।२७।५	"	जीभ १।८	आ० क०
घट ५।३	अख०	जीभ ५४।२।७	पद्मावत
घट १।६	पद्मावन	जीभ १५	अख०
घाइ २३।११	"	जूरा ५।१।३	पद्मावत
घाउ २४।१०।५	"	जोति १।३	आ० क०
घाय ३८।६।१	"	जोवन १।६।६	पद्मावत
घाव ११।१।२	"	जघ ४१।१४।६	"
घुघुरवारि १०।१।७	"	टकटका ३७।८।१	"
चख ३।८।७	"	टेकु ३०।३।१	"
चरन १।६।५	"	ठाठर ५२।१।७	"
चवर २२।१।५	"	ठोडी ४०।२।६	"
चामा ८।७	अख०	डग ३६।२।६	"
चाम्र १०।४	आ० क०	डीठ १८।२	"
चित २७।२७।१	पद्मावत	तचा ३५।२।२	"
चेत ३४।४।५	"	तन १४	अख०
चोला ३०।२।६	"	तन १।८।२	पद्मावत
चौपि २७।६।७	"	तरनि वैस ४६।३।२	"
छींक ६।७	अख०	तम्न ३५।३	अख०

पीठी २।१६।२	पदमावत
पीत ११।१।६	"
पीर २७।४।३	"
पुतरी १२।५	अख०
पेट ३३।३	आ० क०
पेट १०।१६	पद्मावत
पैग २।६।१	"
फीली ३६।३।६	"
फुदन (चुचुक) ५१।८।४	
बएस २७।१०।५	"
बकत ३४।८।८	"
बचा १६।६।१	"
बतीसी १०।६।२	"
बदन ८।६।६	"
बर (बल) ३४।१०।२	"
बल २।१	आ० क०
बरुनि ४०।६।२	पदमावत
बाउर ३३।१	आ० क०
बाक १०।१६।८	पदमावत
बाछु ४२।१।२	"
बार ३६।१३।४	"
बार ८।७	अख०
बार १।७	आ० क०
बाँह ८।७	महरीबाइसी
बाह ८।७	"
बाह १।६।४	पदमावत
बिकरारा ४०।१८।१	"
बिया १।२	पद्मावत
बिरिध ५७।२।१	"
बिसभारा ११।१।३	"
बुधि ३।८।१	"
बूढा १।६।६	"
बूढ़ि ३१।३।२	"
बून २।६	आ० क०
बेकरारा ३४।४।५	पद्मावत
बेनी १२।२	महरी बाइसी
बेनी ३।६।३	पद्मावत
बेसरि १०।७।२	"
बेना ३।८।७	"
बोद १४।२४।५	"
भुजा ३६।५	पदमावत
भौंह २।	अख०
भौंह १०।४	"
भौह ३८।१४।१	"
मंग २७।१७	पदमावत
मजीठ १०।८।४	"
मति ५२।१।२	पदमावत
मतवारा २७।२०।२	"
मयवा ६।६	महरी बाइसी
मन २।१४	पदमावत
मरि ३८।४।३	"
मनिमुंडा ४८।१५।५	"
मांग १२।१	महरीबाइसी
मांग १०।२।१	पदमावत

हाड ३१।२	महरीवाइसी
हाथ २।४	आ० क०
हाथ ८।१	अख८
हाथ ३।८	महरीवाइसी
हाथ	(चित्ररेखा)
हाथ १६।२।१	पदमावत
हिअ १।८।४	,,
हिय १।१८।२	,,
हियाधार ४०।१६।१	,,
हिरदै २७।३३।१	,,
हुक ११।४।७	,,
२० स्नान पान तथा सुगन्धितवस्तु	
अगर १६।७	आ० क०
अगर १।४।१	पदमावत
अरगजा २६।११	,,
अरघानी ४।१।२	,,
अंजन १२।१	महरीवाइसी
अरदाना मछली का भर्ता	
४४।७।६	पदमावत
अरिहन ४४।८।१	,,
अंडा ४४।७।५	,,
अतर १७।५	आ० क०
अन्न १।३।१	पदमावत
अंब्रित ८।६।२	,,
अवधुर ४४।६।६	,,
अदार १०।१६।२	,,
आटा ४०।१।१	,,

आडो ४४।५।४	पदमावत
आदी ४४।८।३	,,
आहर २१।६।६	,,
ईगुर १६।२	महरीवाइसी
कटवा ४४।५।२	पदमावत
कढी ४४।६।७	,,
काथ (कथा) ४।१३	,,
कदमूर ४४।५।५	,,
कपूर २।१५।२	,,
कपूर (४५।३)	आ० क०
कपूरकात ४४।४।३	पदमावत
करैला ४४।८।६	,,
कवंल (ग्रास) ४५।१२।४	,,
कस्तूरी ३।६	आ० क०
कस्तूरी १।४।१	पदमावत
काचूरी ३६।४।१	,,
काजररानी ४४।४।२	,,
काटे (मछली की हड्डी) ४५।१२	,,
कारिख ११।३	आ० क०
कुंकुमा ५६।१	आ० क०
कुहकुह २।१३।२	पदमावत
कुंदरू ४४।८।५	,,
कुम्हड़ा ४४।८।१	,,
कुंवर बेरास ४४।४।४	,,
कुरकुटा १२।४।७	,,
केतकी ४४।४।७	,,
केवरा २।१२।४	,,

तरौंई ४४।८।४	पदमवात
तहरी ४४।१०।१	,,
तातभात १२।७।७	,,
तीलहिं ४।५	,,
तेल ४।५	,,
तेल ११।३	आ० क०
तबोला १।७	आ० क०
तबोर ११।४।२	पदमावत
दधि ३३।६।७	,,
दरपन १०।७	आ० क०
दरपन १४	मख०
दरपन ८।१।३	पदमावत
दरपन १२।१२	महरीबाइसी
दही २६।१०।६	पद०
दाउदवानी ४४।४।२	,,
दारू ४१।१८।४	,,
दूध ५७।५	आ० क०
दूध २६।१०।६	पद०
धना ४४।५।५	,,
पकवान ४८।७।१	,,
पछियाउरि २६।१०।७	,,
पढ़िनी ४४।४।५	,,
पनवारा २६।६।१	,,
परकारा ४५।१	आ० क०
परिमल २६।४।३	पदमावत
पर कर ४४।८।५	,,
पाकापेठा ४४।१।२	

पान २७।३३।५	पदमवात
पानि ४४।५।६	,,
पापर ४४।१०	,,
पिअना १।५।६	,,
पूरी ४४।३।१	,,
पेराक ४।१०।७	,,
फरहरी ५।६।३	,,
फरहरी ५।६।३	,,
फुलाएल २६।२।६	,,
फेनी ४४।१०	,
बटवा ४४।५।२	,,
बडहन ४४।४।६	,,
बरा ४४।६।५	,,
बरौरी ४४।६।७	,,
बावन परकारा ४५।११।५	,,
बास १।६।२	,,
बिरव २४।११।१	,,
बीरी २६।१६	,,
बुक्का २०।७।६	,,
बेना १।४।१	,,
बु द ४४।१०।७	,,
बैंगरी ४४।४।५	,,
मख ४२।४।१	,,
भस्म ११।२।४	,,
भात ४५।११।४	,,
भांटा ४४।६।२	,,
भिवसेना २६।५।४	,,
मुगुत ६।५	मख०

साढी ४४।१०।४	पदमावत
सिखरन ४४।१०।४	,,
सिरका ४४।६।६	,,
सुगंध २।२।१	,,
सुपारी २७।१८	,,
सुरा २७।२६।४	,,
सुमार ४।८	,,
सेंदुर १२।२	महरीवाइसी
सेंदुर २०।१।५	पदमावत
सिंधौरी २६।१६।३	,,
सेंधालोन ४४।५।४	,,
सोंठि ४४।६।४	,,
सौन्धे ८।२	,
सोना ४४।५।६	,,
सोहारी ४४।३।७	,,
सौंफ ४४।५।५	,,
सथान २६।१०।६	,,
हरवार २७।३।६	,,
हरदि २७।२।३	,,
हलुवा ४४।१०।३	,,
हसामौरी ४४।४।७	,,
हींग ४४।६	,,

२१. वस्त्राभूषण—

अनवट १०।२०।७	पदमावत
अभरन ८।५	,,
अभरन १२।६	महरीवाइसी
अलकार २६।२	पदमावत
अगूठी ११।३।६	,,
अंचर २६।२।६	पदमावत
कंगन १२।५	महरीवाइसी
कचुक २।१४।६	पदमावत
कटिमंडन ५१।८।४	,,
कठसिरी १०।१३	,
कथा ११।६।४	,,
कनकपत्र ३८।८।५	,,
करनफूल ४०।८।५	,,
कसनी २६।६।४	पदमावत
कापर ७।१	महरीवाइसी
कापर २८।२	पदमावत
कापर	(चित्ररेखा)
कुंडल १०।१८।१	पदमावत
कुंडल १२।७	महरी वाइसी
कुसुमी २।१४।२	पदमावत
खीरोदक २७।३६।३	,,
खुंटिला २७।७।७	,,
खुम्मी २।१४।२	,,
खूंट १०।१२।४	,,
घटि १०।१८।६	,,
घानी ४४।६	आ० क०
घूंघट ५१।८।१	पदमावत
चक्र १२।१।४	,,
चादर ६	अख०
चिकवाचीर २७।३६।४	पदमावत
चीर १२।१	महरीवाइसी
चीर २।१४।२	पदमावत
चंदनचीर २६।४।२	,,
चंदन चोलाक २७।३७।१	,,

मोति १।२।६	पदमावत
मोर २।२।३	,,
लहरिपटोर २७।३६	,,
साट ४।२	अख०
सारी ४।४।१	पदमावत
सिकरी १०।१।७	,,
सिगार ३२।४।३	,,
सीप १।२।३	,
सुरगचीर २६।५।२	,,
हथौडा (कडा) २।१३।३	,,
हार १२।६	महरीबाइसी
हार २६।१।१	पदमावत
हासुर हसुली ३२।११	पदमावत

२२ वाद्य—

वाद ८।७	महरीबाइसी
बाजन २६।१।२	पदमावत
अबिरतो ४२।१२।४	,,
आउझ ४२।१२।३	,
उपग ४२।१२।५	,,
किगरी २४।६।५	,,
कुमाइच ४२।१२।४	,,
गर्जर २।१८।७	,,
घट २५।८।३	,,
घरियार ४५।२।१	,,
चग ४२।१२।५	,,
जम ८२।१२।२	,,
झाँझ ८।१	महरीबाइसी
झाँझ २०।७।२	पदमावत
ढाढी ४१।१५।५	,,
ड गा २।१।१	,,
डफ २०।७।३	,,
ड वरू २२।१।५	
डाक १।२७।४	
डाड २।१८।८	
ढोल २०।७।२	
तत ४२।१२।७	
तबल १।२३।३	,
तूरा ४१।१५।६	
दवावा ३५।६।१	,
दु द २०।७।२	,
नाद ४५०।६	,,
नागसुर ४२।१२।३	,,
पखाउझ ४२।१२।३	,,
पिनाक ४२।१२।४	,,
बसू २५।४।३	,,
बसी ४२।१२।५	,,
बिहू त ४२।१२।७	,,
बीन ४२।१२।४	,,
बेनु १०।१०।२	,,
भेरी २०।७।२	,,
महुवर २०।७।३	,,
मजीरा ४२।१२।६	,,
मदर २०।७।२	,,
मृदग २६।१	,,

बिरास १।५	आ० क०
विसरामू २।३	,,
बिसरामा १।२।६	पद्मावत
बुधद ४५।१६	,,
बैरासू १।३।३	,,
बैनकटेई ४८।६।७	,,
भोग ६।१	,,
मैदान ५२।८।१	,,
रति ३६।१।५	,,
रहसकोड ८।३	महरीबाइसी
रहस २६।१	पद्मावत
रुख ४५।१८।५	,,
रग २७।३४	,,
सतरंज ४५।१६।१	,,
सारी २।१४।६	,,
सुख १।३।६	,,
सुहाग २६।१।४	,,
हरष २।६	आ० क०
हाल ५२।६	पदमावत
हिंडोल २६।६।७	,,
होली २०।४।४	,,

२४. बाहन—

उडनखटोला	(चित्ररेखा)
करिअ १।१८।प	पदमावत
घोर ४१।१८	,,
डाडी ३२।१२।२	,,
डारग ११	अख०
नाव १।२	महरीबाइसी
पुलसरात ६।२	अख०
बेल २२।१।१	पदमावत
बोहित १।१८।४	पदमावत
रथ २।१७।१	,,
हाथी २८।१।२	,,

२५. घर-नगर

अवासा २।१२।२	पद्मावत
इन्द्रासन २६।१६	,,
ईटि २६।१५।१	,,
आंगन ४५।५।२	,,
औरी ३०।६।५	,,
औवरि २६।५।५	,,
कविलासू २७।१।१	,,
कध (दीवार) ३०।१६।४	,,
केवारा १६।६।६	,,
खड १६।४।४	,,
खम १।२	,,
खामा ३४।११।१	,,
खोरिन्ह ४५।३।६	,,
गच २६।१५।६	,,
गलसुई २७।१।६	,,
गेंडुआ २७।१।६	,,
घर ३१।३।५	,,
घरौवा २७।१।४	,,
घूना २६।१५।४	,,
चौपारी २६।१५।३	,

शब्द	स्रोत
छोलनी ३६।६	अख०
टाका १२।१०।१	पदमावत
टेम ३२।७	अख०
डाल ४८।३।३	पदमावत
डोर १।३	महरीवाइसी
डोल ४७।१।६	पदमावत
ढार ४७।१।६	,,
ढारि ४४।१	अख०
ढेले ३६।४।७	पदमावत
तखत ५९।४	आ० क०
तरवरीं ३१	आ० क०
ताल २।६।१	पदमावत
तेल १३।५	अख०
थार २७।३१।५	पदमावत
दरपन २।१।१	,,
दीपक ६।२	आ० क०
दीपक १।११।३	पदमावत
धुआ ३१।११।१	पदमावत
नरी ८४।४	अख०
पनवार २६।६	पदमावत
पार २७।१।६	,,
पारी ३०।६।१	,,
पाठ १०।२०।३	,,
पावरी २६।१	,,
पियाला २०।१२।१	,,
पेई २२।८।६	,,
पेटारी २५।४।२	,,
पैरी २६।२	,,
पोती १५।५।६	,,
बीज ४५।१०	पदमावत
बेना ५१।४	आ० क०
बैठक २।६।१	पदमावत
भाठी १५।५।६	,,
भाडा ५।१	अख०
भारू ३०।१४।५	पदमावत
मथनी १५।३।८	,,
रग १।१।३	,,
रहट २।१०	,,
रूई २७।१।६	,,
लेंजुर ४७।१।७	,,
लोटा ४५।११।२	,,
लोन ८।२	,,
सरीत २७।१९।६	,,
सुई १६।४	अख०
सुराही ३४।४।४	पदमावत
सेज १८।१।२	,,
सडसी ३६।५	अख०
सांटी ३४।११।५	पदमावत
हुडा ४८।५।७	पदमावत
हाडी ४४।५।४	,,

२७. स्त्री-पुरुष नाम

नाम	स्रोत
अकरूर ३०।१।७	पदमावत
अबाबकरसिद्दीक १।१२।२	,,
अयूब १२।१४।१	,,
अर्जुन ३६।१०।५	,,
अलाउद्दीन ३७।११	,,
अलहदाद १।२०।३	,,

भीव ३१।२।२	पदमावत
भोज ६।१	”
मधुमालति ३२।१७।६	,,
मलिक जहांगीर ४९।१४।५	,,
महदी १।२०।१	,,
महिरावन ३३।८।३	,,
मालति ४।१	,,
मिरगावति २३।१७।५	,,
मीरहमजा ५२।१५।२	,,
मुगुधावति २३।१७।४	,,
मुहम्मद ३०।१५	,,
मैनावति ३१।३।१	,,
यशोवै ८१।३।१	,,
युसुफमलिक १।२२।२	,
रतनसेनि १।२४।२	”
राजकुंवर ३३।१७।५	,,
रामा २७।२८।१	,
रावन ३४।८।८	,,
रूपरेखा	चित्ररेखा
लिधउदुवे ५२।१५।५	,,
शादाद ६।७	आ०क०
सपनावति २३।१७।३	पदमावत
सरजा ४०।२०।६	,,
सरवन ३१।६।३	,,
श्रवन	चित्ररेखा
श्रीराम	चित्ररेखा
सुरसुर २३।१७।७	पदमावत
सलार १।२२।३	,,
सलोने १।२२।४	,,
सहदेऊ ३७।१।९	पदमावत
सहसराबाहु ३३।३	,,
सिंगदेह	चित्ररेखा
सेदैच्छ ३२।१७।४	पदमावत
सुरसत ३१।८।१	,,
सुलेमा १।१३।६	,,
सेखकमाल १६।३	,,
सेखमुबारक १।१६।३	,,
सेसादि १।१३।१	,,
सैयद असरफ १।१८।१	,,
हमीर ४।३।३	,,
हाजीशेख १।१६।१	,,
हीरामणि १०।३।६	,,

२८ समयों दिशा स्थान सूचक—

अगहन ३०।६।१	पदमावत
अगरह ३२।१०।६	,,
अदिन ३३।३।३	,,
अमावस ४०।५।१	,,
अरबुद ३२।१२	,,
अस्टदिशा १७।६	आ० क०
अहनिसि ६।६।६	पदमावत
अहुठ ११।३	”
आठ ९२।१०।५	,,
आदित ३२।६।६	,,
ईगुर २३।१२।७	,,
उतर २२।६।२	,,
एका ३२।१०।२	,,

घूम १५।१०	महरीबाइसी	मिनसार ७।६	अख०
नव ३२।१०।२	पदमावत	मोर २४।१८।५	पदमावत
नित ५।३।२	,,	मंगर ३२।६।२	,,
निमिख १।२	,,	माघ १६।४।५	,,
निसि १०।६।२	,,	रग २५।५।२	,,
नील २।१२	,,	रात १।५।१	,,
नौसदी ५।१	आ० क०	रैनि ३४।८।४	,,
पख १६।४।५	पदमावत	लगन ६।१।३	,,
पच्छि ३२।१०।१	,,	लाख ३२।१२	,,
पन्द्रह ३२।१०।५	,,	लुवारा ३०।१५।१	,,
परमाता ३६।६।४	,,	सख ३२।१२।५	,,
पल १।२	,,	सताइस ३२।१०।१	,,
पहर ५।१	आ० क०	सत् १।२४	,,
पाँचा ३२।१०।६	पदमावत	सनीचर ३२।६।२	,,
पाला ३०।११।१	,,	सत्रह ३२।१०।४	,,
पुरुब ३२।६।२	,,	साझ २७।३।२	,,
पुरु ३०।१०	,,	सात ३२।१०।७	,,
फाग २।११	,,	सावन ३४।६।८	,,
बरिस ३१।१४।१	,,	सिअर २०।१४।२	,,
बाइस ३२।१०।६	,,	सिरीपचमी १६।४।५	,,
बारहमासा ३०।१७।१	,,	सीऊ २४।१७।२	,,
बिहफै ३२।६।२	,,	सीत २।३	आ० क०
बिहान २७।३।११	,,	सूक ३२।६।६	पदमावत
बीस ३२।१०।६	,,	सेत १।२।६	,,
बुढहि ३२।६।७	,,	सोम ३२।६।२	,,
बैरा ३४।१५।२	,,	सोरह ३२।१०।२	,,
बैसाख ३०।१४।१	,,	स्याम १।२।६	,,
भादों ३०।६।१	,,	होरी ३०।१२।५	,,

२६. अन्य :—

अचाका ४१।११।१	पदमावत
अछत १०।८।५	,,
अडारा ३७।६।५	,,
अविवानी ३।५।१	,,
अनतै ३०।६।२	,,
अनु २१।६।१	,,
अपघाता ३४। १।३६	,,
अपेल १८।३।५	,,
अमासो ३७।११	,,
अमेरा ३६।३।६	,,
अम्मर २४।१६।६	,,
अरूमी २४।१६।२०	
अलोपि २४।३	,,
अरूमा १३।१८	,,
अहा ५।१।५	,,
आऊ ३।६।५	,,
आगरि ८।२।३	,,
आची ४१।२२।८	,,
आना २५।१।२	,,
उवा १६।१।१	,,
उकठी २१।१।४	,,
उधारी २१।५।३	,,
उथेली २४।१३।२	,,
उठेभरक्कि १०।६	,,
उवगू ६।३।४	,,
उतारा ४४।५।३	,,
उदसा ४२।१४।७	,,
उपना १।१७	पदमावत
उपरि २२।७।६	,,
उपसवाँ १०।५।२	,,
उलथना १३।३।२	,,
ऊम २४।५।२	,,
अहिक २।१३	,,
ओदी ८०।२।६	,,
ओती १०।३।१	,,
ओधा ४१।३।६	,,
ओनहु ३०।४।५	,,
ओपह १०।६	,,
ओरगाने १०।१०	
ओरा ७।१।५	,,
ओहरे २४।१५।४	,,
औरि २३।१५।७	,,
औंधी २५।४।१	,,
औधान ३।१।६	,,
अजोरेन ११।८।३	,,
आँटा २३।१८।२	,,
अतहु ८।४	,,
अदोरा १२।८।७	,,
अखिया १५।३।६	,,
कले ४४।८।४	,,
कलपाँ ३४।१२।६	,,
काऊ ४२।४।१	,
काकर ६।१	,
काढ़े १६।६।३	
कचादन १।२३।३	

कांधिअ २५।१०।७	पद्मावत
कापकपि २४।११।४	,,
कुंद १०।१३।२	,,
कूरा २०।१४।६	,,
केई २१।१।५	,,
खूंटी २२।८।७	,,
खाचा २६।२।४	,,
गरिगुरी २७।२१	,,
गहने ३८।४	,,
गहि १०।५।६	,,
गहवर २२।७।१	,,
गुहर २४।३।१	,,
गोहारी २५।५।४	,,
गये १२।१०।३	,,
घटा ३६।६।५	,,
चकचौहट २७।२।४	,,
चरचहिं ११।२।३	,,
चुवाना २४।११।२	,,
चूरी २७।३७।३	,,
छिरकहिं २४।११।१	,,
छूंछि २३।६	,,
जेई ११।५।२	,,
झापा २४।१३।४	,,
झारा २४।१६।५	,,
झुख ७।२।१	,,
टोवा ३१।३।२	,,
ठेघा ३१।४।२	,,
ठा ३३।८।२	,,
ठोर ३।८	पद्मावत
डफार २२।१।७	,,
ढारि २४।६।५	,,
तरे ४४।७।५	,,
तिवान ३८।१।६	,,
ताती २३।१४	,,
थाक ३०।२	,,
थेघा ४२।११।३	,,
घरक २४।६।३	,,
घुगारू ४४।७।२	,,
निआन १२।५।२	,,
नाण २३।७।७	,,
निगड ८।७	,,
निमात २०।१।७	,,
नींजि ३१।१०।२	,,
पते ६।२।१	,,
परहेलिउ ८।७	,,
पसीजा २३।१२।७	,,
पैठत ८।६।४	,,
फुरि ३४।१६।१	,,
बसिवास ४४।७।२	,,
बरम्हाऊ २५।४।५	,,
बिरड २५।८।५	,,
बियरि ८।७।६	,,
बेझ २४।११।७	,,
बेहर १५।१	,,
भीनि १०।६।२	,,
मरदिअ २७।३७	,,

पवार ४१।१५।२ पद्मावत
पागा ४५।१४।३ ”
पाट्ट २४।८।३ ”
पातसाहि ३८।२।१ ”
पुहुमीपति १।१४ ”
फरऊ २५।३ आ० क०
बावर ३५।३ ”
बानासुर २५।१५।३ पद्मावत
बिक्रम ८।६।७ ”
बेन १६।२।१ ”
बैस ४१।१५।२ ”
बधन ४६।१ ”
भरथरी १६।२।२ ”
भुअपति २।२।७ ”
भुवारा ५०।५।४ ”
भोज ६।१ ”
रजियाउर १२।८।२ ”
रतनसेनि २५।६।४ ”
राउ २।१२।३ ”
राज १।६।१ ”
राजकुवर २५।१।१ ”
राजा (चित्ररेखा)
राजा ३।२।३ पद्मावत
रानी ४१।२।२ ”
राम ४१।१४।१ ”
राए ३६।६।२ ”
रावन २।२।२ ”
मकुबधी ४१।१।४ ”

सतबादी १६।२।१ पद्मावत
साका ६।१ ”
साजा १।१४।१ ”
साहू ४।१६।१ ”
साहि ४२।४।६ ”
सुलतान २७।११।६ ”
सुलेमा ४१।६।१ ”
सेरसाहि १।१३।१ ”
हरिचंद १६।२।१ ”

३१. राजमदिर तथा कर्मचारी और वीर

अठसमा २८।१।७ पद्मावत
अरगजा २५।८।२ ”
असवारा १८।१।३ ”
असुपति २।२।६ ”
आदिल १।१५।२ ”
उमरा ३८।१ ”
आवरि १२।८ ”
औरगाना १२।३।२ ”
कनकपाट १०।३।६ ”
कविलासू १४।१।६ ”
कुवर २६।२।२ ”
कोटवार २४।१८।४ ”
कोठा ४८।४।२ ”
काधा २५।७।५ ”
खनिगढि ४६।७।२ ”
गजपति २।२।६ ”
घरिआरी २।१८।२ ”

सुखवासी २७।१	पदमावत
सूर २३।१७।१	,,
सूरी २४।१८।६	,,
सेज	(चित्ररेखा)
सेज २७।२	पदमावत
सोरिआ २५।७।४	,,

३२. अस्त्र-शस्त्र-सेना-लराई-दुर्ग—

अखारा ४२।१२।१	पदमावत
अगज (घोड़ा) ४१।८।४	,,
अगरान ४१।८।५	,,
अगिनबान १०।१५।५	,,
अती १०।६।१	,,
अवरस (घोड़ा) ४१।८।४	,,
अबलक (घोड़ा) ४१।८।४	,,
अलगे (प्राचीर) ४२।७।७	,,
असुदल ४१।२७।१	,,
अहुगे ४।१६	,,
अत्र १०।३।६	,,
उमरा ४१।७।१	,,
ऊँट ४१।७	,,
एकोफा ५४।२।१	,,
ओडन (ढाल) ४२।५।७	,,
आकुस ३६।१।७	,,
कटक २४।४।१	,,
कटकाई १२।३।१	,,
कटारी २४।४।२	,,
कटार ३४।१३।१	,,
करवारु ५२।१३।४	,,
कमानें ४१।१८।१	पदमावत
काटर (घोड़ा) २५।१४।६	,,
काध ४२।१५	,,
काले (घोड़ा) ४१।८।३	,,
कुच (तोपका) ४१।११।४	,,
कुमेत (घोड़ा) ४१।८।३	,,
कुत ४२।३।६	,,
कुतहल ४२।५।६	,,
कुँडि (टोप) ५२।१०	,,
कुरंग (घोड़ा) ४१।८।३	,,
केवार २।१७	,,
केवी (घोड़ा) ४१।८।३	,,
केमानी (घोड़ा) ४१।८।१	,,
कोट १६।२।५	,,
कोटवारा २२।६।३	,,
कोल्हु ४२।८।५	,,
कोसीसा २।१६।६	,,
खदगी ४१।११।३	,,
खरग ३६।११।३	,,
खरभरा २३।१।४	,,
खसिया ४१।१०।७	,,
खेत ४१।१०	,,
खोली (टोप) ४१।११।४	,,
खोह २।१६।३	,,
खग (घोड़ा) ४१।८।३	,,
खँधारू ३४।८।१	,,
खाँडे १।२२।३	,,
गज ४१।२४	,,
गजगाह ४१।२४	,,

मुहम्मद १।१।१	आ० क०
मूसा ३४।१	,,
मैखल १२।१।४	पद्मावत
मैकाइल १६।१	अख०
मोहदी २७।१	,,
मसूरू ११।६।४	पद्मावत
मजीद ३८।३	आ० क०
पार १०।८	अख०
रसूल २८।२	आ० क०
रामजन २।६।४	पद्मावत
रिखेश्वर २।६।४	,,
रू डमाल २२।१।२	,,
रुद्राख १२।१।४	,,
सन्यासी ३।६	,,
समाधि १७।३।२	,,
सराय ३१।४	आ० क०
सरीअत ३६	अख०
सहसअठारह ७।६	आ० क०
साथरि १२।१४।२	पद्मावत
साधु १८।४	,,
साधक २।६	,,
सिंघछाला १७।२।१	पद्मावत
सिंगी १७।३।३	,,
सिंघनगर १२।११।१	,,
सिरकलप ११।८	,,
सुलेमा १०।१३।६	आ० क०
सैयद असरफ ६।१	,,
सेवरा २।२	पद्मावत
शख २१।८।२	,,
हकीकत २६।५	अख०
हजरत ख्वाजे २७।६	,,
हडावरि २२।१।२	,,
हत्याकान्धे २२।१।२	,,
हस्तीकर छाला २२।१।३	,,
हसन ३८।२	आ० क०
हुसेन ३१।२	,,
हौवा ६	अख०

३४ धार्मिक विश्वास और आचरण

अस्तुति १७।२।१	पद्मावत
करम ३३।२।३	,,
करवतसिर २४।८	,,
करवत तपा २।२०।७	,,
काम दुवार १७।३	अख०
किरिया १७।१	पद्मावत
कुन्ड २।६।२	,,
कुम्भकरन की खोपरी २८।६	पद्मावत
गनक १२।२।१	,,
ग्यानसिला ३५।१	,,
चमारिनलोना ३७।३।८	,,
चारियसेरे १६।५	अख०
चौदह खड ३।४	पद्मावत
चौरंगा २४।८	अख०
जरम १।११।७	पद्मावत
जाविनी ३७।२।६	,,
टोना ३१।१०।३	पदमावत
तीन लोक ६।५	,,
तीरथ २।६।२	,,
दयाल १७।१।५	,,

३५. देवता, देवी एवं राक्षस

कहावतें तथा सूक्तियाँ

अहे जो हितू साथ के नेगी
सबै लाग काढ़ै पै बेगी । — २५।१।५ पदमावत
आघ बाघ बर । — ४५।२१ „
आपुहि खोए पिउ मिलै । — २३ अखरावट
आपु मरे बिनु सरग न छुवा
आँधर कहै चाँद कहँ उवा । — १५।७ अख०
औ बिनती पण्डित सौं भजा
टूटि सवारेहु एहु सजा । — १।२३।२ पदमावत
उए अगस्ति हस्ति जब गाजा । — ३०।७ „
एक चाक सब पिंडा चढ़े । ५।१ — अख०
कबहुँ काहु के प्रभुता कबहुँ काहु के होइ — २६।१६ पद०
कया मरम जान पै रोगी भोगी रहै निचिंत — ११६ „
करनी मार न कथनी कथा — १४।१०५ „
केत नारि समुझावै भवँर न काटै बेध — १२१४ „
कोउ बिनु पूछे बोल जो बोला
होइ बोल माटी के बोला — ७।८।४ „
कचन दारिस — ११६७।४ „
खाएनि गोहूँ कुमति भुलाने ७।२ — अख०
खाडा दुइ न समाइ मुहँमद एक मियान महँ । ४७ — अख०
गहँ बीनु मकु रैनि बिहाई ।
ससि बाहन तहँ रहै ओनाई । — २।६।३ पद०
घर के भेद लंक अस टूटी — ३२।३।२ „
घरी भरै — २।१८।६ „
घिउ मधु सानि — ४६।१।७ „
चकई चकवा केलि कराही — २।६।५ „
चढ़ै दुहाग जरै जस होरी — २३।७ अख०
जल बिनु मीनु, रकत बिनु काया — ६।५।४ पद०
जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा — ११।७।२ „

जस बहुते अपजस होइ थोरे	३७।५।५ पद०
जहाँ फूल तहँ फूल होइ जहाँ काँट तह काँट	४२।१ ,,
जहाँ भाग तह रूप जोहारा	७।८।२ ,,
जाकर राज जहाँ चलि आवा ।	
उहै देस पै ताकह भावा ।	३१।६।५ ,,
जेहि घर कन्ता रितु भली आउ वसंता नितु ।	९६।४ ,,
जेहि के जाँघ भरोस न होई ।	
सो पथी निभरोसी रोई ।	२८।७ आ० क०
जैसे सिंघ मजूसा साजा	४५।८।७ पद०
जैसे रहै अंड मह मेदू	१४।१ अख०
जो रे उवा सो अथवा रहा न कोउ ससार	५६।३ पद०
जो तुम्ह चाहहु सो करहु नहि जानहुँ भलमन्द ।	
जो भावै सो होई माँहि तुम्हहु पै चहहु अनन्द ।	२७।२६ पद०
जोगि सबै छद अस खेला	१७।१६।३ ,,
टूट मनैनग मोती फूट मनैदसकाँच ।	
लीन्ह समेटि ओनसि होइ गाढु। खकरनाँच ।	१२।८ ,,
ब्याधि भए जिउ लेवा । उठे पखि मा नाउ परेवा	५।७।४प
तिरिया पुहुमि खरग कै चैरी	५१।६।४प
जरी के पाव दाबि करखडा	५३।४।२प
थल थल नग न होहि जेहि जीती ।	
जलजल सीप न उपनहिं मोती ।	
बन बन बिरिछ न चन्दन होई	
तन तन विरह न उपनहिं सोई ॥	७।२१।१प
दरब उवरहु अरघ करेहू	२७।३८।६प
दरपन बालक हाथ मुख देखे दूसर गेने	४४ । अख०
दस असुमेध जगि	११।७।७प
दाइज कहौं कहाँ लगि लिखिन जाइ तत दीन्हि	२६।१२प
दान डांक बाजइ दरबारा	११।७।४प
दीन्हि मीठी	३४।१६।५प
दीन्हि झरोखा	३७।७।१प
दुई सो छपाए न छपै एक हत्या और पापु	
अतहु करे बिनास ये सैं साखी दै आपु ।	८।४प

लखिमी आहि सत्त के बैरी ।	६११।३ प
विक्रम धसा पैम के बाटा ।	२३ ११।६१.प
बिनु रस हरदि होइ पिअराई ।	८।८।६प
बिनु सतकर जस सवर मुवा ।	६।१।१प
बौवै बबुर लवै कित धाना ।	१८।७ अख०
मा ससि राहु केरि रिन बन्धी ।	६।५।७प
भोग भोज जस माने विक्रमसाका कीन्ह	६।१प
भोजन बिनु भोजन मुखराता	५।७प
मस्तक टीका कान्ध जनेऊ	
कवि विआस पंडित सहदेऊ	७।६।७प
मरोत हाँथ	१०।१५प
मानुस पैम भएउ बैकुंठी । नाहित छार कहाँ एक मुंठी	२।३प
माता पिता कियाअहि सोई	
जरम निवाहु पियहिं सो होई ।	३२।३।३४
धुहुम बिरिख जो नै चलै काहु चलै रोइ ।	
जौबन रत्न हेरान है मकुधरती मह होइ	४८।३प
मदहु मलजो को भल सोई	
अतहु भला भले कर होई ।	४५।८।२प
रतन्ह छुए जिन्ह हाथन्ह सेंती	४८।७।४प
राति किरपन जागि पहिताना	१३।५ आ० क०
राते केवल करहिं अलिमवाँ	१०।५।२प
रुद्र ब्रह्म सिव वाचा तोही	३१।७।४प
रुपवत मनि मथ	१।१६प
लछिमी सत्त कै चेरि	२० अख०
लागि सुपारी ।	४५।१८।७प
लीन्ह अकोर हाथ जेह जाकर जीव दीन्ह तेहिं हाँथ ।	
जो बहु कहै सरै सो कीन्हे कनहुड झारन माँथ	५२।३प
लीलिरहा अकठीलिहोइ पेर पदारथ मेलि	३४।१०प
लेसाहिए पेम करि दिया	११८।३प
सत्त जहाँ साहस सिधि पावा ।	६।१।४प
सकति हकारि जीव जो काढ़े महादोख औपाय	३४।१३प
समुद न जान कुआं कर मेंजा ।	१४।३।१प

समुद माह जम उलथहिं मोती	३१।७ मख०
सहसहुँ बार जो धोवहिं तबहुँ गयन्दहिं पंक	४३।७प
सारस भरेहुलासा	२।६।६प
सालहिं हिय न जासु हिय ठठढे । साले तासु चहे उनकाढे	५२।८।७प
सिर करवत तन करसी लै लै	१०।१६प
सुआ मुआ सेंवर के आसा ।	८।७।५प
सूधी अगुरिहुन निकसे धीऊ	३४।१०।६प
सज नाग मे घें घे उस	३०।६।२प
स्वामी काज जे जूझे सोइ गये मुख रात ।	४२।३प
हारे बररुचि भोज	८।६प
हार जीतना ।	३६।६प
होइहि लेख ओजोख	१०।११प
होइ मुख रात सत्त के बाता	
जहाँ सत्त तह धरम सघाता ।	६।१।२प
हस केलि कराहीं ।	२।७।६प
हसि-हसि पूछहि सखी सहेली ।	२७।२३।१०

———

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. अखरावट-जायसी ग्रन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण से
२. अमर कोश —मणिप्रभा, हिन्दी व्याख्या
३. अलबैरूनीज इण्डिया —साच कृत अंग्रेजी अनुवाद
४. अवधी कोश—सम्पादक श्री रामाज्ञा द्विवेदी
५ आइने अकबरी—अबुलफजल, सम्पादक और भाषान्तरकर्त्ता श्री रामलाल पाण्डेय विद्या मन्दिर सन् १९३५ (कानपुर)
६ आखिरी कलाम—जायसी ग्रन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के संस्करण से
७. आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश—श्री रामस्वरूप शास्त्री सं० २०१४ वि०
८. इलियट हिस्ट्री आव इण्डिया—भण्डारकर
९. इजाए अमीर—अमीर खुसरो, कलकत्ता संस्करण
१०. उत्तरी भारत की संत काव्य परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
११. ए हिस्ट्री आव इंडियन फिलासफी—एस० एन० दास
१२. ऐन एडवान्स हिस्ट्री आव इंडिया—डा० आर० सी० मजूमदार तथा डा० एच० सी० राय चौधरी
१३. कला प्रसंग—रामचन्द्र शुक्ल—प्र० सं०—१९६६ ई०
१४. कला और संस्कृति—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५. कहरा नामा (डा० अग्रवाल ने इसे कहरा नामा तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने महरीवाइसी माना है)।
१६. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (विद्या भवन राष्ट्रभाषा १९५८ ग्रन्थमाला १४)
१७. कामसूत्र—वात्स्यायन। काशी संस्कृत ग्रन्थमाला—२९—सन् १९६४
१८. कीर्त्तिलता—सम्पादक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१९. खिलजीकालीन भारत —रिजवी सैयद अतहर अब्बास
२०. खिलजी वंश का इतिहास—किशोरी सरन लाल
२१ खेल और खिलौना—गुरुदत्त
२२. गोरखवानी—डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल
२३. चित्ररेखा—सम्पादक डा० शिवसहाय पाठक— (प्रथम संस्करण) हिन्दी प्रचारक पुस्त०, वाराणसी

२४. जायसी—डा० रामपूजन तिवारी—प्र० म १९५५ ई०
२५. जायसी की भा०। प्र० सं—डा० प्रभाकर शुक्ल विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, स० २०१३ विक्रमी।
२६. जायसी के परवर्ती हिन्दी कवि और काव्य—डा० सरला शुक्ल वि० वि० प्र० लखनऊ, स० २०१३ विक्रमी।
२७. जायसी ग्रन्थावली—सम्पादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पचम संस्करण
२८. जायसी ग्रन्थावली—सम्पादक डा० माताप्रसाद गुप्त
२९. जायसी ग्रन्थावली—सटीक—डा० मनमोहन गौतम—२०१६ वि० से०
३०. जीव-जगत ठाकुर सुरेश सिंह १९५८ ई०
३१. तबकाते अकबरी (निजामउद्दीन) इलिएट कृत अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता सस्करण
३२. तसव्वुफ और सूफीमत—श्रीचन्द्रवली पाण्डेय
३३. दिल्ली की खोज—ब्रजकृष्ण चांदीवाला
३४. दिल्ली सल्तनत—डा० आशिर्वादीलाल श्रीवास्तव
३५. धर्मशास्त्र का इतिहास काणे—अनुवादक—अर्जुन चौबे कश्यप।
३६. नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी १९५० ई०
३७ नाथ और सत साहित्य कुलनात्मक अध्यन प्र० सं०, नगेन्द्रनाथ उपाध्याय
३८. पद्मावत मूल और सजीवनी व्याख्या—डा० वसुदेवशरण अग्रवाल द्वितीय आवृति (२०१८ वि०)
३९. पाणिनिकालीन भारत—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल प्रथम सस्करण २०१२ वि० स०
४०. प्रचारक हिन्दी शब्दकोश—प० लीलाधर त्रिपाठी
४१. प्राचीन भारतीय वेशभूषा—डा० मोतीचन्द्र
४२. प्राचीन वाङ्मय के अमर रत्न जयचन्द विद्यालकार
४३. प्राचीन भारत का इतिहास—डा० भगवतशरण उपाध्याय
४४. प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन—डा० उदयनारायण राय
४५. पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सास्कतिक अध्ययन, डा० सूर्य नारायण पाडे
४६ भक्ति का विकास—डा० मुशीराम शर्मा विद्या भवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थ माला १५ सन् १९ ८

४७. भारत के पक्षी-राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह
४८. भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास-डा० विमलचन्द्र पाण्डेय
४९. भारतीय दर्शन- बलदेव उपाध्याय-सप्तम संस्करण
५०. भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य-डा० बैजनाथ पुरी
५१. भारतीय संस्कृति का विकास-मंगलदेव शास्त्री-द्वितीय संस्करण
५२. भारतीय संस्कृति-गौरीशंकर भट्ट
५३. भारतीय संस्कृति-डा० देवराज
५४. मत्स्यपुराण
५५. मध्यकालीन शृ गारिक प्रवृत्तियाँ-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
५६. मध्यकालीन प्रेम साधना— ,, ,,
५७. मध्यकालीन प्रेमाख्यान ,, ,,
५८. मध्यकालीन भारत १००० से १७०७ ईसवी तक-पी० डी० गुप्त एम० ए०, इलाहाबाद, कलकत्ता) प्रिंसि० एन० आर० ई० सी० कलेज, खुर्जा तथा एम० एल० शर्मा, एम० ए० साहित्यरत्न
५९. मध्ययुगीन साहित्य में नारी भावना-ऊषा पांडेय
६०. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्रिक अध्ययन-डा० सत्येन्द्र
६१. मध्ययुगीन भारत-अवधविहारी पांडेय
६२. मध्ययुगीन भारत का संक्षिप्त इतिहास-डा० ईश्वरी प्रसाद
६३. मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में भारतीय संस्कृति-डा० मदनमोहन गुप्त
६४. मध्यकालीन भारतीय साहित्य और संस्कृत-दिनेशचन्द्र भारद्वाज
६५. मध्ययुगेर धर्म साधना-क्षितिमोहन सेन
६६. मलिक मुहम्मद जायसी भाग १, डा० कमलकुल श्रेष्ठ प्रथम संस्करण १९४७
६७. मसला-डा० शिवसहाय पाठक
६८. महरीबाइसी (डा० मनमोहन गौतम वाले संस्करण से)
६९. मारकंडे एक सांस्कृतिक अध्ययन-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
७०. मुहूर्त चिन्तामणि-
७१. याज्ञवल्क्य स्मृति-संस्करण प्रथम
७२. रामचरित मानस गुटका-गीता प्रेस गोरखपुर ४९वां संस्करण
७३. वर्णरत्नाकार-ज्योतिरिश्वर ठाकुर
७४. विश्व सभ्यता का इतिहास-डा० उदयनारायण राय
७५. वृहद् पर्यायावाचीकोश-डा० भोलानाथ तिवारी

७६. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति-म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी
७७. वैष्णवधर्म रत्नाकर सवत्-१६८६ सौमा गोयलदास जीकृत
७८. शोध प्रबन्ध-बारहवी सदी मे उत्तरी भारत मे समाज के कुछ रूप-ब्रजनाथ सिंह
७६ सभाशृंगार-अगरचन्द नाहटा
८०. सब धर्मों की बुनियादी एकता-डा० भगवान दास-प्रथम सस्करण
८१. सनातन धर्म प्रवेशिका-रामप्रियदेवभट्ट शास्त्री-द्वितीय संस्करण सन् १६५६
८२. साहित्य और कला-डा० हरद्वारी लाल शर्मा
८३. सूफीकाव्य सग्रह-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी
८४ सूरसागर की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन-डा० निर्मला सक्सेना
८५. सस्कृत साहित्य का इतिहास-वाचस्पति गैरोला विद्याभवन-राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला २८-सन् १६६०
८६ संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर
८७. श्रीमद्भागवत-पचमसस्करण-गीता प्रेस गोरखपुर
८८ हर्ष चरित एक सास्कृतिक अध्ययन-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
८६. हिन्दी साहित्य की भूमिका-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी-छठी बार जून १६५६
६०. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
६१. हिन्दी विश्वकोष २५ खंडो मे) न० ना० वसु
६२ हिन्दी बृहद् कोष-लीलाधर त्रिपाठी-प्रथम बार
६३. हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका-डा० रामपूजन तिवारी
६४. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता-बेनीप्रसाद
६५. हिन्दू परिवार मीमासा-हरिदत्त वेदालकार
६६. हिन्दू सस्कार-डा० राजबली पांडेय

परिशिष्ठ

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७	४-५	आलोवन-विलोवन	आलोडन-विलोडन
१८	६	चंदेस	चदेरी
१८	२०	अधिकारियों को	अधिकारियों की
१६	११	सूफी	सूरी
१६	२३	कमजोरी की	कमजोरी को
१६	२७	सीमा के अस्थिरता	सीमा की अस्थिरत
२०	२६	ढग को तरह	ढग की तरह
२२	३०	गम	गुम
२१	१०	फेरा	घेरा
२१	१७	था हो	था ही
२३	२८	उपभोग्य	उपभोग
२४	३०	की उत्पत्ति होना	का उत्पन्न होना
२६	२३	अरवरन	अवरन
२६	२४	रूपवास	रूपवान
२६	२८	निर्मित थे	विभक्त थे
२७	१	लौकिकी	राजनीति धर्म से मुक्त
२७	१६	चोथाई	चौथाई
२७	७	समाहित	समाहृत
२८	१	दुभिक्ष	दुर्भिक्ष
३०	१७	झडी	झडी
३१	१८	गेय	ज्ञेय
३३	४	कभ	कभी
३३	२७	मान रक्खा	नाम रक्खा
३३	३०	कुमायूँ	हुमायूँ
३५	६	दूती अपना	दूती अपनी
३५	१८	जायस नगराधरा	जायस नगर धरम
३६	६	किलकिलात	किलकिला